http://www.jainkosh.org

परीक्षामुखसूत्रप्रवचन

[८, ९, १० भाग]

प्रवक्ता :

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक

श्री मनोहर जी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

प्रबन्ध-सम्पादक :

वैजनाथ जैन, ट्रस्टी सदस्य सहजानन्द शास्त्रमाला

यादगार बड़तला, सहारनपुर

प्रकाशक :

खेमचन्द जैन सर्राफ

मंत्री, सहजानन्द शास्त्रमाला

१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सहजानंद शास्त्रमाला

परीक्षामुखसूत्र प्रवचन

भाग-10

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

Report any errors at vikasnd@gmail.com

है। इस प्रकार प्रत्यक्षके भेदोंमें सांव्यवहारिक प्रत्यक्षका वर्णन हुआ। अब मुख्य प्रत्यक्षके सम्बन्धमें वर्णन चलेगा।

परीक्षामुखसूत्र-प्रवचन

[दशम भाग]

[प्रवक्ता — अध्यात्मयोगी पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक मनोहर जी वर्णी "सहजानन्द" जी महाराज]

प्रमाणके भेदोंमें मुख्य प्रत्यक्षके वर्णनका उपक्रम— समस्त पदार्थोंमें ज्ञानतत्त्व ही सारभूत है, ज्ञानके द्वारा ही समस्त व्यवस्था है और संज्ञी लोकमें तो ज्ञानकी ही महिमा चलती है। ज्ञान ही प्रमाण होता है, अमुक बात सही है अथवा नहीं, यह निर्णय ज्ञानसे ही किया जाता है। तो ज्ञान होनेपर कि समस्त व्यवस्था, सत्य पथपर चलना, कुपथसे हटना आदि अपना सारा भविष्य निर्भर है, वह ज्ञान किस प्रकारका स्वरूप रखता है इस सम्बन्धमें वर्णन चल रहा है। जो अपना और पर पदार्थोंका निश्चय करे उस ज्ञानको प्रमाण कहते हैं। ज्ञानमें यह खासियत है कि वह अपने स्वरूपका भी निश्चय रखता है और पदार्थका भी निश्चय रखता है। ज्ञान दो प्रकारका कहा गया है—एक प्रत्यक्ष, दूसरा परोक्ष। प्रत्यक्षका यद्यपि सिद्धान्तमें यह लक्षण है कि जो इन्द्रिय मनकी सहायताके बिना केवल आत्मशक्तिसे उत्पन्न हो उसे प्रत्यक्ष कहते हैं। इस सिद्धान्तका भी विरोध न करके दार्शनिक शैलीसे प्रत्यक्षका लक्षण कहा गया है — जो स्पष्ट ज्ञान हो उसे प्रत्यक्ष कहते हैं और इस लक्षणके अनुसार दो प्रकारके प्रत्यक्ष हुए - एक तो एकदेश स्पष्ट ज्ञान होना—उसे कहते हैं सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष। और दूसरा सर्वप्रकारसे विशद हो, स्पष्ट ज्ञान हो उसे कहते हैं मुख्य प्रत्यक्ष। सांव्यवहारिक प्रत्यक्षके विषयमें वर्णन हो चुका था, अब मुख्य प्रत्यक्ष के सम्बन्धमें उसका स्वरूप और उसकी उत्पत्तिका कारण बताते हुए सूत्र कहते हैं।

सामग्रीविशेषविश्लेषिताखिलावरणमतीन्द्रियमशेषतो मुख्यम् ॥ २–१० ॥

मुख्य प्रत्यक्षका निर्देशन— मुख्य प्रत्यक्ष वह होता है जो सर्व प्रकारसे स्पष्ट हो। मुख्य प्रत्यक्षमें अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान और केवलज्ञान ये तीन ज्ञान आये। तीनों ज्ञान अपने विषयमें स्पष्ट हैं। जितनी स्पष्टता हम आप लोगोंको इन्द्रियोंसे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जानने पर विदित होती है, आँखोंसे देखा तो कितना साफ मालूम होता है कि यह भींट है, यह अमुक रङ्ग है जो कुछ भी नजर आता है वह कितना साफ प्रतीत होता है, तो इससे भी साफ स्पष्ट अवगम अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान और केवलज्ञानमें होता है। यह मुख्य प्रत्यक्ष अतीन्द्रिय है, किसी इन्द्रियसे उत्पन्न नहीं होता। जो इन्द्रियसे उत्पन्न नहीं होता है उसे सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहते हैं। इस मुख्य प्रत्यक्षमें समस्त आवरणोंका विश्लेषण हो गया है। जितने आवरणोंका रुका हुआ ज्ञान है वह उतने आवरणोंका वियोग होनेपर प्रकट होता है। चाहे क्षयरूपसे ज्ञानावरणका वियोग होता हो या क्षयोपशम रूपसे। अवधिज्ञानमें मन: पर्ययज्ञानमें ज्ञानावरणका क्षयोपशम है, सो क्षयोपशमरूप वियोग है और केवल ज्ञानमें समस्त ज्ञानावरणोंका क्षय है। यह विश्लेष कैसे होता है, यह हटाव किस विधिसे होता है? वह किसी सामग्री विशेषसे होता है। वह सामग्री विशेष क्या है?

ज्ञानवरणविश्लेषका कारण—अन्तरङ्गमें कारण है तो रत्नमय, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र जिसके प्रतापसे इन आवरणोंका वियोग होता है और बहिरङ्ग कारण योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव ये सब उसके बहिरङ्ग कारण हैं। उस सामग्री विशेषसे जब आवरणका विघटन होता है, तब अवधिज्ञानमन:पर्ययज्ञान और केवलज्ञान ये तीन प्रकट होते हैं। अपने आपके इस ज्ञानस्वभावका विचार करें। ज्ञानमें जाननेका स्वभाव पड़ा है। इस जाननेके स्वभावमें कोई सीमा नहीं पड़ी है कि इतनी दूरी तककी ही बात जाने। ज्ञानमें सामने गैर सामनेका कोई प्रतिबंध नहीं है। किन्तु सत् हो। हो दुनियामें कुछ, ज्ञानमें आयगा। तो ज्ञानका स्वभाव है जो भी सत् हो। चाहे वह किसी भी पर्याय परिणत हो, पहिले था जिस पर्यायमें, आगे होगा, वे समस्त उस ज्ञानमें प्रतिविम्बित हो जाते हैं तब प्रश्न यह होना स्वाभाविक है कि ज्ञानमें स्वभाव पड़ा है जाननेका और जाननेमें कोई सीमा अथवा प्रतिबंध नहीं होता, तब फिर हम लोगोंका ज्ञान आज कितना सीमित है, कितना नियंत्रित है। जो सामनेकी चीज हो उसको जाने पोछेकी चीज न जान सकें। देखो किसी इन्द्रियका निमित्त पाकर जाना। हम अपने आप अपनी शक्तिसे केवल इन्द्रियकी अपेक्षा न रखकर नहीं जान सकते। हम अमुक इन्द्रियसे अमुक विषय ही जान सकेंगे। यह नहीं है कि आँखसे रसका ज्ञान करलें। रसनासे देखनेका काम करलें व नासिकासे सुननेका काम कर सकें। ऐसी बात तो नहीं है। तो कितना नियंत्रण है, कितनी सीमा है। यह सब कैसे हो गया? उसके उत्तरमें आ ही गया होगा सबके मनमें कि है कोई आवरण जिसके निमित्तसे यह ज्ञान इतना नियंत्रित हो गया है। वह आवरण क्या है इसके सम्बन्धमें इसी स्थलमें विचार चलेगा।

मुख्य प्रत्यक्षकी निरावरणताका हेतु—इस समय यह बात बताई जा रही है कि जो अतीन्द्रिय ज्ञान है, स्पष्ट ज्ञान है वह आवरण रहित है, इसीको मुख्य

Report any errors at vikasnd@gmail.com

प्रत्यक्ष कहते हैं। अब उसका अनुमान बनाते हैं कि जो जिस जिस विषयमें स्पष्टता रखते हुए ज्ञान होता है वह उस समयमें आवरणरहित हुआ करता है। सिद्धान्तमें, कोईसी भी बात एक आदेशरूपमें, विधिरूपमें लिखी जाती है। अमुक यों है अमुक यों है। किन्तु दार्शनिकतामें उस ही की जब सिद्धि चलती है तो उसे रोकने वाले अनेक लोग मिलते हैं। तुम युक्तिसे सिद्ध करो। हम तुम्हारा आगम नहीं मानते। होगा तुम्हारा आगम। जो जिस मजहबका है उसके शास्त्र हुआ करते हैं। जो सर्व सम्मत बात हो सके वह प्रयोग करें। कैसे जानें कि अमुक ज्ञान आवरणरहित होता है ? तो उसकी सिद्धिमें यह अनुमान दिया जा रहा है कि जो ज्ञान जिस पदार्थके विषयमें स्पष्ट होकर यथार्थ हुआ करता है वह ज्ञान उस विषयके सम्बन्धमें आवरण-रहित होता है। जैसे धूल कुहरा आदिकसे दबे- हुए वृक्ष आदिकमें जब कभी स्पष्ट ज्ञान होगा तो स्पष्ट ज्ञान होना यह सिद्ध कर रहा है कि अब इस वृक्षपर न तो धूलका आवरण है और न कुहरा आदिकका। जो इस विषयमें स्पष्ट होकर यथार्थ ज्ञान होता है वह आवरणरहित है।

यथार्थ बोधके आवरणके विश्लेषसे यथार्थ बोधका अभ्युदय — सम्यग्ज्ञानमें पदार्थोंके स्वरूपका यथार्थज्ञान रहता है और स्पष्ट रहता है ज्ञानी पुरुष पदार्थोंको निरखकर अमुक स्पष्ट जान लेता है ओह। पदार्थोंका अपना अपना स्वरूप चतुष्टय है, एक दूसरेसे वे अत्यन्त भिन्न हैं। त्रिकालमें किसी भी द्रव्यका कोई गुण कोई प्रभाव दूसरेमें नहीं पहुँच सकता है। गुण तो पदार्थमें अनन्य होते हैं, त्रिकाल होते हैं, किन्तु गुण है भेद दृष्टिसे परख करनेपर और द्रव्य है अभेद दृष्टिसे परख करनेपर। पर्याय अध्रुव होती है। प्रभाव असर आदिक जितने कहिए—वे सब पर्यायके नामान्तर हैं। तो किसी भी वस्तुका प्रभाव जिसमें परिणत होता है उसमें ही तो रहेगा। किसी अन्य द्रव्यपर प्रभाव नहीं पहुँच सकता। अन्य द्रव्यपर प्रभाव पहुँचता है ऐसा व्यवहार निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध निरखकर किया जाता है। कैसा भी घनिष्ठ निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध हो, तिसपर भी वस्तु स्वरूपको निरखा जाय तो सबने अपनेमें अपना प्रभाव उत्पन्न किया है। जैसे किसी अदालतमें जाकर एक देहाती पुरुष जजको देखते ही घबड़ा जाता है, डर जाता है, दिल कप जाता है। बोलते भी ठीक नहीं बनता है तो यह बतलावो कि उस देहातीपर जजका प्रभाव पड़ा क्या ? अरे यदि जजका प्रभाव पड़ने लगे, जजसे कोई प्रभावकी किरण निकलने लगे तब जो जितने लोग उसके पास जायें सभी पर उसका प्रभाव पड़ना चाहिए, पर ऐसा तो नहीं होता जो जिस योग्यताका है, जो जिस प्रकारकी कल्पनायें कर सकता है परमार्थसे उसपर अपनी कल्पनाओं का प्रभाव हुआ करता है। ज्ञानी पुरुष जब वस्तुके स्वरूपके सम्बन्धमें यथार्थ निर्णय रख रहे हैं तो उनके निर्णयके आवरक कर्मों का विश्लेष है। जो जिस सम्बन्धमें अपना स्पष्ट ज्ञान रखता है वह उस विषयमें आवरणसे रहित है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मुख्य प्रत्यक्षका विषय—यह मुख्य प्रत्यक्ष तीन प्रकारका है अवधिज्ञान, मनः पर्ययज्ञान व केवलज्ञान। अवधिज्ञान, मनः पर्ययज्ञान, केवलज्ञान अपने विषयका स्पष्ट ज्ञान करते हैं, इसलिये ये आवरणरहित हैं। अवधिज्ञान जानता है रूपी पदार्थों को। हम पहिले भवमें क्या थे अमुक जगह क्या हुआ, इन रूपी पदार्थोंका ज्ञान अवधिज्ञान कर लेता है। दूसरेके मनमें रहते हुए विचारोंका ज्ञान मन:पर्यय करते हैं और लोकमें जितने भी पदार्थ हैं, जिस पर्याय परिणत थे, जिस पर्याय परिणत होंगे, उन समस्तका ज्ञान केवलज्ञानमें होता है। एक रागद्वेष न होनेके कारण केवलज्ञान ज्ञानमें एक विशिष्ट अन्तर आ जाता है। केवलज्ञान किस प्रकारसे पदार्थोंको जानता है? चूंकि हम आप लोगोंके किसी न किसी प्रकारका रागका सद्भाव है, तो ज्ञानके साथ झट विकल्प उठ पड़ते हैं, शब्दरचना हो बैंठती है, अन्तर्जल्प जल उठता है, किंतु केवलज्ञान विकल्पोंसे अतीत है, अन्तर्जल्पसे रहित है। एक विशुद्ध रूपसे ज्ञाता है। तो उसका वह ज्ञान कैसा है? हम लोग अपने ज्ञानसे तुलना करके किसी प्रकार जानना चाहें तो वह अशक्य है। तो यह मुख्य प्रत्यक्ष अपने कारणसे प्रकट होता है, उसके कारण अन्तरङ्गमें रत्नत्रय और वहिरङ्गमें योग्य द्रव्य क्षेत्र आदिक हैं।

मुख्य प्रत्यक्षकी अतीन्द्रियताकी सिद्धि—यह मुख्य प्रत्यक्ष निरावरण है, अतीन्द्रिय है। इन्द्रियसे जो वोध होता है वह यद्यपि एकदेश स्पष्ट लगता है, किन्तु वह वस्तुतः स्पष्ट नहीं है। ये केवलज्ञान, अवधिज्ञान मन:पर्ययज्ञान इन्द्रियसे रहित हैं, अतीन्द्रिय हैं। ये कैसे जानें? उसको अनुमानसे सिद्ध कर लीजिए कि यह ज्ञान अतीन्द्रिय है, क्योंकि इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा नहीं रखता है। यह ज्ञान इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा नहीं रखता क्योंकि समस्त कलङ्कोंसे दूर है। जहाँ कुछ कलङ्क हो, जहाँ कुछ कमजोरी हो. जहाँ कोई आवरण हो वहाँ ही तो इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा होगी। जैसे एक मकान बना है, कमरेमें कई खिड़कियाँ हैं, उसके भीतर रहने वाला पुरुष अगर यह देखना चाहे कि देखें तो सही कि बाहर क्या हो रहा है नगरमें क्या हो रहा है? तो उसे उन खिड़कियोंकी अपेक्षा रखनी होगी और क्यों जी! यदि वे खिड़कियाँ ही न हों, दीवाल ही न हों, सारे आवरण दूर हों तो क्या उसे उन खिड़कियोंकी अपेक्षा करनी होती है? फिर अपेक्षा करनेकी कोई जरूरत नहीं है, इसी प्रकार जब हम आपमें इतने कर्मोंके आवरण लगे हैं तब ऐसी स्थितिमें तो यह एक कलङ्क लगा हुआ है। कलङ्क है राग द्वेष। यह भी एक शिक्षा लीजिए कि रागद्वेषके कलङ्क अपनेमें न रहें तो प्रथम तो इतना जाननेकी उत्सुकता भी न होगी कि हम अमुकको जानें, अमुकको मानें ऐसी स्थितिमें यह आत्मा शान्त होगा और यह ज्ञान अपने आत्माके विशुद्ध स्वरूपको जानेगा जिसमें किसीकी अपेक्षा नहीं है।

इन्द्रियज ज्ञान व इन्द्रियज सुखमें परापेक्षता—अब बाहरी चीज जानना है तो प्रकाश चाहिए, आँखें कमजोर हैं तो चश्मा चाहिए, अथवा उस चीजके संबंधमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हम पहिलेसे कोई अभ्यास नहीं किए हुए हैं तो कोई निर्देशक चाहिए जो बताये कि यह अमुक अमुक है। बाहरी पदार्थोंके जाननेमें हमें कितनी अपेक्षा करनी पड़ती है, किन्तु जब कलङ्क दूर हुआ, मोह रागद्वेष ये दूर हुए तो अपने आपमें जो अन्तः स्वरूपका अवगम होता है, उस अवगममें किसी अपेक्षाकी जरूरत नहीं होती। बाहर में सुख शान्तिकी प्राप्तिके लिए तो अनेक प्रकारकी अपेक्षायें रखनी पड़ती हैं और वह सुख भी कोई वास्तविक सुख नहीं है। सुख शान्ति तो वास्तवमें अपने विशुद्ध ज्ञानकी वर्तनामें है। केवलज्ञान ज्ञानरूप बर्तता रहे इसमें शान्ति है। इस शान्तिके पानेके लिए जब हम अपने आपमें उद्यम करने चलें तो क्या इसमें किसीकी अपेक्षा करनी पड़ेगी ? अरे जहाँ ही अपनी शुद्ध दृष्टि बनी, अपने आपमें निरखा, स्वाधीनतासे सुगम ही अपने आपका स्पष्ट बोध हो जाता है।

इन्द्रियज्ञान और स्वसवेदन—यद्यपि पर्यायका हम आपमें अतीन्द्रिय ज्ञान नहीं है लेकिन स्वसम्वेदनकी पद्धतिसे इस इन्द्रिय मनकी अपेक्षासे परे स्वरूपका अनुभव अब भी कर सकते हैं, जिसे हम स्वानुभव कहते हैं, शुद्ध स्वरूपका अनुभव। शुद्ध स्वरूपका अनुभव क्या इन्द्रियसे उत्पन्न होगा ? यह बात तो बहुत ही जल्दी विदित हो जाती है। और सब लोग बतला सकते हैं कि आत्माके उस विशुद्ध स्वरूपका अनुभव इन्द्रिय द्वारा नहीं होता। क्योंकि स्पर्शनइन्द्रिय छूनेका ज्ञान करती है। आत्मा छुवा नहीं जाता रसना इन्द्रिय स्वादका ग्रहण करती है। आत्मामें खट्टा मीठा आदिक कोई रस नहीं है। घ्राणसे कोई चीज जानी जायगी तो गंध जानी जायगी पर आत्मामें न सुगंध है न दुर्गन्ध चक्षु इन्द्रियसे काला पीला आदिक रूप ही पहिचाना जायगा, किन्तु आत्मामें कोई रंग नहीं है। कानोंसे शब्द ही सुने जायेंगे, किन्तु आत्मा में कोई शब्द भरे हैं क्या ? तो इन्द्रियके द्वारा विशुद्ध आत्मतत्त्वका अनुभव नहीं होता। अब रही एक मनकी बात तो यह मन इन कामोंमें बहुत सहयोगी है; लेकिन जिस समय अनुभूतिका समय होता है उस समयमें इन्द्रिय और मनका जो एक निजी बल है उसका प्रयोग वहाँ नहीं रहता है। तो ऐसी स्वसम्वेदन स्थितिमें हम उस अतीन्द्रिय ज्ञानकी जातिका कुछ परिचय पा सकते हैं।

विवेकियोंके इन्द्रियज्ञानमें आकर्ष्यताका अभाव—भैया ! इन्द्रिय ज्ञान में हम अपना आकर्षण न बनायें। इससे हमें कोई सिद्धि न मिलेगी। इन्द्रियज्ञानसे ५ प्रकारके विषय जाने जाते हैं उन विषयोंका परिज्ञान करके हम अपने आत्मामें कौन सा अतिशय पैदा कर लेंगे ? कुछ सिनेमा आदिक देख लिया अथवा रागरागनीके शब्द कानोंसे सुन लिये या कुछ भी इन्द्रियजन्य सुख प्राप्त कर लिया तो उससे इस जीवका क्या पूरा पड़ता है ? इन विषयभोगोंसे इन्द्रिय विषयोंमें जान जानकर कितना समय बिताया पर आज भी देखो तो खाली हाथ हैं। यद्यपि अल्प क्षणको धनका तो कुछ संग्रह भी हो जाता है पर इन भोग विषयोंमें पड़नेसे कौनसी चीजका संग्रह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हो जाता है सो तो बतावो ? बल्कि उससे तो जीवकी बरबादी ही होती है। इन भोगोंमें पकड़कर तो यह जीव दुःखी ही होता रहता है। तो ये इन्द्रियजन्य सुख कोई आकर्षणकी चीज नहीं हैं तब क्या करना ? जो हो सो हो, पर इतना तो ख्याल रखना कि हम यह प्रयत्न करें कि इन इन्द्रिय विषयोंका चित्तमें अवधारण न करें। इन पदार्थोंको हितरूप न मानें। ये पदार्थ मेरे चित्तमें मत ठहरें। मेरी चित्त भूमि साफ स्पष्ट निर्भर रहे। हमपर इन असार अध्रुव पदार्थोंका भार मत आये। ऐसी अपने आपमें एक उत्सुकता होनी चाहिए।

मोहवश असंभव बातमें सुकरताकी कल्पना कितने आश्चर्यकी बात है कि जो बात अत्यन्त कठिन है वह तो सुगम मानली गई है और जो बात अत्यन्त सुगम है वह बहुत कठिन प्रतीत हो रही है। पैसा कमाना कितना कठिन है। वे पर द्रव्य है, उदयानुकूल आ रहे हैं, एक तरहका योग बन गया है, पर अपनी वर्तमान करतूतमें जो कि एक एक भावरूप है जो अमूर्त परिणतरूप ही है उस भावसे हम क्या संग्रह कर सकते हैं ? दुनियामें एक नामवरी पैदा करना। लोगोंमें अपना ख्यापन कराना आदिक कितना कठिन है। लोग किसीके आधीन हैं क्या ? जो लोग कीर्ति गाते हैं वे अपने आपको कोई तृष्णा जगी है, अथवा किसी बातसे आभार माना है या कुछ भी वेदना जगी है उसके प्रतिकार वे ख्यापन किया करते हैं, पर उनसे ख्यापन करवाना कितना कठिन है। परिवार बसाना, लोगोंकी व्यवस्था बनाना सब लोग आज्ञाकारी रहें, मेरे अनुकूल चलें। ये सारी बातें बड़ी कठिन हैं, वे तो लोगोंको बड़ी सुगम लग रही है। विकल्प उठे, जूते पहिने, लो काम करने आ गए, सारे काम बड़े सुगम लग रहे हैं। हो रहा है वह उदयवश लेकिन यह प्रवृत्ति अज्ञानीकी उन बच्चोंकी भांति है जो बच्चे ५० मन बोझसे लदी हुई गाड़ी जिसे यद्यपि बैल खींच रहे हैं, पर वे बच्चे पीछेसे गाड़ीको ढकेलकर यह अनुभव करते हैं कि मैंने गाड़ी ढकेली। अरे कहीं बैल खड़े हो जायें तो फिर उस गाड़ीका ढकेलना उन बच्चोंके बशकी बात है क्या ? यों ही इस संसारकी चलती हुई गाड़ीमें अपने विकल्पोंका हाथ लगाकर ये मिथ्यादृष्टि बच्चे यह अहंकार करते हैं कि मैं ही सारी गाड़ी चला रहा हूं। गाड़ी गाड़ी चलते चलते आ जाय कुयोग, पापका उदय आ जाय फिर देखो क्या हालत होती है, फिर करलें कुछ। अनेक घटनायें तो दृष्टान्तमें मिलती हैं तो इन बाहरी चीजोंको इस जीव लोकने कितना सुगम मान रखा है, और जो आत्मज्ञान सुगम चीज है वह कठिन लग रहा है।

अन्तस्तत्वके अवगमकी सुगमताका कारण—आत्मा ज्ञानमय है। कोई प्रदेश ऐसा नहीं है जहाँ ज्ञानमयता न हो। अथवा कुछ प्रदेशोंमें ज्ञान ज्यादा है और कुछ प्रदेशोंमें ज्ञान कम है ऐसा भी नहीं है। वह एक अखण्ड पदार्थ है। जो एक परिणमन है वह पूरा पूरेमें परिणमन है। ज्ञानमय मैं हूं, ज्ञान ही ज्ञान जिसका स्वरूप

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है और उस ज्ञानस्वरूपमेंसे ही ज्ञानका उपयोग प्रकट होता है। वह ज्ञानका उपयोग ज्ञानस्वरूपको न जान सके यह तो एक अघटित सी बात हो गई। कितनी सुगम बात है। कितनी दूर जाना है इस ज्ञानको। ज्ञानस्वरूपकी बात समझनेके लिए कितनी दूर जाना है ? जैसे बाहरमें बाहरकी बात जाननेके लिए कितनी दूर जाना पड़ता है ? कुछ तो दूर जाना ही पड़ता है। कुछ तो अपेक्षा करनी पड़ती है, किन्तु इस ज्ञानको ज्ञानके स्वरूपको जाननेके लिए कितनी दूर जाना है ? अरे दूर कहां जाना है, कहीं जाना नहीं है। स्वयं ही तो स्वयं है। स्वयंमें एक परख बनाना है। तो यह ज्ञानकी बात सुगम है. और इस तत्त्वके निर्णयके लिए जितना वर्णन है, प्रतिपादन है, वह सब भी कठिन नहीं है, सुगम है। लेकिन जिस प्रकार व्यापारमें व्यवहारमें बड़े हिसाबके लगानेमें बड़ी समस्याके हल करनेमें जैसी बुद्धिका उपयोग करते हैं उस प्रकारकी लगनसे यदि तत्त्वज्ञानके सम्बन्धमें बुद्धिका प्रयोग करें, रुचि बनायें तो यह चीज बाहरी चीजोंके ज्ञानसे भी अधिक सुगमतया प्राप्त की जा सकती है।

मोहमें अन्तस्तत्त्वके अवगमकी सुगमता न होनेका कारण—सुगम स्वाधीन क्यों नहीं हो रहा, उसका एक ही कारण है—विषयोंसे व्याकुल चित्त है। इन्द्रिय और मनके विषयमें चित्त ऐसा जमा हुआ है कि उसको सुन भी रहे हैं और चित्त किसी जगह खिंच रहा है, जिसका नहीं खिंचता वे उसको पकड़ लेते हैं और जिनका मन बाहर है तो वे उसको नहीं पकड़ सकते हैं। तो रुचि उत्पन्न करिये अपने स्वरूपको परखनेकी। इस ओर लगन लगायें क्योंकि बाहरमें उलझकर भी हाथ कुछ न लगेगा ! हाथ लगनेकी बात तो दूर रहो, खोकर ही जाना होगा। इससे बाह्यसे अपनी रुचि हटाकर इस ओर रुचि बनाये कि ज्ञानकी बात जानें, ज्ञान क्या चीज है और उस ज्ञानको किस किस प्रकारसे सिद्ध किया जा रहा है। उसमें लगते हुए बुद्धि का प्रयोग करें, धैर्य रखें। कोई बात दो चार दिन समझमें नहीं आती है तो कुछ दिन तक सुननेसे समझमें आयगा। धैर्य रखकर इस ज्ञानमें रुचि करें तो एक परम प्रकाशका लाभ मिलेगा जिससे हम बहुत शुद्ध तरीकेसे तृप्त हो जायेंगे।

निष्कलङ्क निरावरण अतीन्द्रिय विशद ज्ञानकी सिद्धि—जो पुरुष समस्त कलङ्कोंसे रहित होता है उसका ही ज्ञान अशेष विशद हुआ करता है तथा जो स्पष्ट ज्ञान होता है वह इन्द्रिय एवं मनकी अपेक्षा नहीं रखता। जो अतीन्द्रियस्वभावी ज्ञान होगा वह ही विशद हुआ करता है और इन्द्रिय मनकी अपेक्षा नहीं रखता। हम लोगोंका प्रत्यक्ष इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा रखकर होता है। इन इन इन्द्रियकी सहायता लें तो वह ज्ञान होता है। इससे सिद्ध है कि न तो हमारा ज्ञान कलङ्कोंसे रहित है और न अतीन्द्रिय है। जब अपने आपके ज्ञानस्वरूपपर दृष्टि देकर तकें कि स्वभाव कैसा है ? अपने आप सहज, दूसरेके सम्बन्ध बिना ज्ञानकी परिणति क्या बन सकती है ? उसका अंदाजा करके वर्तमान परिणतिको निरखें तो विदित होगा कि हममें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बहुलसे रागद्वेषके कलङ्क बसे हुए हैं। जिस पुरुषमें रागद्वेषका कलङ्क नहीं होता है उसका ज्ञान अपने आप ही पूर्ण विकसित हो जाता है। तो जो ज्ञान अतीन्द्रिय है और अपने विषयमें सर्व प्रकारसे स्पष्ट है वह ज्ञान प्रत्यक्ष हुआ करता है। इन सब ज्ञानोंमें देख लो— जो ज्ञान पूरे रूपसे स्पष्ट न होगा, जो ज्ञान इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा रखता होगा वह मुख्य ज्ञान नहीं कहला सकता।

रागादिक कलङ्कके कारण ज्ञानके विशद विकासका अभाव—इन ज्ञानके भेदोंमेंसे जो मुख्य प्रत्यक्ष ज्ञान है उसका लक्षण कहा जा रहा है कि अपनी सामग्री विशेषके कारण अर्थात् सम्यग्ज्ञान सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्रकी विशेषता के कारण जब ज्ञानावरण कर्मका वियोग हो जाता है तब इन्द्रिय मनकी अपेक्षा न रखकर स्वयं ही उत्पन्न होने वाला ज्ञान हुआ करता है, वह ही मुख्य प्रत्यक्ष कहलाता है हम आप सबके जो वर्तमानके ज्ञान हैं ये पराधीन हैं, अस्पष्ट ज्ञान हैं। इस पराधीनता का, इस अस्पष्टताका कारण यह है कि हम परमें रागद्वेषका लगाव बहुत रखते हैं जिससे उपयोग अपने स्वरूपसे विचलित रहता है। अरे वहां हम ज्ञानकी स्वच्छता नहीं पा सकते हैं। हम प्रभुकी उपासनामें क्यों लगते हैं? यही ध्यान देकर कि प्रभु का ध्यान धीर है, गम्भीर है, निर्मल है, परिपूर्ण है, इस ही ज्ञानके साथ सहज विशुद्ध आनन्द रहा करता है और ज्ञान कलङ्कसे रागद्वेषसे मुक्त है उस ज्ञानके साथ इस आनन्दकी झाँकी नहीं हो सकती है। अतएव हे प्रभो! आप आदर्श हो, योगी जनों द्वारा उपासना किए जाने योग्य हो!

ज्ञानके आवरणके सद्भावके विषयमें शङ्का—अब यहाँपर शङ्काकार कहता है कि जो मुख्य प्रत्यक्ष ज्ञान बता रहे हो कि आवरणके नष्ट होनेसे हुआ करता है तो पहिले आवरण ही तो सिद्ध कर लो। इस जीवपर आवरण है कुछ पहिले इस की सिद्धि करो। तब यह कहो कि ज्ञानका आवरण करने वाले कर्मका जब क्षय होता है तब केवलज्ञान प्रकट होता है। आवरण तो सिद्ध है ही नहीं। देखिये! शङ्काकार यहां यह सिद्ध कर रहा है कि आत्मापर कोई आवरण नहीं है। जब आवरण नहीं है तो आवरणका क्षय क्षयोपशम भी क्या रहा? जब क्षय क्षयोपशम नहीं रहा तो आत्मामें मुख्य प्रत्यक्ष ज्ञान क्या रहा? आवरण क्या चीज है? क्या शरीर का नाम आवरण है या रागादिक या कोई देशकाल ऐसा हो जो आवरणसा मालूम होता हो? किसका नाम आवरण है? यहां तीन विकल्प किए। शरीरको आवरक कह नहीं सकते और रागादिकको भी नहीं कह सकते क्योंकि शरीर व रागादिक होने पर भी पदार्थोंका ज्ञान होता रहता है। जैन शासनमें माने गये सकल परमात्मा यद्यपि उनके रागादिक नहीं माने गए तब भी शरीर तो है। शरीर ज्ञानका आवरक नहीं है। और यहां भी अनेक योगीश्वरोंको और ज्ञानियोंको सभी जीवोंको देखते हैं तो रागादिक हैं तब भी ज्ञान चल रहा है, इससे शरीर और रागादिक तो आवरण

Report any errors at vikasnd@gmail.com

हो नहीं सकते ।

शङ्काकारके प्रति आवरणसिद्धिका अन्य अभिप्राय द्वारा विफल प्रयास—इस शङ्काकारके प्रति कोई दूसरी शङ्का रख रहा है कि यह आवरण न सही किन्तु दूरदेश होना, अतीत काल होना, सूक्ष्म स्वभाव होना ये ही आवरण हैं। जैसे मेरू पर्वतपर आवरण लगा है हम आपको उसका ज्ञान नहीं हो रहा। तो किस चीजका आवरण है ? दूर देश है। दूर देशमें चीज रहना यह आवरण है। और, राम रावण आदिक हुए, उनका हमें ज्ञान नहीं हो रहा तो उसपर कोई चीजका आवरण है ? उसपर दूर कालका आवरण है। परमाणु आदिकका भी हमें ज्ञान नहीं हो रहा उसपर क्या आवरण है ? सूक्ष्म स्वभाव है उनका, तो उनपर सूक्ष्म स्वभावका आवरण है। भूमिका मूल आधार व जल आदिक नजर नहीं आ रहे हैं, काहेका आवरण है ? उस भूमिका आवरण है। आवरण तो प्रसिद्ध हैं, उनका क्यों खण्डन कर रहे हो ? इसपर शङ्काकार उत्तर दे रहा है कि यह तुम्हारी बात असार है। आवरण तो वह कहलाता है जिसको दूर किया जा सके। मेरू पर्वत इतनी दूर है तो मेरू पर्वतका आवरण कोई हटाकर तो बतावे।

कल एक बालिकाने एक प्रश्न किया था जब हमने कहा कि १ फर्लांग तक भी मन्दिर है तो रोज मंदिर जाया करो, हां तो उसने कर लिया, पर उसने एक प्रश्न किया कि महाराज ! अगर मन्दिर दूर हो तब क्या करें ? तो हमें कह आया कि उसका आसान तरीका यह है कि मंदिर उठाकर घर लाया जाय, इससे आसान तरीका और नहीं हो सकता है। [हँसी] तो मेरू पर्वत दूर देशमें है यह आवरण बताया गया तो यह आवरण नहीं है। आवरण वह कहलाता है जिसको हटाया जा सके। राम रावण आदिकको हुए बहुत समय व्यतीत हो गया तो बहुत समयका व्यतीत हो जाना यह आवरण नहीं माना जा सकता क्योंकि उसे फिर थोड़ा कम कर दें, आजका बना लें। ऐसा यह आवरण हटाया तो नहीं जा सकता अतएव आवरण नहीं है। जो अतिशय ऋद्धि वाले भी योगी हों वे भी देशकाल आदिकका अभाव करनेमें समर्थ नहीं हैं। इससे सिद्ध है कि ज्ञानपर कोई आवरण नहीं है। वह तो ज्ञान का स्वभाव है कि कम जाने अधिक जाने, पर कोई उसपर आवरण जला हो, फिर उसका क्षय किया जाय, फिर केवल ज्ञान उत्पन्न हो ऐसी चीज नहीं समझमें आती। आवरण नामकी कोई चीज नहीं है, यों शङ्काकारने ज्ञानके आवरणका निषेध किया।

आवरणकी असिद्धिकी शङ्काका समाधान– आवरण नहीं है, इस शङ्का के समाधानमें कहते हैं कि भाई हम इन तीन चीजोंका आवरण नहीं मानते जो तीन विकल्प उठाकर हमारे आवरणका निषेध किया। शरीर, रागादिक, देशकाल आदिक ये तीन ज्ञानके आवरण नहीं हैं। तो फिर क्या आवरण है ज्ञानका ? इन सबसे विविक्त कर्म नामका आवरण है। इस जीवपर कर्मोंका सम्पर्क है, बन्धन है, वह

Version 1

आवरण है। जिस आवरणके निमित्तसे यह आत्मा ज्ञान नहीं कर पाता। वह आवरण हो तो ज्ञान स्पष्ट निराला असीम जान सकता है। वे कर्म हैं इसमें प्रमाण क्या? तो कर्मकी सिद्धिमें एक अनुमान बताया जा रहा है। जो लोकमें हीन हीन काम हैं–गर्भस्थान, शरीर भोग विषय आदिकके, उनमें इस स्वच्छ ज्ञान स्वभाव वाले आत्मा की जो अधिक रति हो रही है वह आत्मासे अतिरिक्त किसी अन्य कारणपूर्वक है क्योंकि विशिष्ट रति होनेसे आत्मा तो स्वपरको जान लेवे ऐसा एक समान स्वभाव वाला है ऐसा इसमें ज्ञानस्वभाव है कि जिस स्वभावके कारण यह समस्त लोकालोक को, समस्त स्वपर प्रमेयको एक साथ स्पष्ट जान सकता है। ऐसा ज्ञानस्वभावी होकर भी इस आत्माको जो जन्ममें, विषयमें, शरीरमें रुचि हो रही है तो यह रुचि आत्माके सिवाय अन्य कोई लगा हुआ है साथमें तब हो रही है। केवल आत्मा होता तो खुद ही स्वयं अपनेमें कोई विरुद्ध कार्योंको उत्पन्न न करेगा।

आवरण अर्थात् अन्य सम्पर्ककी सिद्धिमें उदाहरण—जैसे किसी पुरुषमें किसी कमनीय कुल-कामिनीकी अधिक रति है तो कह सकेंगे उसे कि यह खोटे कार्यों में अधिक अभिरुचि रखती है सो किसी तन्त्र औषधि मोह कर्म आदि जनित है। इस संसारी प्राणीमें ऐसा मोहका उदय है जो बड़ा विचित्र नजर आता है। यह मोह निन्दनीय है। ऐसा मोह आत्मामें जब कोई अन्य चीज साथ लगी हुई है तब हो रहा है केवल आत्मतत्त्व ही होता तो इतना मोहका उदय न होता। जैसे कोई शराबका उपयोग करले और उन्मत्त हो जाय तो अपने ही घरमें रहते हुए जैसे बेहोशी होजाती है तो अपने ही घरमें रहते हुए उस पुरुषको बेहोशी हुई, क्योंकि उसने शराबका उपयोग किया, किसी विरुद्ध दूसरी चीजका सम्बन्ध किया। तो इसी प्रकार यहाँ भी जो नाना मोह होते हैं, खोटे रागद्वेष चलते हैं ये कर्म पूर्वक हैं। ये कर्म हैं आवरण। नाम उसका चाहे कुछ भी रख लो, पर यह तो मानना ही पड़ेगा कि आत्माके साथ कोई दूसरी चीज लगी हुई है जिससे यह आत्मा विषम विचित्र नाना परिणतियोंमें चल रहा है। पापकी गतियाँ और स्थितियां बहुत बहुत विषम हुआ करती हैं। कितने ही लोग पशु-पक्षियोंकी रात-दिन हिंसा ही किया करते हैं, उनको इसमें ही शौक है और इस हीसे वे अपनी आजीविका और रक्षा मानते हैं। किसी किसीके झूठ बोलनेकी ऐसी आदत पड़ी है कि उन्हें बिना झूठ बोले चैन ही नहीं पड़ता है। इसी प्रकार चोरी व कुशील आदिक खोटे कामोंमें बहुतसे लोग लगा करते हैं. उनका उसमें अपमान हो जाय तो भी अपमान नहीं गिनते। इस प्रकारके खोटे कामोंमें जो यह आत्मा लग रहा है तो क्या अपने स्वभावसे लग रहा है? नहीं। इस आत्माके साथ किसी दूसरी चीजका सम्बन्ध है, बन्धन है, जिससे यह आत्मा इन खोटे कार्योंमें लग रहा है, यह विपरीत चीज क्या है? वह है कर्म।

कर्म नामका मर्म देखो भैया! इस आवरणका नाम कर्म ही क्यों रखा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

गया। वैसे बहुतसे नाम लोकमें प्रसिद्ध हैं कोई तकदीर कहते कोई भाग्य कहते, पर जैन शासनमें इस आवरणका नाम कर्म रखा गया है। इस कर्म शब्दमें एक मर्म विदित होता है–कर्मका अर्थ है 'क्रियते इति कर्म' जो किया जाय उसे कर्म कहते हैं। अब आत्माके द्वारा किया क्या जाता है? आत्माका कर्म क्या है? जो आत्माके द्वारा किया जाय उसको कर्म कहते हैं। आत्माके द्वारा आत्माका भाव किया जा सकता है। मोह रागद्वेष विषय कषाय ये सारे भाव अशुद्ध दशामें किए जा सकते हैं। तो कर्म नाम तो इनका है। जो रागद्वेष आदिक परिणतियां बनती हैं वे ही आत्माके द्वारा की गई हैं। उनका नाम कर्म है। ऐसे कर्मका निमित्त पाकर जिस अन्य विपरीत वस्तुका बन्धन होता है उसका भी नाम कर्म रखा गया है। तो इन पौद्गलिक कर्मों का आत्माके साथ निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध है यह कर्म शब्दसे ही सूचित है। इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि आत्माके साथ कर्मका बन्धन है। और उस कर्मके आवरण का क्षय होनेपर शिथिल होनेपर यह प्रत्यक्ष ज्ञान उत्पन्न होता है।

कर्मके आवरणत्वकी सिद्धि– अब इतनी बात सुनकर शंकाकार यह कह रहा है कि आपके इस कथनसे तो यह बात सिद्ध हुई कि कर्म कुछ है पर यह तो सिद्ध नहीं हो सका कि इस कर्मका ज्ञानपर आवरण भी हुआ करता है। तो कर्ममें आवरणकी सिद्धिका मार्ग बतलावो तो समाधान देते हैं कि देखो जो ज्ञान अपने विषय में न लग रहा हो तो उसे आवरण कहा जायगा। जैसे जिसके कामला रोग हो गया है उसको अपने नेत्रसे एक चन्द्रमाका ज्ञान नहीं होता। नेत्रका काम है–एक चन्द्र है तो उसको ही जान ले, मगर कामला रोग वालेको तो अनेक चन्द्र दिखते हैं। तो जिस नेत्रका काम था कि जैसा है तैसा जाने। और न जान सके तो समझना चाहिए कि उस नेत्र पर कोई आवरण है। वह है कामला रोगका आवरण ऐसे ही ज्ञानका विषय है समस्त लोकालोकको जानना। जब यह ज्ञान समस्त लोकालोकको नहीं जान पा रहा तो सिद्ध है कि हमपर कोई आवरण है। और, वह आवरण है कर्मका।

व्यवहारी जीवमें तीन पदार्थोंका मेल– इस समय जो हम आप लोग हैं, और भी संसारी जीव हैं, जो कुछ भी दिखता है, जिसे देखकर हम जीव कहते हैं, यह पिण्ड तीन चीजोंका समूह है जीव, कर्म और शरीर। इनमें जीव तो अमूर्त है। है, ज्ञानानन्द स्वभावी है। इसके साथ कर्म लगा है जो सूक्ष्म है। कर्म इतना सूक्ष्म कि जीव जब भव छोड़कर अन्य भवमें जाता है तो शरीर तो यहीं रह जाता है, पर अपने कर्मोंको साथ लेकर चलता है परलोकमें। जन्म चाहे जहां हो, चाहे कितने ही पहाड़ भीट नगर आदिक रास्तेमें कुछ भी पड़ते हों पर जीव उन सबमेंसे पार होता हुआ चला जाता है। उसके साथ ये कर्म भी पार होकर चले जाते हैं। किसी से भिड़ते नहीं हैं, इनका प्रतिघात नहीं होता। कर्म इतने सूक्ष्म हैं। तो जीव है और

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

इसके साथ कर्म लगा है और यह शरीर तो सामने दिखता ही है। जीव अमूर्त हैं वह नहीं दिखता, कर्म सूक्ष्म हैं वे नहीं दिखते। शरीर देखनेमें आता है। लेकिन यह शरीर ऐसा बन कैसे गया। कोई वैज्ञानिक भला ऐसे शरीरको बनाकर तो दिखाये जैसे कि हम आप पशु पक्षी आदिक हैं, जानते हैं, हरकत करते हैं, जैसी हम बात करते हैं उस तरहकी क्रिया करने वाला कोई शरीरको बना तो दे। शरीर बनानेकी बात तो दूर रहो, शरीरधारीके जैसे ये मलमूत्र आदिक निकलते हैं इस प्रकारकी ही चीज बनाकर दिखा दे नहीं बना सकते। तो यह शरीर इस तरह कैसे बन गया ? इसमें जीव और कर्मका सम्बन्ध है और उस निमित्तसे यह शरीर इस प्रकारके रूपको अंगीकार कर गया। तो इसके साथ ये तीन बातें लगी हुई हैं—जीव कर्म, और शरीर।

अकेले जीवमें व्यावहारिकताका अभाव—कोई मजाकिया पुरुष किसीसे कहे कि भाई आपका हमारे यहां कल निमंत्रण है और देखिये हमारी स्थिति खराब है, आप अकेले ही आना. ज्यादा लोगोंके लिए हमारे पास गुंजाइस नहीं है, और आप स्वयं आ जाना, ११ बजे का समय है, आप अपने आप बरोक टोक आ जाना। वह मित्र दूसरे दिन पहुंच गया अपनी मित्रता निभाने। तो वह कहता है—वाह जी वाह, हमने तो कहा था कि आप अकेले आना। ...अरे अकेला ही तो आया हूँ। ......अरे कहां अकेले आये हो ? इतना बड़ा शरीर साथमें लादकर लाये हो, इतने कर्म लादकर लाये हो, हमने तो आपको अकेला ही बुलाया था। अरे तो वह अकेला कैसे आये, यदि अकेला होता तो इसके निमंत्रण देनेकी जरूरत ही न थी। वह तो प्रभु था, अनन्त आनन्दमय था।

कर्मकी अतिसूक्ष्मता व शरीरसे अनन्त गुणे परमाणुवोंकी स्कन्धता—यह जो वर्तमान पिण्ड स्थित है यह जीव कर्म और शरीर इन तीनका समूह है। इसमें जीव तो एक है और शरीर परमाणु अनन्त हैं। और उनसे भी अनन्त गुने परमाणु हैं कर्मके। देखिये—शरीर तो स्थूल है। वजनदार है, बड़ा जोर लग रहा है—इसे उठाये, फेंके धरे। इतना बड़ा पिण्ड होकर भी इस शरीरके परमाणुवोंसे कर्मके परमाणु अनन्त गुने हैं। समझ लीजिये—आपके साथ जिन कर्मोंका बन्धन लगा हुआ है उन कर्मोंमें कितने परमाणु हैं, वे शरीरसे भी अनन्तगुने परमाणु हैं, लेकिन हैं वे इतने सूक्ष्म कि एक भव छोड़नेके बाद जिस भवमें भी यह जीव जाये वहाँ यह अनन्तानन्त कर्म परमाणुवोंका पिण्ड भी बज्रादिकको कुछ भी ठोकर न पहुँचाकर, आघात न पहुंचाकर वहांसे भी निकल जाता है। तो इतने कर्मोंका इस जीवपर बंधन है और वे कर्म आवरण हैं। आवरण तो यों सिद्ध होता है कि जब हम अपने ज्ञानमें कुशल नहीं हो पाते, हम सबको नहीं जान पाते तो सिद्ध होता है कि कुछ आवरण हम पर लगा हुआ है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ज्ञानकी अशेषविषयताके सद्भावमें शङ्का—इतनी बात सुनकर शंकाकार कहता है कि चलो कर्म मानलें, पर पहिले यह तो बतावो कि क्या ज्ञानमें इतनी सामर्थ्य है कि वह समस्त पदार्थोंको जान सकता है। ज्ञानमें जब समस्त पदार्थोंके जाननेकी कला ही नहीं है तो इतना कष्ट क्यों करते हो कि इससे साथ कर्म लगा, आवरण लगा। उसका विनाश होगा तो स्पष्ट मुख्य प्रत्यक्ष ज्ञान उत्पन्न होगा। इतनी बढ़ बढ़कर बातें सिद्ध करनेका श्रम क्यों करते हो। पहिले यह सिद्ध करें कि ज्ञान समस्त पदार्थोंका विषय किया करता है, सर्वका जाननहार है ज्ञान। इस अशेषज्ञताका हेतु कैसे सिद्ध करोगे ? यदि यह कहोगे कि आवरकके विघटनेपर समस्त पदार्थोंको ज्ञान जानता है, इससे ज्ञानकी सर्वज्ञता सिद्ध होती है तो शंकाकार कह रहा है कि इसमें अन्योन्याश्रय दोष है। पहिले जब यह सिद्ध कर लिया जाय कि ज्ञान सबका जाननहार है तब तो यह सिद्ध होगा कि आवरण दूर होनेपर वह सबको जानता है। और जब पहिले यह सिद्ध हो ले कि आवरण दूर होनेपर ज्ञानका पूर्ण प्रकाश होता है तब यह सिद्ध होगा कि ज्ञान समस्त विषयोंको जानता है। इससे तो यह बात सिद्ध नहीं होती कि ज्ञान समस्त लोकालोकका जाननहार है। ऐसी शका होने पर आचार्यदेव उत्तर देंगे कि ज्ञान किस प्रकार समस्त पदार्थोंको जानता है।

ज्ञानकी अशेषविषयताके सम्बन्धमें शङ्काका समाधान—शङ्काकारने जो यह शङ्का रखी है कि ज्ञान समस्त पदार्थोंका जानने वाला कैसे है; ज्ञान समस्त पदार्थोंको नहीं जान सकता ? उसके समाधानमें आचार्यदेव कहते हैं कि जिस शङ्काकारने यह शंका रखी है वह ज्ञानकी अशेषविषयता न माने पर अनुमान प्रमाणको भी सिद्ध नहीं करता। अनुमान प्रमाण बनानेके लिये व्याप्तिका ज्ञान करना पड़ता है। जैसे इस पर्वतमें अग्नि है धुवां होनेसे। यह तो हुआ अनुमान। अनुमान सिद्ध तब हो सके जब यह ज्ञान सही बन जायगा कि जहां जहां धुवां होता है वहां वहां अग्नि होती है। इस प्रकारकी व्याप्तिका ज्ञान पहिले उसका बनेगा तब वह अनुमान बना सकेगा। तो जो अनुमान प्रमाणको चाहता है ऐसे शङ्काकारने भी समस्त आवरणोंकी विकलतासे पहिले समस्त प्राणिमात्रका अशेष विषयक व्याप्तिज्ञान मानना ही पड़ा। अनुमानसे तो इस पर्वतमें अग्नि है, धुवां होनेसे यों एक जगह उसकी दृष्टि बनाली। व्याप्तिज्ञानमें तो जहां जहां धुवां है वहां वहां अग्नि है। इस तरह सब जगतमें धुवां और अग्निका उसे ज्ञान करना पड़ा। लेकिन यह व्याप्तिका ज्ञान अस्पष्ट ज्ञान है। वहां अस्पष्ट ज्ञान इस पर्वतमें स्पष्ट बन जाता है। जाकर देखा—तो यह अग्नि है, यह धुवां है। तो इससे यह सिद्ध है कि जो जिस अपने विषयमें अस्पष्ट ज्ञान है वह नियमसे आवरणसहित है। जैसे जब कभी कुछ छाया हो या बड़ी तेज हवासे धूल उड़ी हो तो उस तेज धूलसे दूरके वृक्ष अस्पष्ट दिखते हैं और कुहरामें भी दूरके वृक्ष अस्पष्ट दिखते हैं—तो क्या है वहां आवरण है कुहराका या धूलका। जब वह आवरण दूर हो जाता है तो वृक्षोंका स्पष्ट ज्ञान हो जाता है। अनुमान ज्ञान और व्याप्तिज्ञानमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भी यही बात है।

ज्ञानकी अशेष विषमताकी सिद्धिमें एक सैद्धान्तिक उदाहरण — व्याप्तिज्ञान तो अस्पष्ट है. उसने जैसे यह बोध किया कि जितने भी सत् हैं वे सब अनेकान्तात्मक हैं तो व्याप्तिसे और अनुमानसे जो जाना गया वह अशेषविषयक अस्पष्ट ज्ञान है, पर हुआ तो है ज्ञान। हम आप सबको अंदाजा तो है कि जगतमें जितने पदार्थ होते हैं वे सब अनेकान्तात्मक होते हैं। तो हमारा यह अस्पष्ट ज्ञान है, हम सारे पदार्थोंको स्पष्ट नहीं जान रहे, सबकी उनकी अनेकान्तात्मकताको प्रभुकी तरह हम स्पष्ट नहीं जान सकते लेकिन अस्पष्ट ही सही। जो ज्ञान अपने विषयमें अस्पष्ट है वह किसी जगह स्पष्ट भी होता है। तो प्रभुमें वह स्पष्ट है। अथवा मिथ्या दृष्टि जीवोंमें इन समस्त अनेकान्तात्मकोंके प्रति विपरीत ज्ञान लगा हुआ है। पदार्थ हैं अनन्तधर्मात्मक और एकान्तवादी मानते हैं कि पदार्थ अमुक धर्म रूप ही है तो वह ज्ञान सावरण है क्योंकि मिथ्याज्ञान होनेसे। जैसे कोई पुरुष धतूरा आदिक रसोंका पान करले तो मिट्टीका भी टुकड़ा हो तो उसे सोनेके टुकड़ेकी तरह मालूम होता है। उसमें उसे सर्वत्र पीला नजर आता है, तो उसका वह ज्ञान आवरण सहित है। इससे यह बात सिद्ध है कि आवरण पौद्गलिक कर्म हैं।

मुख्य प्रत्यक्षसे सम्बन्धित चार बातोंपर प्रकाश —इस प्रकरणके मूलमें चार बातें सिद्ध की जा रही हैं। मुख्य प्रत्यक्ष ज्ञान होता है, वह सम्पूर्ण रूपसे स्पष्ट होता है। मुख्य प्रत्यक्षमें तीन ज्ञान आते हैं अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान। फिर भी मुख्यतासे यहाँ केवलज्ञानपर दृष्टि देना है। मुख्य प्रत्यक्षज्ञान सम्पूर्ण रूपसे स्पष्ट होता है और वह अतीन्द्रिय होता है। इन्द्रिय मनकी अपेक्षा न रखकर अपने विषयमें प्रवृत्त होता है। तीसरी बात है— वह निरावरण होता है। उस ज्ञान का जो आवरण था, वह समस्त आवरण हट चुका। चौथी बात यह बतायी गई है कि आवरणका हटना सामग्री विशेषके द्वारा होता है। वह सामग्री विशेष है अन्तरङ्ग में तो सम्यग्ज्ञान आदिक भाव और बहिरङ्गमें योग्य द्रव्य क्षेत्र आदिक। इस प्रकार इस प्रकरणमें चार बातोंको युक्तियोंसे सिद्ध किया जा रहा है। आगममें लिखा है सो मान लें इसकी कोई प्रतिष्ठा नहीं है न्यायविषयमें, क्योंकि आगमवादी अपने लिए मान लें दूसरोंको तो मना नहीं सकते। तो इन चार बातोंकी सिद्धि करते हुएमें इस प्रकरणमें यह सिद्ध किया गया है कि ज्ञानका आवरण करने वाला कर्म है और वह पौद्गलिक है।

अविद्याके ही आवरणत्वका एक प्रश्न कर्मोंकी पौद्गलिकता सिद्ध करने की बातका जब कोई उत्तर न मिला, इसका निराकरण नहीं किया जा सकता तो शङ्काकार यह कहता है कि पौद्गलिक कर्म आवरण नहीं है, आवरण तो आत्मापर अवश्य है किन्तु अविद्याका आवरण है। पौदगलिक कर्मोंका आवरण नहीं है आत्मा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

पर, क्योंकि पौदगलिक कर्म हैं मूर्तिक, और मूर्तिक पदार्थोंसे अमूर्त ज्ञान आदिकका आवरण सम्भव है नहीं। यदि मूर्तिकके द्वारा अमूर्तिकका आवरण होने लगे तो ज्ञानके आवरण करने वाले शरीर आदिक हैं इसको मान लीजिए। फिर पौद्गलिक कर्मोंके सोचनेकी जरूरत क्या है ? जो सोचा जा रहा है वह दिखता नहीं है फिर भी उसके सिद्ध करनेका प्रयास किया जाता है। अरे शरीर तो स्पष्ट दिखता है और मूर्तिक से तुम अमूर्त पदार्थका आवरण करने वाला मानते। तो शरीरको ही आवरण मान लो अगर मूर्तको ही आवरण माना है तो। अन्यथा हमारी अर्थापत्तिसे तो मूर्तिक पदार्थ अमूर्तिक ज्ञान आदिकका आवरण नहीं कर सकते हैं इसलिए पौदगलिक कर्मों का आत्मापर आवरण नहीं है, किन्तु अविद्या ही एक आवरण है। इस प्रकार ब्रह्मा द्वैषवादीने अथवा ज्ञानाद्वैतवादीने यह शङ्का उपस्थित की। ऐसी शङ्का होना उनका स्वाभाविक है क्योंकि जब एक ब्रह्म ही तत्त्व है, अन्य कुछ है ही नहीं तो ब्रह्मसे विपरीत मान ही कैसे लिया जायगा ? अविद्या एक भ्रमरूप मान ली जायगी और आवरण समझा जायगा। यही आपत्ति ज्ञानाद्वैतवादीको होती है। तो इन दोनों सिद्धांतोंने यह शङ्का रखी कि ज्ञानपर आवरण केवल अविद्या ही है, पौद्गलिक कर्म नहीं है।

अविद्या ही ज्ञानका आवरण है इस शङ्काका समाधान—आत्मापर अविद्या ही आवरण है इस शंकाका उत्तर आचार्यदेव देते हैं। यह कथन युक्त नहीं होता। मूर्तिकसे अमूर्तिकके आवरणके हम बिल्कुल साफ तौरसे अनेक दृष्टान्त प्राप्त करते हैं जैसे मदिरा पीने वाले लोग पीते तो हैं मदिरा जो कि मूर्तिक है लेकिन उस मूर्तिक पदार्थका सम्बन्ध होनेसे उनका ज्ञान बेहोश हो जाता है तो मूर्तिक मदिराके द्वारा अमूर्तिक ज्ञानका आवरण हुआ ना। और अमूर्तिक ज्ञानका आवरण मूर्तिकको ही मानना पड़ेगा। यदि अमूर्तिक ज्ञानका आवरण अमूर्तिक चीजको मान लोगे तो आकाश भी आत्माके ज्ञानके लिए आवरण बन जाय। अतः अमूर्तका अमूर्तपर आवरण हो नहीं सकता। कोई अमूर्तसे विपरीत ही चीज हो तिसका आवरण है। यदि यह कहो कि आत्मा अमूर्त है, रूप, रस, गंध, स्पर्शसे रहित है और आकाश भी अमूर्त है। उसमें भी रूप— आदिक नहीं हैं, तो चूंकि वह आत्मासे अविरुद्ध है, विपरीत नहीं है इस जातिकी अपेक्षासे याने ज्ञान भी अमूर्तिक है और आकाश भी अमूर्तिक है तो अविरुद्ध होनेके कारण, एक जातिके होनेके कारण आकाशसे ज्ञानका आवरण नहीं बनता ? तो कहते हैं कि यही बात तो हमें इष्ट है। अमूर्तिक आत्मा है तो उस का आवरण उसके विरुद्ध कोई मूर्तिक पदार्थ ही बनेगा।

अमूर्तिकका मूर्तिकसे ही आवरणकी किसी पद्धतिसे संभवता—अब शङ्काकार यहाँ यह कहता है कि देखो ! प्रवाहरूपसे यह ज्ञानादिक जो चल रहा वे उसका जो निरोध है वह अविद्याके उदयसे ही तो है। ज्ञान प्रवाहरूपसे चला जा सकता था और जितना भी चल रहा है उसका अज्ञानके उदयसे निरोध है। अज्ञान है

अविद्या है तो ज्ञानका विकास नहीं हो पाता। इस कारण अविद्या ही ज्ञानका आवरण है पौद्गलिक कर्म नहीं हैं। तो कहते हैं कि इस तरह यह भी कहा जा सकता है कि प्रवाहरूपसे चल सकने वाले ज्ञानमें पौद्गलिक कर्मोंका उदय होनेसे निरोध हुआ है इसलिए ज्ञानका विरोधक आवरण करने वाला कर्म ही हो सकता है। अविद्या ही आवरण है, ऐसा कहने वाले शङ्काकारके प्रति आचार्यदेव यह सिद्ध कर रहे हैं कि नहीं पौद्गलिक कर्म ही वास्तवमें इसके आवरक हैं। यद्यपि निश्चय दृष्टिसे आत्माका ही कोई परिणाम आत्माके किसी परिणामका विरोधक है और साधक है, अज्ञानका उदय हुआ, भ्रम आया तो ज्ञान न रहा तो निश्चय दृष्टिसे तो ज्ञानका आवरण अविद्या है लेकिन ज्ञानका कारण यह अविद्या हो कैसे गयी? और, ऐसा आवरण इस जीवमें निरन्तर क्यों न बना रहेगा, अथवा ऐसा ही यह आवरण होना आत्माका स्वरूप क्यों न हो बैठेगा? इस प्रश्नका समाधान तब तक नहीं हो सकता है जब तक अमूर्तिक आत्मासे विरुद्ध मूर्तिक किसी कर्मका आवरण न माना जाय। इसीको सिद्ध करते हैं कि आत्मामें जो विपरीत ज्ञान होता है वह ज्ञान पुद्गल विशेषके सम्बन्धके कारण होता है क्योंकि आत्माके स्वरूपके विपरीत यह विकास है। जैसे मदिरा आदिकके पान करनेमें जिसके बेहोशी हुई है तो उसकी यह बेहोशी किसी अन्य पदार्थके कारण से हुई है, इसी प्रकार आत्मामें जो रागद्वेषादिक होते हैं, जो ज्ञानका निरोध होता है विपरीत ज्ञान होता है वे सब पौद्गलिक कर्मके निबंधनक हैं, उसके निमित्त हैं, इस प्रकार ज्ञानपर आवरण छाया है पौद्गलिक कर्मोंका यह बात सिद्ध होती है।

अज्ञानपरम्परामें भी पौद्गलिक कर्मकी आवरणताकी सिद्धि— यहाँ शङ्काकार एक युक्ति तलाश कर कह रहा है कि मिथ्याज्ञानोंकी परम्परा जब चल रही है तो अन्य जो मिथ्याज्ञान उत्पन्न हुए हैं वे तो मिथ्या ज्ञानपूर्वक हैं ना, उन मिथ्या ज्ञानोंका कारण तो मिथ्याज्ञान हुआ ना, तो यह बात गलत रही कि मिथ्याज्ञान पौद्गलिक कर्मोंके कारण होता है। उत्तरमें कहते हैं कि जैसे कोई आदमी शराब पीता है और मानो उसका नशा आधा घंटा तक रहता है, उसने फिर १५–२० मिनट बाद शराब पी लिया फिर और नशा बढ़ गया, फिर और शराब १५ २० मिनट बादमें पी लिया फिर और नशा बढ़ गया तो उन नशोंकी परम्परा जो बढ़ी तो क्या उसमें यह कहा जायगा कि अब यह नशा पहिलेके नशाके कारण हुआ है? यद्यपि आध २ घंटे तक ही नशा चल सकता था लेकिन २ घंटे तक चलता रहा पर उत्तरोत्तर जितने नशा बन रहे हैं वे पूर्व नशाके कारण नहीं बन रहे हैं, किन्तु बीच बीच जो मदिरा पी रहा है उस मदिराके कारण वे नशा बन रहे हैं। इसी प्रकार कहीं मिथ्याज्ञान लगातार चलता रहता है तो उसके लगातार मिथ्याज्ञानके कारण भूत कर्मोंका उदय भी चल रहा है। ऐसा नहीं है कि उसका मिथ्याज्ञान पूर्व मिथ्याज्ञानके कारण हो रहा है। वहां कर्मोदयके कारण नहीं है। जितनी भी आत्माकी विपरीत दशायें हैं वे सब पौद्गलिक कर्मोंके उदयके कारण हैं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

स्वभावविरुद्ध कार्योंकी विरुद्ध कारणसे ही संभवता— हम आप सब किसी संकुचित दायरेमें अपनी जानकारी करें, आनन्द भोगें, प्रीति करें आदिक जो हमारे परिणमन चलते हैं वे सब परिणमन स्वभाव नहीं हैं, पर थोड़ा सा ही जाने यह उसका स्वभाव नहीं है। हम किसी एक जीवपर राग करें यह हमारा स्वभाव नहीं है, या अनेकपर करें, स्वभावके विरुद्ध जितने भी कार्य हो रहे हैं जितना भी हमारा यह विषैला वातावरण चल रहा है निश्चय दृष्टिसे तो हमारी परम्परा पूर्वके भावोंके कारण चल रही है, लेकिन बिना किसी अन्य पदार्थके सम्बन्ध हुए यह परम्परा ही नहीं बन सकती, तो मानना होगा कि जीवके साथ ज्ञानावरण कर्म लगा है, उस ज्ञानावरण कर्मका जब क्षय होता है तो आत्मा में वह अशेष पदार्थोंको जानने वाला मुख्य प्रत्यक्ष प्रकट होता है। तो इस प्रकार ये चारों बातें यथार्थ हैं कि यदि रत्नत्रय आदिक भावोंके कारण आवरणका वियोग होता है और जब यह ज्ञान निरावरण होता है और यह ज्ञान इन्द्रिय मनकी अपेक्षासे उत्पन्न नहीं होता है, स्वयं ही अपने आत्मासे प्रकट होता है और तीन लोक तीन कालवर्ती जितने भी सत् हैं उन समस्त सतोंका जाननहार होता है।

ग्रन्थके ज्ञान प्रमाणके स्वरूपका आधार— इस ग्रन्थमें प्रमाणकी सिद्धि की गई है, सारा व्याख्यान प्रथम सूत्रपर आधारित है। ज्ञानका लक्षण बताया है कि जो खुदका और परपदार्थोंका निश्चय कराये उस ज्ञानका नाम प्रमाण है। यहाँ खुद का नाम आत्मा नहीं है किन्तु ज्ञान स्वयं अपने उस ज्ञानको जानता है कि यह सही है और उस ज्ञानमें जो बाहरी पदार्थ जाने गए हैं उन्हें भी समझता है कि यह पदार्थ यही है। जो भी मनुष्य किसी पदार्थका सही निर्णय मानता है— जैसे कि यह चौकी ही है, यह बिल्कुल ठीक ज्ञान हो रहा है एसी जो चौकीके ज्ञानकी ठीकताई कबूल करे उसने अपने अन्तरङ्गमें यह भी कबूल कर लिया है कि चौकीका जो यह ज्ञान हो रहा है यह ज्ञान बिल्कुल सही है। ज्ञानके स्वरूपका सहीपन जाने बिना पदार्थ भी सही हैं यह नही समझा जा सकता। इस कारण ज्ञानमें यह कला है, उसका यह स्वरूप है कि वह अपनेको और पदार्थोंको जाने। इस लक्षणपर बहुत सी शङ्काएँ उठीं, उनके उत्तर हुए अब यहाँ उस ज्ञानके भेद चल रहे हैं।

ज्ञानके भेद— ज्ञान दो प्रकारका होता है - प्रत्यक्ष और परोक्ष। दार्शनिक दृष्टिसे भेद किए जा रहे हैं। प्रत्यक्षके दो भेद हैं— एक सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष और दूसरा मुख्य प्रत्यक्ष। हम इन्द्रियके द्वारा जो कुछ जानते हैं सही, तुरन्त, वे सब सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष हैं। जिसे सिद्धान्तमें उत्पत्ति आदिककी अपेक्षा देखकर परोक्ष कहा गया है और जो वस्तुतः तो परोक्ष है पर एकदेश निर्मय है वह ज्ञान कारणसे प्रत्यक्ष माना गया है। दूसरा है मुख्य प्रत्यक्षमें अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान आये। तो उस मुख्य प्रत्यक्षकी यहां चर्चा की जा रही है, वे कैसे उत्पन्न होते हैं उन

Version 1

का कैसा स्वरूप है। इस प्रकरणमें यह भी जानियेगा कि आत्मामें ये ५ ज्ञान हुए — मतिज्ञान श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान। जिसमें मतिज्ञानका भेद मति जो एकदेश विशद हो रहा है जिसे मति, स्मृति, संज्ञा, चिन्ता आदिक इनमेंसे केवल मतिका हिस्सा कहते हैं वह सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष है। यद्यपि मतिज्ञान ये सब कहलाते हैं मति, स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क और स्वार्थानुमान, लेकिन इनमें जो मति है अर्थात् इन्द्रियके द्वारा जो साक्षात् तुरन्त जाना गया है वह एकदेश विशद है इस कारण उसे सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहते हैं।

विकासोंका भूतार्थ पद्धतिसे अवगम करनेका प्रभाव —आत्मामें ये ५ ज्ञान पर्यायें जिस ज्ञानकी हो रही हैं, जिस ज्ञान स्वभावसे उत्पन्न होती हैं उस ज्ञान स्वभावपर दृष्टि दें तो वह ज्ञानस्वभाव एकरूप है, जो मेरा स्वरूप है वही है और जो इस ज्ञानस्वभावकी ये परिणतियाँ ५ रूपोंमें हुई हैं। हम किसी भी पदार्थकी पर्यायको निरखनेकी यदि ऐसी पद्धति बना लेते हैं कि देखो ! यह पर्याय है ना, यह पर्याय इस आधारसे प्रकट हुई है, इसे कहते हैं भूतार्थपद्धति। अभूतार्थपद्धतिमें निमित्तनैमित्तिक सम्बन्धका निर्णय है और भूतार्थपद्धतिमें उस ही द्रव्यसे उसकी वह पर्याय उत्पन्न हुई है, तो ये पांचों ज्ञान जिस ज्ञानस्वभावसे उत्पन्न हुए हैं वहां हम यह निरखें कि लो यह ज्ञानपर्याय इस ज्ञानस्वभावसे प्रकट हुई है, तो यह पद्धति हमारी एक भूतार्थकी पद्धति होगी और इसमें विकल्प शान्त होंगे और एक आधारभूत ध्रुव तत्त्व हमारी दृष्टिमें रहेगा। इसका प्रभाव मोक्षमार्गके अनुकूल बनता है, इसी कारण कुतत्त्वको और सुतत्त्वको आश्रवबंध भावोंको सम्बर निर्जरा मोक्ष भावोंको एक भूतार्थपद्धतिसे निरखनेके लिए उपदेश किया गया है। निर्णय तो होगा समस्त नयोंसे, अभूतार्थसे किस तरह है, भूतार्थसे किस तरह है, परस्परका क्या सम्बन्ध है, ये सब निर्णय चलेंगे लेकिन साधनाके प्रसङ्गमें हमें उन सब पर्यायोंको इस पद्धतिसे निरखना होगा कि लो यह परिणति है और यह परिणति इस उपादानसे हुई है। इस ध्रुव पदार्थसे हुई है, यह उसका आधार है और इसमें ही उस समयका यह उस प्रकारका विकास है। इस तरह हम विकासको उपादान कारणसे उद्भूत हुआ निरखेंगे तो हमारी दृष्टि बहुत विकल्पोंसे दूर होगी और वहाँ हम ध्रुव स्वभावका परिचय पा करके एक विशुद्ध आनन्दका अनुभव कर सकेंगे।

कर्मको आत्माका गुण माननेवालेकी शङ्का—अब तक यह सिद्ध किया गया है कि ज्ञानमें समस्त त्रिकाल त्रिलोकवर्ती पदार्थोंके जाननेकी सामर्थ्य है, किन्तु उस पर पौद्गलिक कर्मोंका आवरण है जिसके कारण यह ज्ञान समस्त विश्वका ज्ञान नहीं कर पाता। फिर भी जिन भव्य जीवोंके सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रका बल प्रकट हुआ है वह अपने इस रत्नत्रय धर्मके प्रसादसे आवरणोंका क्षय कर देता है तो यह ज्ञान निरावरण समस्त विश्वका जाननहार हो जाता है। इसपर एक शङ्काकार यह कह रहा है

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कि कर्म तो आत्माका गुण है उसे पौद्गलिक कैसे कहते हो? सुख दुःख इच्छा रागद्वेष प्रयत्न धर्म अधर्म संस्कार इनको आत्माका गुण माना है और ये आत्मा के गुण नष्ट हो जाते हैं तब मोक्ष होता है। इस सिद्धान्तके अनुसार धर्म और अधर्म ये कर्म कहलाते हैं। तो ये कर्म आत्माके गुण हैं न कि पौद्गलिक। शङ्काकार ऐसी शङ्का कर रहा है।

कर्मको आत्मगुण माननेपर कर्ममें आत्माकी परतन्त्रताकी अकारणताका प्रसंग—समाधान देते हैं कि कर्म आत्माकी परतन्त्रतामें कारण नहीं बन सकता, क्योंकि आत्माका ही गुण यदि आत्माकी परतन्त्रताका कारण बन जाय तो फिर सभी समय परतन्त्रता रहनी चाहिए। कभी उसकी मुक्ति हो ही नहीं सकती। जो गुण जिस पदार्थका है वह गुण उस पदार्थकी परतन्त्रताका कारण नहीं बनता। जैसे पृथ्वीमें रूप गुण है तो क्या रूप गुण पृथ्वीकी परतन्त्रताका कारण है? सभी पदार्थों में निरख लो—जिस पदार्थका जो गुण है वह गुण उस पदार्थकी परतन्त्रताका कारण नहीं बन सकता है। यदि कर्म आत्माका गुण मान लोगे, चाहे वह धर्म अधर्म ही है, पर आत्माका गुण है तो आत्माकी परतन्त्रता नहीं बन सकती है। इससे कर्म पौद्गलिक ही हैं, आत्माके गुणरूप नहीं हैं। जो इस सिद्धान्तने माना है कि धर्म और अधर्म नामका गुण है और धर्म अधर्मको छोड़कर कुछ कर्म होता नहीं है। सो आत्मा का गुण है इस नातेसे फिर यह कर्म आत्माकी परतन्त्रताका कारण नहीं हो सकता। पर, ऐसा है तो नहीं कि आत्मा परतन्त्र न हो।

आत्माके पारतन्त्र्यकी सिद्धि—आत्मा परतन्त्र है, इसकी प्रमाणसे सिद्धि है। क्या प्रमाण है कि आत्मा परतन्त्र है? तो इसका अनुमान ज्ञान सुनो। यह आत्मा परतन्त्र है क्योंकि यह हीन स्थानका परिग्रह रखता है। हीन स्थान क्या हुए?…जन्म, जरा, मरण, रोग शोक आदिक। कोई उच्च बातें तो ये नहीं हैं, रागद्वेष विकल्प मोह ये सारे हीनस्थान हैं। इन हीन स्थानोंका परिग्रह चूंकि इसको लग रहा है इससे सिद्ध है कि यह आत्मा परतन्त्र है। जैसे कि जो पुरुष मद्यपायी गंदी नालियोंमें गिर पड़ता है, अशुचि घरोंमें गिरता है—चारुदत्त सेठको वेश्याने मोहित करके मदिरा पिलाकर बेहोश करके सडासमें पटक दिया था। इसी प्रकार जो मद्यपायी लोग हैं उनकी ऐसी हीन दशा होती है कि पड़े रहते हैं, उनके ऊपर अथवा मुखमें कुत्ते भी मूत जाते हैं मगर उन्हें पता नहीं है, तो ऐसे हीन स्थानोंका परिग्रहण जब उस मद्यपायीके लग रहा है तो उससे स्पष्ट साबित है ना यह, कि यह परतन्त्र है मदिराके नशेसे। इसी तरह जब यह जीव लोक, ये संसारके प्राणी हीन स्थानोंमें हमें नजर आ रहे हैं, कैसे कैसे घृणित शरीरोंमें ये बंधे हुए हैं। वर्तमानके ही मनुष्यभव को ले लीजिए। यह मनुष्य शरीर कितना घिनावना है, जुखाम हो, अन्य विकार हो, कैसे कैसे घृणित रोग हो जाते हैं। और, अधिक न जावो तो जब पसीना निकल

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बैठता है और शरीरमें चपचप होने लगता है तो वही नहीं सुहाता—न खुदको न दूसरोंको तो ऐसे ही हीनस्थानका परिग्रह लग गया है जीवको तो उससे यह सिद्ध है कि आत्मा परतंत्र है।

शरीरके हीनस्थानताकी सिद्धि—यह शरीर हीनस्थान है क्योंकि शरीर आत्माके दुःखका कारण है। जैसे कारागार, जेलखाना वह हीनस्थान है या उच्चस्थान है ? हीनस्थान है, ऐसे ही यह शरीर हीनस्थान है सारे दुःख इस शरीरके कारण लगते हैं। क्षुधा तृषा आदिक रोग ये तो शरीरके कारण स्पष्ट हैं, पर नामवरीके रोग भी शरीरके कारण हैं इस जीवने अपने प्राप्त शरीरके ढाँचेको माना कि यह मैं हूं, तो अब इसकी अभिलाषा हुई कि मेरा नाम होना चाहिए। मेरेके मायने यहां उस सहज चैतन्य स्वरूपका नही यहां मेरेके मायने है यह शरीर। उस चैतन्य स्वरूपकी किसे खबर है ? अगर उसकी खबर हो तो नामवरीकी चाह भी नहीं रह सकती, क्योंकि वह तो निर्विकल्प एक ज्ञानप्रकाश मात्र तत्त्व है। नामवरी होनी चाहिए। किसकी ? जो शरीर मिला है ढाचा सकल सूरत मिली है, बस इसकी नामवरी होना चाहिए। अब नामवरीकी आशामें कितने क्लेश सहने पड़ रहे हैं। कैसे २ गंदे कलंकित मलिन पुरुषोंको भी प्रसन्न करनेका मनमें विकल्प करना पड़ रहा है कितना कठिन परिश्रम करना पड़ता है। आत्माके शुद्ध दर्शनसे भी हाथ धो देना पड़ता है। तो नामवरी फैलानेका रोग भी इस शरीरके कारण है। बड़े छोटे कष्टों का नाम तो लो, कुछ भी नाम लो—परिवारमें नहीं बनती अथवा पुत्रादिकका क्लेश है, सुपूत कुपूतकी वेदना है तो यह क्यों हुआ अमुक रिस्तेदारने धोखा दिया है, अमुक का व्यवहार ठीक नहीं है, जितने भी दुःख हो रहे हों, मानसिक दुःख भी हो रहे हों, तो उन सबका कारण यह शरीर है। तो शरीर समस्त दुःखोंका कारण है इस कारण शरीर हीनस्थान है।

पौद्गलिक कर्मकी निमित्त कारणरूपता—हीनस्थान परिग्रह वाले ये संसारी जीव हैं यह बात प्रसिद्ध ही है। अतएव आत्मा परतन्त्र हैं। इस परतन्त्रता का कारण कर्म हैं। कर्म पौद्गलिक हैं और उनकी परतंत्रता है इस संसार अवस्थामें इसकी सिद्धिमें यह बात बताई गई है कि कर्म यदि आत्माकी जातिके होते, आत्माके गुण होते तो उनसे आत्मामें परतन्त्रता न आती। इससे सिद्ध है कि कर्म आत्माके गुण नहीं, आत्माके धर्म नहीं, किन्तु आत्माकी जातिसे विरुद्ध पौद्गलिक तत्त्व आत्मा की परतन्त्रताके कारण हैं। जब कभी निश्चय दृष्टिसे निरखा जाय तो यह ज्ञात होता है कि आत्माकी परतन्त्रताका कारण विषय और कषायके परिणाम हैं, किन्तु ये विषय कषायके परिणाम अहेतुक हैं या स्वयं आये हैं ? कैसे आये हैं ? इसके समाधानमें पौदगलिक कर्म मानना ही पड़ेगा। यद्यपि द्रव्य कर्मका द्रव्य क्षेत्र काल भाव कुछ भी आत्मामें नहीं पहुंचता तथापि द्रव्यकर्मके उदयका निमित्त पाकर भावकर्म

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हुए हैं। सो विषय कषाय भाव तो परतन्त्रतारूप है परतन्त्रता जीवकी भावकर्म है, तो आखिर परतन्त्रताका कारण परवस्तु द्रव्यकर्म ठहरा। यों पौद्गलिक कर्मकी सिद्धि हो रही है। यह जीव परतन्त्र है यह सिद्ध करता है कि परतंत्रताका कारणभूत कर्म है। परतंत्रता स्पष्ट है कि यह जीव हीन–हीनस्थानोंमें रम रहा है, शरीर जन्म मरण ये सारे हीन ही तो हैं, विकल्प भी सब हीनस्थान हैं, यह उन परिग्रहोंमें लग रहा है इससे सिद्ध है कि जीव परतन्त्र है और उसका कारण पौद्गलिक कर्म है, जिस कर्मके क्षय होनेपर मुख्य प्रत्यक्ष ज्ञान प्रकट होता है यहां एक और शङ्का लेकर शङ्काकार कहता है कि यह कहना तो बिल्कुल सही नहीं जच रहा कि जीवको हीनस्थानका परिग्रह लग रहा है। देवगतिके जीव जिनका शरीर वैक्रियक है, सुभग है, निर्दोष है, रोगादिक नहीं है, ऐसे उत्तम शरीरमें देव रहते हैं तो वह हीनस्थान कैसे रहा ? उत्तर यह है कि वह शरीर भी हीनस्थान है क्योंकि उसका भी मरण जब होता है तो मरण समयमें जो वेदना होती है उस वेदनाका कारण क्या है ? उस दुःखका हेतु है यह शरीर। तो जिस कारण यह परतन्त्र है जीव उस कारणसे सिद्ध होता है कि इसके साथ कोई विरुद्ध चीज लगी है और वह चीज है पौद्गलिक कर्म।

कषायोंकी पारतन्त्र्यस्वरूपता व उसका निमित्तकारण शङ्का—ये कर्म पौदगलिक ही हैं यह कैसे जानें ? रहे आयें कर्म आत्मासे भिन्न, पर ये पौद्गलिक ही हैं। इसकी सिद्धि किस प्रकार होगी ?

उत्तर—देखिये, कर्म पौद्गलिक ही हैं अन्यथा ये परतन्त्रताके कारण न बन सकते थे। जैसे हथकड़ी आदिक ये पौद्गलिक हैं और ये जीवकी परतन्त्रताके कारण हैं। शायद यह कहो कि क्रोध, मान, माया, लोभ, ये कषायें ये परतंत्रताके कारण हैं पर मूर्त तो नहीं, पौद्गलिक तो नहीं। तो पौद्गलिक न होनेपर भी परतंत्रताके कारण बन गए हैं ये विषय कषाय। तो यह बात कैसे सिद्ध होगी कि परतन्त्रताका कारण तो पौद्गलिक कर्म है। आचार्यदेव उत्तर देते हैं - और सुनिये कितना स्पष्ट भाव है उनका कि क्रोधादिक परतन्त्रताके कारण नहीं हैं। किन्तु स्वयं परतन्त्रता है। भावकर्म ये आत्माकी परतन्त्रताके कारण नहीं हैं कारणभूत नहीं हैं किन्तु क्रोधादिक स्वयं परतन्त्रताएँ हैं और अब उन परतंत्रतावोंका कारण निहारो, वह है पौद्गलिक कर्म। क्रोधादिक परिणाम तो जीवकी परतंत्रता है, परतंत्रताका निमित्त देखिये पौद्गलिक कर्म।

अपनी चर्चा सुननेमें प्रमाद न करनेका अनुरोध—देखो भैया ! यह सब वर्णन चल रहा है अपने आपके जीवकी स्थितियोंका। कठिन वर्णन नहीं है लेकिन कठिन मानकर पहिलेसे ही उपयोगको ढीला करदे और जहाँ संस्कार बसा है घरमें या अन्य जगह, वहाँ ही मनको फेंक दे लगादे, तब यह तत्त्व ग्रहणमें न आ सके तो उसकी औषधि तो आप ही कर सकेंगे। जिस ज्ञानमें इतनी सामर्थ्य है कि बड़ी सी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बड़ी समस्याओंको हल करले वह ज्ञान क्या अपने आत्माके विषयकी बातको इसकी समस्याको हल नहीं कर सकता। देखो आत्माका क्या तो स्वभाव है क्या बन बैठा है? ये समस्यायें हल न की जा सकेंगी क्या? जीवकी बाम चल रही है। यह है ज्ञामस्वभावी। ज्ञानमें कोई सीमा नहीं होती। यह आत्मा कितना जाने, कहाँ तक जाने? सीमा नहीं है। ऐसा अपार ज्ञानस्वभाव है यह प्रकट नहीं है तो इसका क्या कारण है? यह बात कही जा रही है। यहाँ शङ्काकारकी यह बात निराकृत कर दी गई है कि कर्म तो आत्माका गुण है, कर्म आत्माका गुण नहीं है।

अदृष्टको प्रकृतिपरिणाम माननेकी आशङ्का - इतनी सिद्धिके पश्चात् अब एक सिद्धान्त कहता है कि बहुत ठीक कहा आपने कि कर्म (अदृष्ट) आत्माका गुण नहीं है, क्योंकि वह तो प्रकृतिका परिणाम है, प्रधानका परिणमन है, पुण्य पाप जितने भी भाव हैं ये प्रकृतिके विकार हैं। शङ्काकारका आशय समझ लीजिए, इस सिद्धान्तके अनुसार यह निरखा गया है कि जीव तो स्वच्छ अबद्ध, चैतन्यस्वभाव मात्र है, अपरिणामी, अविकारी है। अब जितनी बलायें हैं, बलायें क्या क्या ज्ञान लग बैठा। यह उस सिद्धान्तमें बला है क्योंकि उसका मंतव्य है कि आत्मामें ज्ञान न लगा होता तो कोई कष्ट ही न था। हम जब कुछ जानते हैं, आज भाई बीमार हो गया अमुक गिर गया, अमुक मर गया तो ज्ञानमें आया तब दुःख हुआ। ज्ञान न होता तो दुःखकी कोई बात ही न थी। तो ज्ञान भी ऐब है और रागद्वेष पुण्यपाप, अहङ्कार विषय भोग ये भी ऐब हैं, ये सारे ऐब प्रकृतिसे उत्पन्न होते हैं जीवसे नहीं होते। आत्मा तो सदा शाश्वत निर्विकल्प चित्स्वरूपमात्र एक है। इस सिद्धान्तमें चैतन्यमें और ज्ञानमें फर्क है। आत्माका स्वरूप चैतन्य है, ज्ञान नहीं। ज्ञानतत्त्व, जिसका दूसरा नाम है महत्तत्त्व, वह प्रकृतिसे उत्पन्न होता है। इस पुण्यपापकी तो फिर बात ही क्या कहना है? ये पुण्य पाप भाव आत्माके गुण नहीं हैं क्योंकि प्रकृतिके परिणाम हैं?

विकारको प्रधानपरिणाम माननेमें आपत्ति—अदृष्ट (कर्म) को प्रकृति-धर्म माननेकी शङ्काका आचार्यदेव उत्तर देते हैं कि यह कहनो तुम्हारा मनोरथमात्र है। अपने घर बैठे हुए अपनी कल्पनाओंमें कुछ भी सोचते जावो यह सारा विकार प्रधानका है। आत्माका इसमें कुछ भी लगाव नहीं है। यह बात यों सम्भव नहीं कि यदि यह पुण्यपाप प्रकृतिका ही परिणमन है तो परतंत्र कौन बना? प्रकृति बनी। जब प्रकृतिके ही ये धर्म हैं पुण्य पाप, तो वह आत्माकी परतन्त्रताका निमित्त होता ही नहीं है। और तुमने आत्माको परतन्त्र वैसे भी नहीं माना। तो फिर प्रकृतिके इन परिणमनोंमें पुण्यपापमें कर्मपनेकी संज्ञा नहीं दे सकते। यदि यह कहो कि न रहो कर्म आत्माकी परतन्त्रताके कारण, ये पुण्य पाप ये प्रधानके परिणाम आत्माकी परतन्त्रता के कारण न रहो, किन्तु वे प्रधानकी प्रकृतिके परतन्त्रताके तो कारण हैं। इसलिए

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उन्हें कर्म कहना ठीक है। अच्छा, उन्हें इस प्रकार कर्म नाम देते हो तो प्रधानका ही बंध कहलाया और प्रधानका ही मोक्ष कहलाया। प्रधान प्रकृति दोनों एक ही अचेतन की संज्ञायें हैं, जिसे हम कर्म कहते हैं समझलो, करीब करीब उसके स्रोतको वे प्रकृति कहते हैं। तो फिर प्रकृतिका ही बंध हुआ, प्रकृतिका ही मोक्ष हुआ। फिर आत्माकी कल्पना भी करनेकी क्या जरूरत है। बंधका फल भोगे तो क्या आत्मा भोगेगा फिर? प्रकृतिने तो किया और आत्मा फल भोगे? अदृष्टको प्रकृतिका धर्म माननेपर फिर न आत्माका बंध है न आत्माका मोक्ष है? फिर आत्माकी कल्पना करना ही क्या ठीक है?

आत्मामें प्रकृतिपरिणामके भोक्तृत्वकी आशङ्का—अदृष्टको प्रकृतिधर्म मानने वाले कहते हैं कि नहीं, आत्मामें बंध और मोक्षका फल होता है, करने वाली तो प्रकृति है और भोगने वाला आत्मा है। देखो—इस सांख्य सिद्धान्तकी बात कहां तक उसके अभिप्रायसे सही बैठती है, इसको समझनेके लिए जरा सांख्यके मित्र बन कर सुनें, विरोधी बनकर नहीं। सांख्य जैसा कुछ आशय बनाकर और ऐसा ‍ध्येय निकालकर कि जिसमें सांख्यको कुछ समर्थन सा मिल जाय कि जिसमें साँख्यको कुछ प्रोत्साहन सा मिल जाय कि हां वे उद्दण्डतासे नहीं कह रहे हैं, किन्तु अपनी बुद्धि लगाकर कह रहे हैं, इस दृष्टिसे थोड़ा सुनें। जैसे जिन शासनमें बताया गया है कि कर्मका उदय होनेपर विभाव बनता है और उससे कर्म बन्ध होता है तो कर्मका उदय होने पर रागद्वेष सुख दुःख परिणाम होते हैं ना, पर यह तो बताओ कि जिस कर्मोदयसे रागद्वेष हुए तो वे कर्मकृत कहलाये तो क्या इस तरह राग द्वेष सुख दुःखको कर्म भी भोग सकते हैं? और झट कल्पनामें सज्जन पुरुष भी यह कह बैठते हैं कि भले ही कर्मके द्वारा ये सुख दुःख उत्पन्न हुए पर कर्ममें चेतना नहीं है इसलिए कर्म उनके फल को नहीं भोग सकता। कर्मके फलको तो यह आत्मा भोगेगा। इस तरहकी दृष्टि रख कर सांख्य सिद्धान्तने यह माना है कि सुख दुःख अहङ्कार ज्ञान ये सब प्रकृतिसे उत्पन्न होते हैं किन्तु इसका फल चूंकि प्रकृति अचेतन है सो आत्माको ही भोगना पड़ता है, ऐसी शङ्का रखी है।

आत्मामें प्रधान परिणामका भोक्तृत्व माननेपर कृतनाश व अकृताभ्यागमका दोष—कर्मको प्रकृति करती है व कर्मफलको आत्मा भोगता है इस शङ्का का उत्तर देते हैं कि वस्तुतः तो जो करता है सो ही भोगता है। यह ज्ञान रागद्वेष अहङ्कार ये सब प्रकृतिने किया तो इसका फल प्रकृतिको ही भोगना चाहिए। युक्तिमें और प्रमाणमें तो यह आता है। यदि वह जैन शासनकी यह नजीर दे कि देखो कर्मने तो रागद्वेष किया और फल भोगा आत्माने तो यह नजीर यों ठीक न बैठी कि वास्तवमें आत्माने रागद्वेष किया अतः आत्मा ही रागद्वेषका फल भोगता है। जिन शासनमें आत्मा अपरिणामी नहीं है, किन्तु शङ्काकारने आत्माको अपरिणामी माना

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/
है निमित्तनैमित्तिक भावके प्रसंगमें किया इस कारण सदा ही आत्मा रागद्वेष करता रहे यह भी आपत्ति नहीं आती। तो प्रधानने अचेतनने, प्रकृतिने यदि पुण्य पाप किया है तो उनका फल भी प्रधानको ही भोगना चाहिए। अन्यथा काम तो करे प्रकृति और फल भोगे आत्मा तो इसका अर्थ यह हुआ कि प्रधानने किया और उसका प्रयोजन उसे मिला नहीं फल मिला नहीं तो किया न किया बराबर हो गया। कृतकर्म नाश हो गया और आत्मा बेचारेने कुछ किया नहीं वह तो अपरिणामी शुद्ध चैतन्यस्वरूप है सो बिना किए उसे फल भोगना पड़ा। ऐसी यदि लोक व्यवहारमें बात करनी पड़े तो कितनी अव्यवस्था बन जायगी। फिर तो "अंधेर नगरी बेबूझ राजा, टका सेर भाजी टका सेर खाजा" वाली बात सिद्ध हो जायगी।

अन्यके विकारको अन्यके द्वारा भोगना माननेकी अव्यवस्थाका एक दृष्टान्त—एक सन्यासी अपने शिष्य सहित किसी नगरीमें पहुँचा। शिष्यको कुछ भोजन सामग्री (आटा, कोयला, मिठाई आदि) लेने भेजा। शिष्यने कोयला वालेसे पूछा—कोयला क्या भाव? ... टके सेर। ... आटा क्या भाव? ...... टके सेर... रसगुल्ला क्या भाव? ... टके सेर। सो उसने टके सेरमें खूब रसगुल्ले खरीदे और गुरुके पास जाकर कहा—महाराज खूब रसगुल्ले छककर खावो और कृपा कर के आप यहां ६ माह तक रुक जावो। तो सन्यासी कहता है—अरे वह अंधेर नगरी है, यहां रुकना ठीक नहीं, पर शिष्यने जब पैर पकड़ लिया तो रुकना ही पड़ा। तो ६ माह तक रसगुल्ले खा खाकर वह शिष्य खूब मोटा हो गया। अब एक ऐसी घटना घटी कि एक बाबू साहब उसी नगरीमें किसी सड़कसे एक साइडसे जा रहे थे तो रास्तेमें किसी मकानके समीपसे जाते हुये उस मकानसे दूसरी साइडमें एक खूंट गिर गया। तो बाबूजीने उस मकान वाले पर मुकदमा दायर कर दिया कि इस व्यक्तिने इतना कच्चा मकान क्यों बनवाया कि इसकी खूंट गिर गयी। मैं दूसरी साइडसे जा रहा होता तो इस मकानकी खूंट हमारे ऊपर गिरकर चोट पहुँचाती कि नहीं? तो राजाने उस मकान वालेको बुलवाकर पूछा कि तुमने ऐसा कच्चा मकान क्यों बनवाया कि उसकी दीवालकी साइडमें होते तो वह खूंट बाबूजीपर गिरकर इन्हें चोट पहुँचाता कि नहीं? तो वह मकान वाला बोला—महाराज! हमने तो रुपये पूरे दिये थे, कसूर तो उस कारीगरका है जिसने मकान बनाया था। उस कारीगरको राजाने बुलवाया। कारीगरसे राजाने कहा कि तूने ऐसी दीवाल क्यों बनायी जिससे यह खूंट बाबूजीके ऊपर गिर जाता तो क्या होगा? तो कारीगर बोला—इसमें हमारा कोई कसूर नहीं, गारा वालेने गारा पतला कर दिया था। अगर गारा पतला न होता तो यह खूंट क्यों गिरती? राजाने उस गारा वालेको बुलाकर पूछा—तूने गारा इतना पतला क्यों कर दिया था जिससे यह खूंट गिर गया। अगर यह खूंट बाबूजी पर गिर गया होता तो क्या होता? तो उस गारा वालेने कहा महाराज इसमें हमारा क्या कसूर। मसकवालेने मसक बड़ी बनादी जिससे पानी ज्यादा गिर गया।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अगर बड़ी मसक न होती तो गारा गीला न होता। मसक वालेको राजाने बुलवाया और कहा कि तूने इतनी बड़े भैंसा की खालकी मसक क्यों बनाई कि मसक बड़ी हो गई अरे मसक बड़ी हो जानेसे गारेमें पानी ज्यादा हो गया, और गारा गीला हो जानेसे इस दीवालका खूंट गिर गया। अगर यह खूंट इन बाबू जीपर गिर गया होता तो इन्हें चोट पहुँचाता कि नहीं ? तो वह मसक वाला कहता है—महाराज इसमें मेरा क्या कसूर। कसूर तो उस भैंसा बेचने वालेका है जिसने बड़ा भैंसा बेच दिया। अगर बड़ा भैंसा न बेचा होता तो बड़ी मसक न बनती, न अधिक पानी गिर जाता न और कुछ होता। अब राजाने उस भैंसा बेचने वालेको बुलाया उससे कहा कि तूने बड़ा भैंसा क्यों बेचा जिससे यह बड़ी मसक बनी और ये सारे झंझट हुए ? तो उस बेचारेके पास कोई जवाब ही न था। तो राजाने कहा बस सारा कसूर इसका है, इसको फांसीपर चढ़ा दो। वह बेचारा दुबला पतला था। जब फांसी देने वाले लोग उसे फांसी देने लगे तो फाँसी देने वाला फन्दा बड़ा था सो राजाके पास जा कर चाण्डाल बोले महाराज फन्दा बड़ा पड़ता है, इसका गला इतना पतला है कि वह फंदे से कसनेमें नहीं आता। तो राजा बोला- अरे यदि इसका गला पतला है तो किसी मोटे गले वालेको पकड़ लावो और जल्दी फांसी दे दो, नहीं तो फांसीका महुरत निकला जा रहा है। तो वे फांसी देने वाले चले मोटे गले वालेकी खोजमें। तो वहीं शिष्य साहब मोटे गले वाले दिख गए। उसे पकड़ लाये। कहा चलो तुमको फांसी दी जायगी। वह सन्यासी भी साथमें आया सन्यासीने मौका पाकर शिष्यसे थोड़ा समझा दिया कि देखो हम तुम दोनों परस्परमें फांसीपर चढ़नेके लिए झगड़ने लगेंगे। तुम कहना कि हम फांसीपर पहिले चढ़ेंगे और हम कहेंगे कि पहिले हम फांसीपर चढ़ेंगे। सो जब वह शिष्य फांसीपर चढ़ाया गया तो वह सन्यासी कहता है कि तुम न चढ़ो अभी फाँसीपर, पहिले हम चढ़ेंगे, वह शिष्य कहे- नहीं—पहिले हम चढ़ेंगे। दोनों फांसीके तख्तपर चढ़नेके लिए झगड़ने लगे। तो राजा कहता है— अजी मामला क्या है। तुम लोग क्यों फांसीके तख्तपर चढ़नेके लिए झगड़ रहे हो ? तो वह सन्यासी कहता है— तुम चुप रहो राजन् ? तुम्हें क्या पता है इस समयका मुहुर्त ऐसा है कि जो फांसी पर चढ़ जायगा वह सीधे बैकुण्ठ जायगा। तो राजा कहता है— अच्छा न इसे फांसी पर चढ़ाओ न इसे, फांसीपर तो हम चढ़ेंगे। तो प्रधान करे और आत्मा भोगे फल तो यह तो एक अव्यवस्थाकी बात हो गई। करे कोई फल कोई भोगे। इससे ये पुण्य पाप प्रधानके गुण नहीं हैं प्रधानके परिणाम नहीं हैं किन्तु ये पौद्गलिक कर्म हैं और उसके उदयकालमें आत्माके क्रोधादिक भावोंकी परतंत्रता होती है।

प्रकृतिको कर्ता व आत्माको भोक्ता माननेपर आपत्ति - सांख्य सिद्धान्त में माना गया है कि अदृष्ट अथवा कर्म प्रकृतिका परिणाम है, इसपर यह आपत्ति दी गई थी कि यदि कर्म प्रकृतिका विकार है तो फल भी प्रकृतिको ही भोगना चाहिए। जिसके विकार हैं उसको ही फल भोगना चाहिए। आत्मा क्यों फल भोगता है, उसके

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उत्तरमें शङ्काकार कह रहा है कि आत्मा चेतन है इस कारण प्रकृतिके विकाररूप कर्मोंको आत्मा भोगता है। प्रकृति अचेतन है इस कारणसे प्रकृति फल नहीं भोग सकती। करनेमें परिणमनेमें प्रकृति तो स्वतन्त्र है, पर फल भोगना उस प्रकृतिका काम नहीं, क्योंकि वह प्रकृति अचेतन है और आत्मा चेतन है। सो प्रकृतिके परिणाम को जो चेतन है वह फल भोगेगा। इसपर समाधान करते हैं कि यदि ऐसा मन्तव्य बन जाय कि प्रकृति तो विकार करे और फल भोगे आत्मा, तो जो मुक्त आत्मा हो गए हैं, कर्मोंसे जो छूट गए हैं उन मुक्त आत्माओंको भी फल भोग लेना चाहिए, क्योंकि करने वाली प्रकृति है और फल भोगने वाला आत्मा है। वह चाहे संसारी आत्मा हो और चाहे मुक्त आत्मा हो प्रकृतिके लिये तो ये सब भिन्न हैं। जैसे मुक्त आत्माओंसे प्रधान भिन्न हैं, प्रकृति निराली है इसी प्रकार आत्मा भी निराला है। तो प्रकृतिके कार्यका फल हम क्यों भोगें, गुण आत्मा भोगें ?

कर्मबन्धका ही नामान्तर प्रकृतिसंसर्ग- शायद यह कहो कि मुक्त आत्मावोंमें प्रकृतिका संसर्ग नहीं अतएव मुक्त आत्मा फलको न भोगेंगे। तो यही उत्तर आया उसका कि मुक्त आत्मावोंमें तो प्रधानका सम्बन्ध नहीं, अतः फल नहीं भोगते और संसारी आत्मावोंमें प्रधानका सम्बन्ध है इसीसे वे फल भोगते हैं, तो फिर यही तो सिद्ध हुआ कि आत्माके बन्धन हैं, चाहे पौद्गलिक कर्म मान लो और चाहे प्रकृति नाम रख लो। जिस आत्माके साथ पौद्गलिक कर्मका बन्धन है, प्रधानका संसर्ग है वह तो फल भोगता है और जिस आत्माके साथ प्रकृतिका संसर्ग नहीं, कर्म का बन्धन नहीं वह फल नहीं भोगता। सो प्रकृतिका सम्बन्ध बधके फलको भोगनेमें कारण है, तो यही सिद्ध हुआ कि वह प्रकृति बन्धरूप है। बन्धनका नाम संसर्ग रख लो और कर्मका, प्रकृतिका नाम प्रधान रख लो। केवल शब्दभेद रहा, बात तो वही रही। यहाँ तक यह सिद्ध किया कि इस जीवपर पौद्गलिक कर्मोंका बन्धन है और जब वह पौद्गलिक कर्मोंका बन्धन नष्ट होता है तब उस आत्माके सर्वज्ञता प्रकट होती है।

अनादि परम्पराबद्ध कर्मोंकी भी विश्लेषता—अब यहाँ शङ्काकार कह रहा है कि मानलो पौद्गलिक कर्म हैं, किन्तु ये कर्म तो कार्यकारणके प्रवाहसे बराबर चले आ रहे हैं अर्थात् अनादि कालसे कर्मका बन्धन चला आ रहा है। कर्मके उदयमें जीव रागद्वेष करता है। रागद्वेषका निमित्त पाकर जीवमें कर्म बँधते हैं, इस प्रकार कर्मबंधकी परम्परा अनादिसे चली आयी है। तो उसका नाश कैसे हो ? उसके नाश का कारणभूत कोई सामग्री विशेष नहीं है। जब कर्मका नाश न हो सकेगा तो यह कहना भी कैसे सही होगा कि जब आवरण पूरे तौरसे नष्ट हो जाता है तो ज्ञानमें सर्वज्ञता आ जाती है। आवरण नहीं नष्ट ही नहीं होते पूरे तौरसे। ऐसी शङ्कापर आचार्यदेव उत्तर देते हैं कि सामग्री है तो सही। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्

Report any errors at vikasnd@gmail.com

चारित्ररूप जो आत्माका परिणाम है उसके कारण कर्मोंका क्षय हो जाता है। जो संचित कर्म हैं, शुभ अशुभ भावोंसे जिन कर्मोंका बन्धन किया है वे कर्म निर्जरासे जो कि चारित्र विशेष है उसके प्रतापसे नष्ट हो जाते हैं कर्म झड़ जाते हैं।

कर्म विश्लेषका कारण संवरपूर्वक निर्जरा– कर्मोंके झड़नेका नाम निर्जरा है। निर्जरा दो प्रकारकी होती है—एक सोपक्रम अर्थात् उपक्रम सहित और एक निरुपक्रम। जो औपक्रमिका निर्जरा है वह तो तपसे होती है। आत्माका आत्मा में ध्यान होना अन्य समस्त विभावोंका परित्याग होना, और भी बाह्य तप होना इन कार्योंसे निर्जरा होती है और अनुपक्रम निर्जरा सभी जीवोंके हो रही है। जो कर्म बन्ध हैं उनका जब अन्त समय आता है तो वे कर्म अपने फल देकर झड़ जाते हैं। कुछ कर्म तो ऐसे ही झड़ जाते हैं और कुछ तप द्वारा कर्म विपाककालसे पहिले झड़ जाते हैं। जब ये कर्म दूर हो जाते हैं तो यह आत्मा निरावरण हो जाता है, जब निरावरण हुआ तो ज्ञानके द्वारा समस्त लोकालोकका जाननहार बन जाता है। यह चीज है अपने आपके विषयकी कैसा मैं हूँ, हमपर कितना कलंक है वह कलंक कैसे दूर हो ये सब बातें इस प्रकरणमें कही जा रही हैं, कलंक है कषाय और विषयोंका। उस कलंकका कारण है कर्मोंका उदय। इन कलंकोंको, इन निमित्तोंको हम दूर कर सकते हैं तो एक अपने भावोंके द्वारा, अपने ध्यानके द्वारा, बाहरमें कहीं दृष्टि गड़ाकर कि मुझे इन अष्टकर्मोंका नाश करना है ऐसी दृष्टि बनाकर ये कर्म दूर नहीं किए जा सकते किन्तु अपने भावोंकी सम्हाल हो तो ये कर्म दूर होते हैं।

अनुमान प्रमाणसे निःशेषरूपसे कर्म निर्जराकी सिद्धि यहाँ शङ्काकार फिर कह रहा है कि हम कैसे समझें कि पहिले बंधे हुए कर्मोंकी निर्जरा पूरे रूपसे हो सकती है। उत्तर देते हैं— अनुमानसे इसकी सिद्धि है। अनुमान पुष्ट प्रमाण कहलाता है, लेकिन उस अनुमान शब्दके बारेमें लोग ऐसा समझते हैं कि अन्दाजा, शायद, परन्तु अनुमानका अर्थ अंदाजा व शायद नहीं, किन्तु प्रत्यक्षकी तरह पुष्ट प्रमाण है। केवल प्रत्यक्ष व अनुमानमें अन्तर इतना होता है कि अनुमानमें अस्पष्ट ज्ञान रहता है और प्रत्यक्ष स्पष्ट ज्ञान रहता है। तो यहां अनुमानसे यह सिद्ध कर रहे हैं कि कैसे आत्माके कर्म सर्वथा दूर हो जाते हैं, उसके अनुरूप प्रयोग बना रहे हैं— आत्माके कर्म समस्त रूपमें झड़ जाते हैं, क्योंकि विपाकके समय उनका अन्त हो जाता है। जो झड़ा नहीं करते हैं उनका विपाक नहीं होता, अन्त नहीं होता जैसे काल आदिक यह शङ्काकार कालको भी मल भोगनेका कारण मानता है। तो काल तो कहीं झड़ता नहीं। कालका कभी अन्त नहीं आता लेकिन इन कर्मोंका अन्त आ जाता है। इनकी अवधि होती है स्थिति समाप्त होनेपर ये फल देकर झड़ जाते हैं। साधारण तपश्चरणके द्वारा इन्हें समयसे पहिले ही झड़ा दिया जाता है। इससे सिद्ध है कि किसी आत्मामें कर्म बिल्कुल नहीं रहते हैं। कर्मोंमें देखा जाता है कि इनका फल होता है और फल दे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

चुकनेपर खतम। जैसे धान फल दे चुकनेपर खतम और चावल निकाल लिया और उनका फल भोग लिया, तो उनकी जड़ खतम इसी प्रकार ये कर्म बंध गए हैं इनका जब विपाक समय आता है तो इनका अन्त हो जाता है। कर्म यदि विपाकके समय झड़ें नहीं, इनका नाश न हो तो इसका अर्थ होगा कि कर्म नित्य हो गए सदाके लिए रह गए, सदाके लिए रह गए, तो फिर सदाकाल आत्मा इन फलोंको भोगता रहेगा। फिर मोक्ष कोई चीज न कहलायगी। फिर मुक्त आत्मावोंकी सिद्धि भी क्या कर सकेंगे। इससे यह सिद्ध है कि आत्माके साथ अनादि परम्परासे कर्म लगे आये हैं। उनका जब क्षय कर दिया जाता है तब आत्मा निरावरण हो जाता है और अपनी समृद्धिको भोगता है।

संवरभावसे मुक्तिपथ गमन—सांसारिक जो भी भोग विषयके साधन, आरामके साधन भोगे जा रहे हैं ये वास्तवमें आराम नहीं आनन्द नहीं, क्योंकि इन का क्या भरोसा। और, जितने काल ये आराम रूपसे माने जा रहे है उतने काल भी आत्मा सन्तोषसे नहीं रह रहा। इन सांसारिक दुख दुःखोंके भोगनेमें आत्माको शान्ति नहीं मिलती। शान्तिका कारण तो अपने आपका जो निर्विकल्प चैतन्य प्रकाश है उस में उपयोग रमायें यही शान्तिका कारण है। बाह्यमें दृष्टि करके हर्ष विषाद मानना यह महा अपराध है, और, इस अपराधके कारण जीवको शान्ति नहीं मिल सकती। इन सब विडम्बनावोंका निमित्त कारण है पौद्‌गलिक कर्म, उनके दूर होनेमें ही आत्महित है आत्मामें जो कर्मोंका संचय है उनके दूर होनेमें मुख्य आलम्बन है सम्वर। जैसे नावमें पानी भर जाय और किसी छिद्रसे पानी आता रहे तो वह नाव डूब जायगी। इसलिए जो कुशल नाविक हैं वे सर्वप्रथम पानी आने वाले छिद्रको बंद कर देते हैं, नये पानीका आना रुक जानेसे पहिले वाले पानीको उलीचकर सुगमतासे उसे बाहर निकाल देते हैं ऐसे ही यही पद्धति है मुक्तिकी, नवीन कर्म न आ सकें,पहिले उन का आना रुक जाय ऐसा सम्वर किया जाता है, फिर जो संचित कर्म हैं वे तपश्चरण आदिकके द्वारा झड़ते हैं तो मुक्ति होती है। तो आश्रवका निरोध होना मुक्तिपथमें प्रथम आवश्यक है।

आस्रवमें मिथ्यात्वभाव—आश्रव हैं मिथ्यात्व अविरति कषाय और योग। जिन स्रोतोंसे, जिन परिणामोंसे कर्मोंका आना रहे उनका नाम आश्रव है। भिन्न पदार्थमें यह मैं हूं, यह मेरा है इस प्रकारकी कल्पना करना मिथ्या है। इन रूप, रस, गंध, स्पर्श विषयोंसे मुझे सुख होता है ऐसी कल्पना करना मिथ्या है। मैं स्वयं आनंद स्वरूप हूं। समस्त पदार्थोंसे विविक्त हूं, मैं जब भी भोगता हूं तो अपने ही भाव भोगता हूं। सुख दुःख भी भोगता हूं तो अपने ही आनन्दका विकार बना—बनाकर भोगता हूं, और जब सुख दुःखसे परे एक अनुपम विश्राम भोगता हूं तो मैं उस सही आनन्दको भोगता हूं। मैं बाहर कहीं नहीं हूं। मेरा बाहरसे कोई वास्ता नहीं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

किसी भी अन्य पदार्थसे मेरेमें कुछ परिणति नहीं है। कोई पुरुष गाली दे रहा है, जिसका नाम लेकर जिसे देखकर गाली दे रहा है वह क्रोधमें आ जाता है। तो अज्ञानी जन तो कहेंगे अथवा वह खुद कहेगा कि देखो इसने क्रोध पैदा कर दिया, लेकिन क्या उस व्यक्तिने उसके क्रोध उत्पन्न कर दिया ? अरे वह स्वयं अपनी कषायकी वेदना न सह सकनेसे जिससे उसने शान्ति मिलना देखा वह काम किया और सुनने वालेने कल्पनायें बनाकर अपनेमें विभावोंको प्रेरणा दे देकर अपनेमें क्रोध उत्पन्न किया है। ऐसी स्थितिमें इस क्रोधी पुरुषने अपने ही परिणामसे क्रोध किया, गाली देने वालेकी परिणति लेकर क्रोध नहीं किया है। ऐसे ही समस्त निमित्तोंकी यही बात है। किसी भी निमित्तका द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव कुछ भी उस विभाव परिणाम वालेमें नहीं पहुँचता है। इस प्रकार समस्त पदार्थ एक दूसरेसे अत्यन्त भिन्न हैं किन्तु मोही जीव उन भिन्न पदार्थोंको यही तो मैं हूँ इस प्रकार अंगीकार करते हैं। यही है मिथ्यात्व।

आस्रवोंमें अविरति आदि भाव—अविरति भाव—यह चतुर्थ गुणस्थान तक रहता है। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह इन ५ पापोंसे विरक्ति नहीं हुई, प्रतिज्ञा नहीं की, कुछ नियमरूप परिणति नहीं हुई उसका नाम है अविरत भाव। इस भावसे कर्मोंका आश्रव होता है। प्रमादभाव—विशेष कषायके होनेका नाम प्रमाद है। इस प्रकारका प्रमाद कि जिसके कारण मोक्षमार्गमें चलनेका उत्साह प्रगतिशील नहीं बनता है। कषायभाव, कषायका नाम क्रोध, मान, माया, लोभ हैं, इनसे भी कर्मोंका आस्रव होता है। और, आत्माके प्रदेश जो हलन–चलन करते हैं उस योगसे भी आश्रव होता है। इस प्रकार इन ५ प्रकारके आश्रव भावोंके होनेपर कर्म आया करते हैं।

संवर तत्त्वमें गुप्ति—कर्मोंका आस्रव रोकना इसका नाम सम्बर है। ऐसा सम्बर गुप्ति समिति धर्म अनुप्रेक्षा, परीषहजय आदिकसे प्रकट होता है। अपने मनको वश करना इससे कर्म रुकते हैं। और, इतना तो सभी अनुभव करेंगे कि मनको वश करलेंगे तो झगड़ा रुक जायगा। बहुत सी घटनाओंमें ऐसी स्थिति आती है कि यदि अपने मनको काबू न कर सके तो झगड़ा बढ़ जाता है और मनको वश कर लिया तो झगड़ा मिट जाता है। कर्म भी तो झगड़े हैं। मनको वश करनेसे कर्मोंका आस्रव रुकता है, वचनोंको वश करनेसे कर्मोंका आश्रव रुकता है। बहुत अधिक बोलचाल करनेकी आदत झगड़ेकी जड़ बन जाती है। सुने सबकी बातें खूब, पर बोले कम। कविकी कल्पना है कि इसीलिए तो दो कान एक जीभ है। इसका यह अर्थ है कि सुननेका काम बोलनेसे दूना करे। जो अपनी प्रकृति ऐसी बना लेते हैं कि बोलना सोचकर, कम बोलना, उनको जीवनमें बहुतसे सुविधाजनक साधन मिलते हैं। झगड़ा तो रुक ही जाता है। तो वचन गुप्तिसे कर्मोंका आस्रव रुकता है। कायगुप्तिमें शरीर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

को वश करना, निष्कम्प, हिलना डुलना नहीं. इसका नाम है कायगुप्ति । जो लोग शरीरको बहुत चञ्चल रखते हैं, क्षण–क्षणमें बैठना, उठना, बदलना यत्र तत्र आँखें हिलाना डुलाना बहुत–बहुत हाथ पैर मटकाना आदिक चचलतायें रहती हैं तो आप लोग समझते होंगे कि उनका महत्त्व कितना है, उनमें गम्भीरता कितनी है और सदाशय कितना है । तो कायगुप्तिसे भी कर्मोंका आश्रव रुकता है ।

संवर तत्त्वमें ईर्यासमिति –समिति – देख भालकर कार्य करना, ताकि किसी जीवकी हिंसा न हो जाय । समितिमें यद्यपि प्रवृत्तिकी बात कही गई है । देख कर चलना, पर प्रवृत्तिमें भी उस कालमें निवृत्तिका भाव है । कारणवश प्रवृत्ति करना पड़ रहा है, पर चित्तमें निवृत्तिका ही झुकाव है अतएव यह सम्बर भावमें कहा गया है । ईर्यासमितिमें चार बातें बताई गई हैं—प्रकाशमें चलना, जब सूर्यका अच्छा प्रकाश हो जाय तब चलना, एक बात । दूसरी बात अच्छे कामके लिए जाना । तीसरी बात --अच्छा भाव रखकर चलना । और चौथी बात —देखकर चलना, चार हाथ आगे जमीन शोधकर चलना । इन चारोंमेंसे यदिएक बात भी कम हो जाय तो ईर्यासमिति नहीं रहती अर्थात् जिससे सम्वर बने वह परिणाम नहीं रहता । कल्पना करो कि कोई साधु किसी खोटे कार्यके लिए जा रहा है—समझो किसी पाप कार्यके लिए जा रहा है और जमीन शोधकर चार हाथ आगे निरखकर जा रहा है तो उसके कर्मोंका सम्वर होगा क्या ? जा तो रहा है अच्छे कामके लिये, पर रास्तेमें कुछ झंझटें मानकर साथके मित्रोंपर गुस्सा करके बड़े क्रोधसे चल उठता है तो ऐसी स्थितिमें क्या उसके कर्मका सम्बर होगा ? और, जहाँ सूर्यका प्रकाश नहीं वहां तो हिंसा परिहारकी बात ही नहीं हो सकती. और अच्छे भावोंसे चले ! भाव तो अच्छे फिर होंगे ही क्या ? यदि देखभालकर नहीं चल रहे हैं तो वहां भाव अच्छे ही क्या हो सकते, पर स्थूलरूपसे मान लो कि अच्छे कामके लिए जाय, अच्छे भावसे जाय, दिनमें जाय, अगर ऊँचा शिर उठाकर यहां वहां देखकर चले तो वहां कर्मका सम्बर नहीं है ।

संवर तत्त्वमें भाषादि समितियां – भाषा समिति – हित, मित प्रिय वचन बोलना जो वचन दूसरोंको हितकारी हों परिमित हो और प्रिय लगें ऐसे वचन बोलने को भाषा समिति कहते हैं । कितना सुन्दर विवेचन है इस लक्षणमें । कोई पुरुष हितकारी वचन बोल रहा है, सीमित बोल रहा है मगर कीलसी चुभाकर बोले तो उसे समिति न मानेंगे । कोई पुरुष प्रिय तो वचन बोलता है मगर हितकारी नहीं है, विषयोंमें लगाने वाला झगड़ेको उकसाने वाले वचन बोलता हो तो वे प्रिय तो लगेंगे ही पर वे हितकारी नहीं हैं । कोई पुरुष अधिक बोले तो उसका आत्मा स्वयं असावधान होगा । तो हितमित प्रिय वचन बोलना भाषा समिति है । तो इस प्रकारकी आंतरिक निवृत्तिको लिये हुए परिणामके कारण कर्मोंका आश्रव रुकता है । इसी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रकार निर्दोष विधिसे चर्या करना सो एषणा समिति है। निर्दोष विधिसे आहार करना इसमें भी निवृत्तिका भाव है। आदान निक्षेपण समिति—कोई चीज धरे उठाये, किसी जीवको बाधा न हो, ये सब समितियां यद्यपि साधु सतके प्रकरणमें बताई गई हैं किन्तु गृहस्थोंको भी अपनी शक्तिके अनुसार इनका पालन करना चाहिए। विवेकी पुरुषोंको ये सारी चीजें करना योग्य है। ५ वीं समिति है प्रतिष्ठापना समिति—मल मूत्र, कफ नाक, थूक आदिकका क्षेपण करे, बल्कि पसीना भी बहुत आ रहा हो तो उसे भी कहीं डाले तो देखकर डाले ताकि किसी जंतुको बाधा न पहुँचे, सो प्रतिष्ठापना समिति है। ऐसी समितिके परिणामसे कर्मका आश्रव रुकता है।

मुख्य प्रत्यक्ष ज्ञानकी निरावरणताकी सिद्धिका प्रकरण—यह सब प्रकरण इस न्याय ग्रन्थमें इसकी सिद्धिके लिये चल रहा है कि पहिले कर्मोंका आश्रव रुके और कर्मोंका झड़ना चालू रहे तो कर्मोंका निःशेषरूपसे अभाव हो जायगा। तब यह ज्ञान निरावरण हो जायगा। निरावरण होनेसे यह सकल प्रयक्ष हो जायगा, समस्त लोकालोकका जाननहार हो जायगा। उसे कहते हैं मुख्य प्रत्यक्ष। ऐसा ज्ञानका विकास होना हम आप सबका स्वभाव है। जो सर्वज्ञ है वैसी ही शक्तिके हम आप हैं, जातिमें रंच भी अन्तर नहीं है। यदि उस विधिसे हम आप भी चलें तो हम आपका भी विकास होगा, दुःख संकट दूर होंगे। किन्तु, इसके लिए इतनी तो व्यवहारिकता होनी चाहिए कि बाह्य पदार्थोंमें हमारी आशक्ति न जगे और हम अपने आपके कल्याण की बुद्धि रखें। तो जिस मार्गसे चलकर प्रभुने अनन्त आनन्द पाया उसी मार्गसे चलकर हम आप भी सदाके लिए समस्त संकटोंसे छुटकारा पा लेंगे।

ज्ञानकी निरावरणताके उपायभूत संवर तत्त्वका प्रतिपादन- मुख्य प्रत्यक्ष ज्ञानके स्वरूपके प्रकरणमें यह कहा जा रहा है कि यह ज्ञान निरावरण होता है, ज्ञानपर आवरण है ज्ञानावरण पौद्गलिक कर्मका। ये पौद्गलिक कर्म जब झड़ जाते हैं तो ज्ञानका पूर्ण विकास हो जाता है। इससे सम्बन्धित यह शङ्का चल रही थी कि कैसे मानें कि कहीं कर्म बिल्कुल झड़ जाते हैं? उसकी सिद्धिमें यह स्थल चल रहा है कि प्रथम तो कर्मोंका सम्बर होता है, उसके साथ कर्मोंका झड़ना शुरू होता है तो उससे कर्म सदाके लिए नष्ट हो जाते हैं। हो सकता है क्या इसमें सम्बर? उसकी बात चल रही है। जो चीज आती है उसका रोकना भी सम्भव है। सर्वत्र घटा लो यह बात। समाजमें घरमें, जो वस्तु आती है उसका आना भी रुक सकता है। जीवमें कर्म आते हैं तो जिन भावोंसे कर्म आते हैं उन भावोंसे न करें तो कर्मोंका आना रुक जायगा। आश्रव तत्त्वके बारेमें तो पहिले वर्णन कर ही लिया गया था और अब सम्बर तत्त्वके बारेमें कह रहे हैं कि गुप्तिसे समितिसे कर्मोंका सम्बर होता है। अब सम्बरके उपायोंमें धर्मकी बात चल रही है धर्म कहते हैं आत्माके स्वभावको। और, आत्माके स्वभावको दृष्टिमें लेना, उसका आश्रय करना

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

यही हैं धर्मका पालन। धर्म व्यवहार पद्धतिमें समझानेके लिये १० प्रकारके बताये गए हैं— उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिञ्चन्य और ब्रह्मचर्य।

उत्तम क्षमासे आस्रवविरोध— उत्तम क्षमा— सम्यक्त्वसहित जो क्षमा होती है उसे उत्तम क्षमा कहते हैं। जहाँ पदार्थके स्वरूपका यथार्थ निर्णय है, समस्त जीव अपने अपने स्वरूपमें हैं, उनका कुछ भी गुण पर्याय किसी दूसरे जीवमें नहीं पहुंचता है। सभी अपने अपने भावोंके अनुसार कर्मफल भोगते हैं, बंध होता है अथवा मुक्ति होती है। किसी जीवके करनेसे किसी जीवमें कोई परिणति नहीं बनती है। यथार्थ निर्णय जिसने किया है ऐसा ज्ञानी पुरुष किसीके द्वारा गाली दिये जानेपर, मार-पीट होनेपर भी उसके अकल्याणकी भावना नहीं करता है। गृहस्थ पदमें यद्यपि किसी आततायीसे मुकाबला भी किया जाता है जिसका नाम है प्रत्याक्रमण। ज्ञानी जीव अपनी ओरसे आक्रमण नहीं करता, लेकिन कोई आक्रमण करे तो उसका प्रत्याक्रमण करना होता है। उस कठिन परिस्थितिमें भी प्रवृत्ति तो हो रही है उसके ताड़ने-मारनेकी, पर भीतरमें भाव यह बसा है कि इसका अकल्याण न हो, इसका भाव यदि बदल जाय तो यह व्यवहारमें भी प्रत्याक्रमणके योग्य नहीं है, ऐसा पवित्र आशय ज्ञानी जीवके अन्तरङ्गमें पड़ा है। चाहे यह आशय व्यक्तरूपमें कुछ काम न भी कर रहा हो तो भी आशय अवश्य ही पड़ा है। जैसे रामचन्द्र जीका रावणसे युद्ध हुआ तो उस युद्धमें कसर तो कुछ रखी नहीं जा सकती। युद्ध तो युद्ध ही है, युद्धमें पूर्ण तैयारी थी, बल लगाया था सब कुछ किया था, फिर भी अन्तरङ्गमें रावणका अकल्याण मत हो, ऐसा उनके आशय पड़ा हुआ था। इस बातको व्यक्तरूपमें वे नहीं कह सके, क्योंकि युद्धमें यदि इस तरहसे काम करते तो युद्ध ही क्या कर सकते? इसपर भी अभिप्रायमें यह बात थी कि रावणका विनाश मत हो! इसका प्रमाण यह है कि बहुत कुछ विजय प्राप्त कर लेनेके बाद जब ऐसी स्थिति आ गई कि अब तो थोड़े समयमें ही रावणका विनाश होने वाला है तो रावणको समझाया कि अब भी कुछ नहीं बिगड़ा। सीताको लौटा दो और अपना राज्य करो। तो किसी जीवके द्वारा कुछ सताये जानेपर भी अन्तरङ्गसे उसका अकल्याण न चाहे इसका नाम उत्तम क्षमा है। क्षमामें यह जीव अपने आपकी रक्षा करता है, अपने आपकी क्षमा करता है। इस क्षमा धर्मके प्रसादसे कर्मोंका सम्वर होता है और संचित कर्मोंकी निर्जरा होती है।

उत्तम मार्दवसे आश्रव निरोध— मार्दव धर्ममें मान न करना बताया है। देखिये, नम्रताकी बात! अभिमानपूर्वक भी नम्रता की जाती है और निरभिमानतामें भी नम्रता की जाती है। कोई पुरुष इसमें अपनी पोजीशन समझता है, इसमें मेरा बड़प्पन रहेगा। मैं बड़ा हूं, यदि इसमें इस तरहके शब्दोंमें बोला जाय, नम्रता भरे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

हुए तो इससे मेरी सबमें इज्जत होगी। मैं इन सबमें महान हूं, http://www.jainkosh.org इस अभिमानमें भी नम्रता वर्ती जा सकती है। और इसका अनुभव सभी कर सकते हैं क्योंकि इस रोगके रोगी सभी हैं। किसीको कम है किसीको अधिक हैं। एक तो नम्रता अभिमानमूलक होती है और एक सहज होती है। जिसने समस्त पदार्थोंसे भिन्न मात्र ज्ञानस्वरूप अपने अंतस्तत्त्वका निर्णय किया है और जाना है कि यह ही मैं आत्मा शरण हूँ, ऐसा आशय करना, यह ही मेरे लिए लाभकारी है।

उत्तम आर्जवसे आस्रवनिरोध— उत्तम आर्जव धर्म—सरलताका नाम है। जो मनमें है वही वचनमें है वही किया जाता है। जहां छल कपट नहीं, ऐसे सरल परिणामका नाम आर्जव है। छल कपट तो वह करेगा जिसने बाहरमें अपना हित माना है। वैभव जुड़ जाय तो मैं महान बन गया। अरे! वैभव तो पौद्गलिक जड़ चीज है, उसका संचय होनेमें महत्ता कैसे बनती है? पुण्यका उदय है, वैभव आता है आये, पर उस वैभवसे मैं बड़ा हूँ, ऐसी कल्पना करना तो मिथ्यात्व है। तो जिसने अपने हितका प्रकाश पाया है उसे इतनी फुरसत कहाँ? इतना विचार करनेमें समय गँवानेकी बात हो कैसे सकती है। किसी घटनाके बारेमें कुछसे कुछ विचार और कल्पनायें बनाना मैं यह बोलूँगा, मैं इस प्रकार इस स्वार्थकी सिद्धि करूँगा, इन कल्पनाओंसे विरक्त पुरुष तत्त्वज्ञानी पुरुष नहीं फँसता है। वह तो इन झंझटोंसे दूर ही रहकर सरल वृत्ति रखता है। थोड़े दिनोंका जीवन है, आयु समाप्त होती है, क्या से क्या बनेगा। कपटसे तो भव भ्रमण ही लम्बा होता है। पशु पक्षी कीड़ा मकोड़ोंमें जन्म लेना पड़ता है। ज्ञानी पुरुष मायाचारसे दूर रहता है और आर्जव धर्मका पालन करता है। इस आर्जव धर्मके प्रसादसे कर्मोंका आना रुकता है और संचित कर्म झड़ जाते हैं।

उत्तम शौचसे आस्रव निरोध— शौच धर्म— पवित्रता धर्म है। आत्मामें गंदगी है तृष्णाकी, लोभकी। लोभी पुरुष तृष्णावान पुरुष लोगोंकी दृष्टिमें भला नहीं विदित होता है। भले ही घर वालोंको लोभ करने वाला पुरुष भला जँचे, मगर घर वाले खुद लोभी हैं, तृष्णा करते हैं इसलिए उन्हें वह भला जचता है। तृष्णा करने वालोंके द्वारा लोभ करने वाले लोगोंके भला जचनेसे कहीं यह निर्णय तो न बन जायगा कि वह भला जचनेका पात्र है। एक आम जनताकी राय देखो उसके बारेमें तो तृष्णालु. कृपण पुरुष लोकमें भी प्रसंसनीय नहीं हैं। और, वह तृष्णालु पुरुष अपने लिए तो महान अन्याय कर रहा है। अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया लोभ इनका काम क्या है? आत्माके स्वरूपका अनुभव भी न करने दे ऐसी विपरीत वृत्ति बनानेमें निमित्त है ऐसा क्रोध होना जिस तरह पत्थरमें गहरी लकीर खींच दी जाती है इस तरह जो क्रोध कषायकी लकीर खींच दी जाती है—वह कषाय वर्षोंमें मिटेगी, अनेक वर्ष लगेंगे। इस प्रकार अनन्तानुबन्धी क्रोध बहुत समय तक अपना संस्कार

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

रखता है। कमठका क्रोध कितने भवों तक संस्कार करता रहा। यह अनन्तानुबंधी क्रोध है। अनन्तानुबन्धी मानमें इतना कड़ापन होता है जैसे कि पत्थर कड़ा होता है, पत्थर झुक नहीं सकता, काठ तो थोड़ा झुक भी जायगा, पर पत्थर नहीं हिलता। पत्थर झुकेगा तो टूट जायगा। तो पत्थर जैसा कड़ा दिल होना यह अनन्तानुबंधी मानकी बात है अनन्तानुबंधी माया भी ऐसी ही टेढ़ी है जैसे बाँसकी जड़ें टेढ़ी होती हैं। इस प्रकारका टेढ़ा चित्त वज्र हृदय परख न सके कोई कि मनमें क्या है। अनंतानुबंधी माया यह संसार भ्रमणको बढ़ाने वाली कषाय है। अनन्तानुबंधी लोभ। तृष्णाका ऐसा लोभ चढ़ना कि चाहे प्राण चले जायें पर तृष्णा नहीं मिट सकती। जैसे—गाड़ीके पहियेका औंगन, पहिया और धुरामें जो तैलका कालापन रहता है वह लग जाय तो कपड़ा चाहे फट जाय पर वह औंगन दूर नहीं होता। जब इस प्रकारकी कषायें हैं तो वहां आश्रव ही आश्रव है। ये कषायें दूर हों और छोटे भी क्रोध, मान माया, लोभ दूर हों तो अतीव मंद कषायमें अथवा कषाय न रहनेमें यह धर्म प्रकट होता है।

उत्तम सत्यसे आश्रव निरोध—सत्य धर्म—जब चारों कषायें दूर हो गयीं तब सत्यता प्रकट हुई है। जब तक कषाय है तब तक वह पुरुष सत्य नहीं कहला सकता है। अब उसका जितना व्यवहार होगा वह मोक्ष मार्गके अनुरूप अपने लिए भी और परके लिये भी होगा। ऐसे—उत्तम सत्यकी प्रगतिसे कर्मोंका सम्वर होता है और पूर्वमें बंधे हुए कर्मोंकी निर्जरा होती है। कोई पुरुष एक सत्यताका ही नियम लें ले तो उसके सारे अवगुण छूट जायेंगे। एक राजाने सत्यका नियम लिया। उसने बाजार बनवाया और यह घोषणा कर दी कि जिसका कोई माल न बिके वह सब माल हम खरीद लेंगे। बाजारकी उन्हें प्रगति करानी थी। एक दिन एक पुरुष मूर्ति लाया। सारी मूर्तियाँ तो बिक गई पर एक शनीचरकी मूर्ति न बिकी। लोग न जानें क्यों शनीचरको बुरा मानते हैं। मंगलके काम, अध्ययनके काम ये सब शनीवारको शुरू किए जाते हैं पर शायद इसलिये बुरा मानते हों कि इसका नाम है शनैश्चर अर्थात् शनैःचर। शनैः मायने धीरे और चर मायने चलने वाला धीरे-धीरे चलना किसीको पसंद है नहीं, आज कल तो लोग थोड़ी ही देरमें न जाने कहांके कहां पहुँच जाते हैं, तो शायद इस कारणसे लोग शनीचरका दिन बुरा मानते हों तो शनीचरकी मूर्ति न बिकनेपर वह राजाके पास आया। राजाने उसे मुह माँगे दाम दे दिये। तो हुआ क्या कि उस शनीचरके आनेपर राजाके यहाँ का समस्त धन वैभव ऐश्वर्य बिदा होने लगा। सत्य भी जाने लगा। तो सत्यको पकड़कर वह राजा कहता है कि तुम नहीं जा सकते। तुम्हारी वजहसे तो ये सब काम सह सके। सत्यको लौटाना पड़ा तो सब को लौटाना पड़ा। निष्कर्ष केवल इतना लेना है कि यदि सच्चाईका व्यवहार है तो एक बार पहिले निर्दयता, गरीबी नौकर उपद्रव सबका सामना करना पड़ेगा, पर सच्चाई पर रहेंगे तो वे सब बातें शान्त हो जायेंगी।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उत्तम संयमसे आस्रव निरोध— संयम धर्म अपनी इन्द्रिय और मनको संयत करना, ६ कायके (समस्त) जीवोंके प्राणोंकी रक्षा करना सो संयम है। जिस तत्त्वज्ञानीने अपने आत्माका यथार्थ स्वरूप जाना है और निर्णय किया है कि यह ही मैं अपनेमें विशुद्ध विकास करूँ तो मेरी भलाई है। बाहरी किसी भी प्रवृत्तिमें मेरा कल्याण नहीं है। सारा स्वप्न है, सब झूठा है, सब जीव समान हैं. मैं किसको अपनाऊं, किससे स्नेह करूं, सब मिटने वाले हैं और यह मैं भी मिटने वाला हूँ। जो अविनाशी तत्त्व है एक शुद्ध ज्ञान ज्योति, उसका ही शरण लेना वास्तविक शरण है। अपनी ओरसे दो बातें स्नेहकी की, दूसरेने भी दो बातें स्नेहकी की, अब यह भी पागल संसारमें रुले। अपने आत्माके अनुभवकी पात्रता उसमें कैसे आ सकती है। तो जो संयमी जीव है, मनको वश रखने वाला है, अपने स्वरूपकी दृष्टि रखने वाला है उस पुरुषके कर्म रुकते हैं और संचित कर्म झड़ते हैं।

उत्तम तपसे आस्रवनिरोध तप नाम है इच्छा निरोधका। इच्छाको रोकना, मायने इच्छाओंको दिलमें रोके रहना, भरते रहना, वे इच्छायें कहीं बाहर निकलकर नष्ट न हो जायें इसका नाम है इच्छानिरोध। ऐसा इच्छा निरोध तो प्रायः सभी मनुष्य कर रहे हैं। इच्छा भरे हैं, भरते जा रहे हैं और, उनको रोके हुए हैं, उनपर डाट लगा रखा है कि यह इच्छा कम न हो जाय। इसे इच्छानिरोध नहीं कहते हैं कि इच्छायें दिलमें रहें और उन्हें रोका जाय। इच्छा आश्रवभाव है और यह परिणमनमें आता है। तो इच्छाका परिणमन रोक देना, इच्छाभाव उत्पन्न न हो सके इसका काम इच्छा निरोध है। इच्छा निरोधसे कर्मका सम्बर होता है और संचितकर्मोंकी निर्जरा होती है।

उत्तम त्यागसे आस्रवनिरोध—त्याग धर्म-जिस पुरुषने अपने अन्तःस्वरूप ऐसा निर्णय किया है कि यह तो अपने विशुद्ध ज्ञान आदिक शक्ति मात्र है। जो इसमें है वह यहाँसे कभी जा नहीं सकता। जो इसमें नहीं है वह आत्मामें कभी आ नहीं सकता। समस्त पर वस्तुवोंसे भिन्न है, उनका निरन्तर त्याग बना ही हुआ है कोई पुरुष कल्पनासे परवस्तुको अपनाये तो ऐसा अपनानेसे कहीं चीज अपनी बन नहीं जाती वह तो अपनी ही ईमानदारीपर है। प्रत्येक पदार्थ, जीव, अजीव पुद्गल ये सब अपनी अपनी ईमानदारीपर डटे हुए हैं, लेकिन ये मोही जीव ईमानदारीको खो रहे हैं। कोई पदार्थ किसी दूसरेका बनता नहीं है। ये पुदगल किसीको अपना बनाते नहीं हैं, हैं और उत्पादव्यय कर रहे हैं, पर ये मोही जीव सारे विश्वको अपना बनाना चाहते हैं समस्त वैभवपर अपना राज्य चाहते हैं। कितना मोहका गहन अंधकार है कि बात कुछ नहीं है और विडम्बनायें नाना बनाली है। जिसने अपने विशुद्ध विविक्त अन्तःस्वरूपका निर्णय किया है ऐसा पुरुष बाह्य पदार्थोंके त्यागमें विलम्ब नहीं करता है। बाह्य त्याग भी है और अन्तः त्याग भी है। सबसे विविक्त अपने परमात्मस्वरूप

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

का आश्रय लेना वह भी चल रहा है। त्याग धर्ममें कर्मोंका सम्वर होता है और पूर्व बद्ध कर्मोंकी निर्जरा होती है।

उत्तम आकिञ्चन्यसे परमार्थ आनन्दका अनुभव – आकिञ्चन्य – अहो कितना परमरूप अमूर्त भाव है, सारे सङ्कट इस आकिञ्चन्य भावनासे दूर हो जाते हैं मेरा कहीं कुछ नहीं है, बात सत्य है। मानलो शान्ति मिलेगी। न मानोगे तो अशान्ति मिलेगी। वैभव कम है आमदनी कम है उसकी चिन्ता लगी है। अरे, उसकी क्या चिन्ता करते हो। अगर सबके प्रति चिन्ता रखते हो तो वह तो खुद पापका उदय है। परिणामोंमें मोह लाना यही है पापका उदय ! जो भी स्थिति है उसीमें खुश रहो। कदाचित् खोमचा लगाकर भी पेट पालना पड़ रहा हो, पर जिसने तत्त्व का निर्णय किया है वह तो अपनी अन्तः निराकुलताका स्वाद ले रहा है। वह तो विशिष्ट पुरुष है। बाहरी परिस्थितिसे क्या अन्दाजा लगावोगे कि यह बड़ा है यह छोटा है। अरे, बड़ा पुरुष तो वह है जो संसार, शरीर और भोगोंसे विरक्त है और अपने आत्माके सहज स्वरूपमें हितबुद्धि है। और, सब कुछ वैभव पाकर भी यदि उन बाहरी चीजोंका ही महत्त्व उसने दिया है, अपने आत्माका कुछ भी महत्त्व नहीं दिया है, वह तो महा गरीब है। बहुत धन हो जानेके बाद यदि गरीबी आती है तो जीवन सङ्कटमें गुजरता है। जैसे बहुत बड़ी विद्या पढ़ लेनेके बाद यदि अपना उस लायक सम्मान दुनियामें नहीं हो पाता है तो वह दुःखी रहता है। मोही पुरुषकी बात कह रहे हैं। निर्मोही ज्ञानी पुरुषकी तो और बात है। इसी प्रकार धन अधिक हो जानेपर जब उसका विनाश होता है तो उसको बड़ा क्लेश होता है। और, कृपण धनीकी हालत तो बहुत दयनीय है। कोई पुरुष कितना बड़ा धनी है कृपणकी बात यह कब मालूम होगी जब उसका धन चला जाय, लुटेरे लूट ले जायें। यों उस धनके विनष्ट हो जानेपर उसे बड़ा क्लेश होता है—उस वैभवको न भोग पाया, न दान कर पाया और न उससे अपना गौरव प्राप्त कर सका, साराका सारा धन यों ही चला गया। तो धनसे महत्त्व मानना यह कोई धर्मकी बात नहीं है। ज्ञानी पुरुष निहारता है अपने आपमें, मैं अकिञ्चन हूँ, मेरा कहीं कुछ नहीं है। इस भावसे वह अपने आपको केवल ज्ञानज्योतिर्मय निरख रहा है।

उत्तम आकिञ्चन्य और ब्रह्मचर्यसे आस्रवनिरोध –ये बड़े विनयशील घरके लोग, बड़ी सभ्यता और सुन्दरतामें रहने वाले परिजन, बड़े योग्य बुद्धिमान मित्र ये सब समागम ये सब तो बरबादीके ही कारण बनेंगे, कल्याणमें निमित्त न बनेंगे। और, ये निरपेक्ष बन्धु साधुजन त्यागी पुरुष तत्त्वज्ञानी लोग, इनका सम्पर्क हो सत्सङ्ग हो तो ये कल्याण के निमित्त बन जायेंगे, पर कल्याणमें निमित्त होने वाले देव, शास्त्र, गुरुके प्रसङ्गोंपर इतनी उमङ्ग नहीं है जितनी उमङ्ग घरके परिजनोंपर है। तन, मन, धन, वचन सब कुछ घरके लिए अर्पित है। अरे हमें करना क्या है ?

Report any errors at vikasnd@gmail.com

बच्चे अच्छे हो जायें, बच्चोंका रोजिगार बढ़ने लगे, ये खुश रहें, हमें तो इतना ही करना है और दो रोटियाँ खा लेना है, बाकी सारा मरना इनके लिए है। कितना समर्पण किया जाता है उन परिजनोंपर, जिनमें मोह बसा हुआ है। और, देव शास्त्र गुरुधर्मके प्रसङ्गमें कुछ भी समर्पण करनेकी उमङ्ग नहीं रखते हैं। निर्णय रखिये तो जो कल्याणके हेतुभूत हैं उनका सम्पर्क सत्सङ्ग बढ़ना और जो मोहके कारणभूत हैं उनका यथार्थ ज्ञान रखना इससे आकिञ्चन्य भाव बढ़ेगा। अन्तिम धर्म है ब्रह्मचर्य। अपने आत्मामें लीन होना, रमना जिससे सर्वविकल्प शान्त होते हैं। ऐसे इस ब्रह्मचर्य धर्मके पालनसे कर्मोंकी निर्जरा होती है। इस प्रकार वे समस्त कर्म दूर होते हैं और यह ज्ञान निरावरण होकर पूर्ण प्रकट हो जाता है।

ज्ञानकी निरावरणताके उपायभूत संवर तत्त्वमें अनुप्रेक्षाका वर्णन—मुख्य प्रत्यक्ष सम्पूर्णरूपसे स्पष्ट रहता है, इस स्पष्टताका कारण यह है कि वह अतीन्द्रिय हुआ करता है, इन्द्रियसे उत्पन्न नहीं होता, स्वतः ही आत्मासे उत्पन्न होता है। स्वयं आत्मासे उत्पन्न होता, इन्द्रियादिक किसी भी परतत्त्वकी पराधीनता इस मुख्य प्रत्यक्षमें नहीं आती इसका कारण यह है कि ज्ञान निरावरण है। ज्ञानपर किसी भी प्रकृतिका आवरण नहीं है। ज्ञान निरावरण है। इसका कारण यह है कि सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्ररूप सामग्री विशेषसे इन आवरणोंका प्रक्षय हुआ है। तो इस प्रसङ्गमें इस आशङ्कापर कि कर्मोंका विशेषरूपसे क्षय कैसे हो सकता है, बताया जा रहा है कि सम्बर भावके कारण नवीन कर्मोंका आना रुक गया और जिन परिणामोंसे सम्बर भाव होता है उन्हीं परिणामोंसे कर्मोंकी निर्जरा भी हो गई तो संवरपूर्वक निर्जरा होती रहनेसे इसका विशेष क्षय हो जाता है। तो सम्बर भावके प्रकरणमें अब अनुप्रेक्षाका वर्णन चलेगा। अनुप्रेक्षा कहो अथवा भावना कहो एक ही तात्पर्य है। अनुप्रेक्षा शब्दका अर्थ है—अनुप्र ईक्षा। जैसे आत्माका हित हो उसके अनुसार प्रकर्षरूपसे उत्तम विधिसे तत्त्वका ईक्षण करना, निरीक्षण करना सो अनुप्रेक्षा है। भावनाका अर्थ है कि यों स्वरूपकी भावना करना, बारबार चिन्तन करना कि जिससे परपदार्थोंसे उपेक्षा हो और अपने आत्माके विशुद्ध चैतन्यस्वरूपमें रुचि बढ़े उसका नाम है भावना। ये अनुप्रेक्षायें बारह होती हैं अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि आश्रव, सम्बर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ, धर्मभावना।

अनित्यभावनामें तत्त्वनिरीक्षण—यह ज्ञानी पुरुष अनित्य भावनामें यह निरीक्षण कर रहा है कि जगतमें जितने भी दृश्यमान पदार्थ हैं, जिनको निरखकर अन्तरङ्गमें राग और द्वेषकी उत्पत्ति हुआ करती है। ये सारे समागम पर्याय हैं ये ध्रुव द्रव्य नहीं हैं किन्तु यह द्रव्य इस परिणमनमें आया हुआ है। और जितने परिणमन होते हैं वे सब विनाशीक होते हैं। तो परिणाम दृष्टिसे यह सारा पदार्थ विनश्वर है, जो नष्ट हो जाने वाली चीज है, जिसका सदा संयोग रह नहीं Version 1 उससे लगाव

http://sahjanandvarnishastra.org/

क्यों लगाना ? अनित्य वस्तुसे रागभाव करनेका फल क्लेश ही है। जैसे परिवारमें देखते ही हैं कि जब तक समागम है जब तक उनसे लगाव है, मोह बढ़ा रहे हैं तब तक बड़ा हर्ष मानते हैं और जब उनका वियोग होता है तब फिर ये कितना तकलीफ मानते हैं। जिन पदार्थोंका संयोग हुआ है उनका वियोग नियमसे होगा। इसमें किसी का न समर्थन चलेगा न किसीका कुछ बड़प्पन चलेगा। इस निगाहमें अमीरी गरीबी ज्ञानी मूर्ख सब एक मकान हैं। सभीके समागम नियमसे नष्ट होंगे। तो ऐसे अनित्य पदार्थोंसे उपेक्षा करके अपने आपमें बसे हुए उस नित्य चिदानन्द स्वरूपकी दृष्टि करना इस परिणामसे नवीन कर्मोंका आस्रव रुकता है और पूर्वबद्ध कर्मोंकी निर्जरा होता है।

अशरणभावनामें तत्त्वनिरीक्षण—अशरण भावनामें ज्ञानी यह निरख रहा है कि जगतमें कोई भी पदार्थ मेरे लिये शरण नहीं है। जिसको भी अपनी शरण समझकर उसके पास पहुँचा, उससे राग बढ़ाया उसके लिये अपना सारा समर्पण भी कर दिया, फिर भी वहांसे धोखा ही मिला। उससे शरण नहीं मिला। बाहरमें कोई भी शरण नहीं। चक्रवर्तियोंकी सेना जहाँ करोड़ों पदाति होते हैं लाखों घोड़ा हाथी होते हैं बहुत बड़ा दल बल होता है, इतना बड़ा भी वैभव मरण समयमें सहाय नहीं हो सकता। बड़े आरामके साधन भी बना लिए हों, बडी अच्छी कोठी, बड़ा दृढ़ रोजिगार सब तरहकी सुविधायें भी बना ली हों, पर मरण समयमें किसीकी भी सिफारिस नहीं चलती है। बाहरमें कोई शरण नहीं है. और अन्तरङ्गमें देखते हैं तो यह मरण ही कुछ नहीं। यह जीव है. सत् है, शाश्वत है. अपने गुणोंमें परिपूर्ण है, अपने सर्वस्वको लिए हुए है। यह यहां न रहा और कहीं चला गया, इसका मरण क्या ? इसका शरण यह स्वयं है। अपने आपके स्वरूपकी ओर दृष्टि लगाये तो खुद ही खुदका शरण मिलता है। ऐसे इस ज्ञायक स्वभावी निज अन्तस्तत्त्वकी शरण गहनेके प्रसादसे आश्रवका निरोध होता है और पूर्वबद्ध कर्मोंकी निर्जरा होती है।

संसारभावनामें तत्त्वनिरीक्षण– संसार भावनामें यह जीव संसारकी दुर्गतिके प्राणियोंको देख रहा है कि सब दुःखी हैं, संसार ही दुःखमय है। किसका नाम सुख रखें ? जिस किसीका भी नाम सुख रखेंगे वह तो केवल काल्पनिक सुख है. वह विघट जायगा, जो कल्पना बनी है जिस कल्पनाके कारण मौज माना है, जब वह कल्पना ही न टिक सकेगी तो बाहरी पदार्थ तो क्या टिकेंगे। सुख कहीं नहीं है, जिसको सुख माना है वह दुख है। लोग भी ऐसा भी कहते है कि संसारमें दुःख तो पर्वत बराबर है और सुख है राईके दाने बराबर, तो राईके दाने बराबर भी सुख नहीं है जिसे सुख माना है वह भी आत्माके क्षोभकी एक अवस्था है। किसीने खुश होकर उस क्षोभको अपनाया तो किसीने दुःखी होकर उस मोक्षको अपनाया, हर्ष और विषाद दोनोंमें क्षोभ बसा हुआ है। शान्ति नहीं है। तो संसार समस्त दुःखमय है, पर अन्तरङ्गमें निरखो— यह आत्मस्वरूप यह केवल ज्ञानमय है, यह दुःख रहित है, इसमें किसी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भी प्रकारकी आकुलता नहीं है। ऐसे नि:संसार निर्विलेश आत्मतत्त्वकेआश्रयसे आश्रव का निरोध होता है और बंधे हुए कर्मोंका विनाश होता है।

एकत्व व अन्यत्वभावनामें तत्त्वनिरीक्षण एकत्व भावनामें इस जीवने अपने आपमें विराजमान शुद्ध एकत्वका दर्शन किया है, मैं केवल ज्ञानानन्दस्वरूप हूँ, इस मुझके साथी ये रागद्वेष भी नहीं, जिन रागद्वेषोंमें हम रमते हैं ये रागद्वेष होते हैं और होनेके साथ ही मिट जाते हैं फिर नये रागद्वेष होते हैं, इस रागद्वेषकी परम्पराने हमें हैरान किया है, यदि परम्परा न बने और रागद्वेष आयें तो चाहे जो आयें जो आयेंगे सो मिटेंगे नये नये रागद्वेष न आयें तो आनेका कोई क्लेश नहीं है, आयें हैं सो जायेंगे' ये रागद्वेष भी मेरे साथी बनकर न रह सकेंगे। मेरी कल्पनायें मेरा मन भी तो मेरा साथी बनकर नहीं रह सकता। ऐसा मैं अपनी इन्द्रिय और मनसे भी परे केवलज्ञानानन्दस्वरूप हूँ उस सत्का जिसने आश्रय किया है ऐसा पुरुष संसारके समस्त सङ्कटोंका क्षय कर देता है, उसके नवीन कर्मोंका आस्रव रुकता है और पूर्व-कर्मोंकी निजरा होती है। अन्यत्व भावनामें इस ही एकत्वको प्रतिलोमरूपसे भाया गया है। मेरा कहीं कुछ भी नहीं है, सब मुझसे निराले हैं। जिन्होंने अपने द्रव्य, क्षेत्र काल, भावरूप अपने ही प्रदेशमय, अपने ही गुणोंमय निज तत्वको निरखा है वह इस मर्मको जानता है कि मेरेसे ते समस्त पदार्थ अत्यन्त बाह्य हैं परिजन, मित्रजन रागके कारणभूत चेतन अचेतन पदार्थ ये सब मेरे स्वरूपसे निराले हैं, ये सब जुदे हैं, इनमें मेरा कहीं कुछ नहीं है। इस भावनाके प्रसादसे परद्रव्योंसे उपेक्षा होती है और अपने आपमें बसे हुए चिदानन्दस्वरूप एकत्व स्वभावका आश्रय लिया जाता है, उसके कर्म दूर होते हैं।

अशुचि भावनामें तत्त्वनिरीक्षण - अशुचि भावनामें ज्ञानी चिन्तन करता है - ये समस्त शरीर अत्यन्त अशुचि हैं जिनमें इष्टबुद्धि करके ये मोही प्राणी उन्मत्त हो जाते हैं अपना सर्वस्व समर्पण कर देते हैं दीन बन जाते हैं, रागदाहमें जलते हैं। पौराणिक कथा है, एक राजपुत्र सेठकी बहूको देखकर कामसे व्यथित हुआ और दासी को भेजकर कहलवाया। वह सेठानी चतुर थी। उसने खबर देदी कि १५ दिनके बाद में तुम आ जाना। वह राजपुत्र १५ दिनके बाद आया। उसी १५ दिनके बीचमें उस सेठकी बहूने क्या किया रोज जुलाव लेती रही और एक मटकेमें शौच करती रही। १५ दिनके जुलाब दस्तोंमें वह अत्यन्त दुर्बल हो गई, हड्डियां झलकने लगीं, शरीर अत्यन्त कुरूप, पीला पड़ गया। राजपुत्र जब आया तो उस बहूको देखकर बड़ा आश्चर्य चकित हुआ - ओह मैंने तो किस रूपमें देखा था अब यह किस रूपमें है। तो वहू बोलती है कि आप चकित मत होवो। हमारी आपसे बहुत प्रीति है। आप चकित क्यों हो रहे हैं। जिस रूपपर आप मुग्ध थे चलो वह रूप हम तुम्हें दिखायें और तुम उस रूपका खूब भोग करो। बहू राजपुत्रको उस मटकेके पास ले गई और

Version 1

http://www.sahjanandvarnishastra.org/

खोलकर बताया कि देखो इसमें भरा है मेरा रूप । राजपुत्र शर्मिन्दा होकर वापिस चला गया । तो शरीरपर जो रूप है, कान्ति है वह है क्या ? शरीरमें भरे हुए मल-मूत्र खून आदिक अशुचि पदार्थ हैं । उनका ही तो ढेर है यह शरीर और है क्या ? तो ये सब शरीर अशुचि है । अन्दर निरखो तो अत्यन्त शुचि पवित्र मेरे आत्माका चिदानन्द स्वरूप है जिसकी वृत्ति है केवल जानना । उससे पवित्र हम लोकमें और क्या देखें । जहां इतना बड़ा वैभव कि लोकालोक व्यापक बन गया इससे और विशेष महत्त्वकी बात और क्या निरखी जाय ? अपने उस पावन स्वरूपकी भावना करके यह ज्ञानी जीव आश्रवका निरोध करता है और कर्मोंका नाश करता है ।

आस्रव व संवर भावनामें तत्त्वनिरीक्षण— आश्रव भावनामें यह ज्ञानी भावना कर रहा है कि रागद्वेष मोह परिणाम आत्माके अत्यन्त क्लेशरूप हैं । इसके ही कारण संसारमें भटकना पड़ता है, जन्म मरणके चक्कर लगाने पड़ते हैं । यह बहुत दुखदायी है । इसके ही कारण नवीन कर्म आया करते हैं । यह आश्रव हेय है । रागद्वेष मोह भाव हेय हैं । उपादेय तो आत्माका वीतराग विज्ञानस्वरूप है जिसमें विशुद्ध प्रकाश है और सत्य निरपेक्ष आनन्द है ऐसा आत्मस्वरूप ही उपादेय है । इस भावनाके प्रसादसे भी आश्रवनिरोध होता है । सम्वर भावनामें यह ज्ञानी पुरुष चिंतन कर रहा है आश्रवका रुक जाना ही आत्महित है । ज्ञान और वैराग्यके बलसे यह रागादिक भावको आश्रव और द्रव्यकर्मोंका आश्रव रुकता है । मेरे लिये ज्ञान और वैराग्य ही शरण है । जब जब भी क्लेश होता है तब तब भी कोई चिन्ता सताये तो ज्ञानस्वरूप अपने आत्मतत्त्वकी सुध लें और मानलें कि मैं तो ज्ञानमात्र हूं, मेरे पर कुछ भार ही नहीं है । यह स्वप्नकी दुनिया है, जिसमें अपना चित्त फसाकर हम अपनेको भारसहित मानते हैं । मैं निर्भार ज्ञानस्वरूप हूं । इस भावनाके प्रसादसे कर्मोंका आना रुकता है और बद्ध कर्मोंकी निर्जरा भी होती है ।

निर्जरा भावनामें तत्त्वनिरीक्षण—निर्जरा भावनामें यह निरखा जा रहा है कि इच्छाका निरोध करनेसे, रागादिक भावनाकोंकी अपेक्षा करनेसे इच्छा रहित जो आत्मस्वभाव है उसका अवलम्बन लेनेसे पहिलेके बंधे हुए कर्म झड़ते हैं । कर्मोके झड़नेमें ही आत्माको शान्तिका, मुक्तिका लाभ मिलेगा । जीव चाहे कहीं भी गुप्तरूप में भी किसी भी पाप कर्मको करे तो कर्म वहाँ यह नहीं निरखते कि यह गुप्तरूपमें करता है । बन्धन वहाँ ही हो जाता है । और, जो कर्म बंधे है वे कर्म उदयमें आते हैं तब जीवको क्लेश भोगना पड़ता है । विरला ही कोई पवित्र जीव होता है जो किए हुए कर्मोंका फल देनेसे पहिले भी काट दे । उस बिरलेको छोड़कर शेष समस्त जीव इन कर्मोंके उदयमें क्लेश भोगा करते हैं । कर्मोंकी निर्जरामें ही आत्माका हित है । ऐसी भावना वाले ज्ञानीके कर्मोंका आस्रव रुकता है ।

लोक एवं बोधिदुर्लभ भावनामें तत्त्वनिरीक्षण— लोक भावनामें ज्ञानी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

इस विशाल लोकको निरख रहा है और सोच रहा है कि इस जीवने निजकारण परमात्मतत्त्वकी सुध नहीं की इस कारण इस लोकमें सर्वप्रदेशोंमें अनन्त बार यह जन्म-मरण करता आया । जब अज्ञानभाव हटे और आत्माका चिदाभास विकसित हो तो लोकका यह भ्रमण, यह जन्ममरणका चक्कर समाप्त हो सकता है । यों यथार्थ निर्णय करके तत्त्ववेदी महात्मा अपने उस सहज ज्ञानस्वभावका आलम्बन करता है जिसके प्रतापसे कर्मोंका आश्रव रुकता है । बोधिदुर्लभ भावनामें अपनी वर्तमान परिस्थितिको देख रहा है कि यह कितनी दुर्लभ चीज थी जो प्राप्त करली गई है । संसारमें कैसे कैसे विचित्र जीव हैं — एकेन्द्रिय, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति, कीड़ा-मकोड़ा, पतंगे, मक्खी मच्छर, पशु, पक्षी आदिक कितनी ही तरहके देहधारी हैं, उन सब जीवोंके मुकाबलेमें हम आपका कितना श्रेष्ठ जीवन है । कितनी कला, कितना ज्ञान, कितनी बुद्धि प्राप्त हुई है । अपने दिलकी बात दूसरोंसे बड़े साहित्यिक ढङ्गसे भी बता सकते हैं, दूसरेकी बातको भी समझ सकते हैं । यह बात इन पशु पक्षी कीड़ा मकोड़ोंमें कहाँ है ? कितना दुर्लभ मानव जीवन पाया है तिसपर भी दुर्लभ चीज पाया है उत्तम जाति, उत्तम कुल, उत्तम देश आदि । इन सभी दुर्लभ चीजोंको पाकर आत्मरक्षामें इनका उपयोग करलें तो इसमें आत्म कल्याण है । यों जानकर अपने उस शुद्ध चिदानन्द स्वरूपकी ओर दृष्टि करके अपनी रक्षा करना है । इसमें कर्मोंके आश्रव रुके, पूर्वबद्ध कर्म झड़े, यही आत्माकी रक्षा है ।

धर्मभावनामें तत्त्वनिरीक्षण व धर्मके प्रतापसे ज्ञानकी निरावरणता— ज्ञानी पुरुष धर्म भावनाका चिन्तन कर रहा है । मेरे आत्माका धर्म यह एक शाश्वत ज्ञानानन्द स्वभाव है । इस धर्मकी दृष्टि करनेसे धर्मका पालन होता है । इस धर्मपालनके समय रहे सहे रागभाव चलते हैं तो देव, शास्त्र, गुरुके प्रसङ्गमें चलते हैं तब इसके धर्मध्यान होता है । उस धर्मध्यानके प्रतापसे उत्तम देवोंमें जन्म होता, अहमिन्द्रोंमें जन्म होता और उसी सिलसिलेमें वहाँसे चलकर मनुष्य होकर तपश्चरण करके निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं । धर्मका अतुल प्रताप है । लोकमें हम आपका मात्र धर्म ही शरण है । उस धर्मका सहारा लें । धर्मके सहारेका अर्थ यह है कि अपने आपका जो स्वरूप है, जिसमें रागकी तरंग नहीं है । केवल एक प्रतिभासमात्र है । ज्ञाताद्रष्टा रहने वाला है ऐसे शुद्ध तत्त्व आनन्दस्वरूपका आलम्बन लें, यहां अपनेमें ही ऐसी दृष्टि लगायें तो यह कहलायेगा धर्मपालन । इस धर्मपालनके प्रतापसे नवीन कर्मोंका आश्रव रुकता है और पूर्वबद्ध कर्म दूर होते हैं, यों जब समस्त कर्म दूर हो जाते हैं तो ज्ञान निरावरण हुआ, फिर इन्द्रियकी कोई अपेक्षा न रही, यों निःशेष रूपसे निर्मल ज्ञान प्रकट होता है, वही मुख्य प्रत्यक्ष ज्ञान कहलाता है ।

ज्ञानकी निरावरणताकी विधिका प्रकरण— ज्ञानके दो भेद होते हैं—एक प्रत्यक्ष ज्ञान दूसरा परोक्ष ज्ञान । जो स्पष्ट ज्ञान है उसे प्रत्यक्ष कहते हैं । स्पष्ट ज्ञानके

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

दो प्रकार हैं—एक एकदेश स्पष्ट और दूसरा सर्वदेश स्पष्ट। जो ज्ञान एकदेश स्पष्ट है उसे सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहते हैं। जिसके सम्बन्धमें हम आप बोला करते हैं कि हमने प्रत्यक्ष देखा, प्रत्यक्ष सुना वह प्रत्यक्ष वास्तवमें तो परोक्ष है किन्तु उस ज्ञानमें कुछ एकदेश स्पष्ट विदित होता है इस कारण उसका नाम सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष है। जो सर्वदेश स्पष्ट होता है उसका नाम है मुख्य प्रत्यक्ष। मुख्य प्रत्यक्ष इन्द्रियातीत है। ऐसा ज्ञान जो सर्वदेश उत्पन्न हो वह इन्द्रियके द्वारा उत्पन्न नहीं हो सकता, किन्तु इन्द्रियके व्यापारसे रहित केवल एक आत्माके आलम्बनसे ही स्पष्ट ज्ञान उत्पन्न होता है अतएव यह मुख्यज्ञान अतीन्द्रिय है और निरावरण भी है। ज्ञानपर आवरण कर्मोंका है। कर्मोंका आवरण दूर भी हो सकता है या नहीं। इस शङ्कापर यह प्रसङ्ग चल रहा है कि आगामी जो कर्म आ सकते हों न आयें अथवा कर्मोंका आना रुक जाय और संचित कर्म झड़ जायें तो इस विधिसे निरावरणता हो सकती है। अर्थात् सम्बर और निर्जरा इन दो तत्त्वोंके प्रसादसे मोक्ष अवस्था हो सकती है।

संवरतत्त्वके प्रसङ्गमें परीषहविजयका वर्णन— मोक्षके प्रमुख उपायभूत सम्बरके प्रसङ्गमें परीषहजयोंका वर्णन चल रहा है। २२ प्रकारके परीषहोंका विजय होनेसे कर्मोंका आश्रव रुकता है और संचित कर्मोंकी निर्जरा होती है। उनके नाम हैं— क्षुधा, पिपासा शीत, उष्ण दंसमशक, नग्न्य, अरति, स्त्री, चर्या निषद्या, शय्या, आक्रोश, बध, याचना, अलाभ, रोग, तृणस्पर्श, मल, सत्कार पुरस्कार, प्रज्ञा, अज्ञान और अदर्शन। इनमें क्लेश भरा हुआ है। इन सर्व परीषहोंपर विजय प्राप्त कर लेना, इन परीषहोंके आनेपर अपनेमें क्षोभ न आने देना, इस हीका नाम है परीषह-विजय। परीषह विजय एक बहुत बड़ा आत्मबल है जिस विजयके प्रसादसे कर्मोंका सम्बर और निर्जरा होती है। आत्मसाधनाका बहुत बड़ा महत्त्व है। लोकमें तो मोही मिथ्यादृष्टि अज्ञानी स्वार्थी विषयानन्द लोलुपी पाप कलङ्कसे भरे हुए परिणाम करके मलिन हैं, उन लोगोंको खुश करनेके लिए उनकी खुशामद करना, सेवा करना यह उद्देश्य तो एक बहुत अधम भाव है मोक्षमार्गकी दृष्टिसे। मोक्षमार्गमें तो सबसे निपाले अपने ज्ञायकस्वरूप अन्तस्तत्त्वकी उपासनाके बलको महत्त्व दिया है। यह बल परीषह विजयसे प्रकट होता है। परीषहविजयपर अधिकार साधु संतोंका हुआ करता है तो उस ही दृष्टिसे परीषह विजयका अर्थ समझना चाहिए।

क्षुधापरीषहविजय— कोई साधु एक निर्दोष बिधिसे आहारार्थ चर्या कर रहा है। कितने ही दिनोंका उसका उपवास है, पर कदाचित् उस भिक्षाका लाभ न हो, ऐसी विधि न जुड़े, लोगोंका भक्ति सम्मान उतना न उसकी समझमें आये तो आहारका वहां अलाभ रहता है। लेकिन, आहार आदिक न मिलनेपर भी वह संत अपने कर्तव्यमें जरा भी उत्साह नहीं भंग करता, स्वाध्याय और ध्यानकी भावनामें तत्पर रहता है। क्षुधा वेदनासे यद्यपि शरीर क्षीण हो गया है। नहीं भी भोजनकी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्राप्ति हुई। तो भोजनकी प्राप्तिसे भी अधिक गुण भोजन न मिलनेमें समझता है और ऐसी क्षुधाकी वेदना आनेपर भी उसके प्रति चिन्तन नहीं करता वे, अपने समताको परिणामको सम्हाले रहता है। यह है साधुवोंका क्षुधापरीषह विजय। आहार न मिलनेके बाहरमें कई कारण होते हैं। एक कारण तो यही है कि नवधाभक्तिको यदि कोई गृहस्थ भली प्रकार प्रकट नहीं कर सकता तो साधु जन वहां आहार नहीं लेते। कोई शङ्का कर सकता है कि यह तो उनकी एक अभिमानकी बात है कि पूरी भक्ति न मिले तो वहां आहार न लें यह शंका ठीक नहीं है, क्योंकि साधुजनोंके पास और कोई दूसरा तरीका नहीं है कि वे यह जान सकें कि यह भोजन पवित्र है और भोजन देने वालोंका हृदय पवित्र है और बड़े भावोंसे उदारतासे यह हमें पड़गाह रहा है, इसके जाननेका साधुवोंके पास और कोई उपाय नहीं है। वे मौनसे चर्या करते हैं। बोलते हों तो पूछ लें कि अमुक चीज कितने दिनोंकी है। शुद्ध बना या नहीं बना। तो मौनसे चर्या करने वाले साधुजनोंके पास सिवाय नवधाभक्तिको ठीक निरख लें, इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है कि जान सकें कि आहार भी शुद्ध है और दाताके भाव भी शुद्ध हैं इसकी परीक्षा वे उस भक्तिसे ही कर पाते हैं। जिनको विधि मालूम है उनके मन, वचन, कायकी चेष्टासे वे जानते हैं कि यह आहार निर्दोष है। कभी नवधाभक्तिमें कमी आये तो उससे वे जानकर कि यह आहार पवित्र नहीं है, आहार नहीं करते, दूसरा कारण कोई अन्तराय आ जाय अथवा कोई रोक दे, कुछ भी आहारके प्रकरणमें निषेध वाचक शब्द कह दे तो आहार नहीं लेते। जैसे गृहस्थजन भी तो भोजन करते समय यदि कोई उन्हें टोंक दे कि अब यह न चाहिए अब यह न चाहिए अब अमुक चीज दो। किसी चीजका निषेध किसी भी शब्दसे करे तो गृहस्थ भी भोजन नहीं कर सकता। तीसरा कारण है— वृत्तिपर संख्यानकी विधि न मिले। जो अटपटी आखड़ी लेकर उठे हैं उसकी पूर्ति न हो सके तो आहार नहीं लेते हैं। अनेक कारण होते हैं। तो क्षुधाकी वेदना भी है। आहारका लाभ भी नहीं हुआ तिसपर भी ग्लानि न करना और अपने आत्मध्यानमें उत्साह बनाना यह है क्षुधापरीषहजय।

तृषापरीषहजय — तृषापरीषहजय अद्‌भुत ज्ञानबलको प्रकट करता है। कैसी ही गरमी है फिर भी अध्यात्मयोगी संत स्नानका परिषेकका भाव भी नहीं रखते हैं। पक्षियोंकी तरह अनियत स्थानमें जहां चाहे विहार करते हैं। जहाँ पिपासाके कारण पित्तज्वर आदिक अनेक रोग हो गए हैं ऐसी पिपासरूपी अग्निकी शिखाओंको जो धैर्यरूपी ज्ञानजलसे बुझा देते हैं और आत्महितके कर्तव्यसे विचलित नहीं होते, अपने आत्मध्यानमें सावधान रहते हैं, ऐसे संतोंका यह है तृषापरीषहजय। जब तक अपने तत्त्वज्ञानकी दृढ़ भावना न हो तब तक इन परीषहोंको भली भांति कोई जीत नहीं सकता।

शीतपरीषहजय—कितना ही शीतकाल पड़ रहा हो फिर भी कोई साधु

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वृक्षके नीचे कोई खुली शिला तलपर विराजे हैं, बर्फ, ओस भी गिरे तो भी उसके प्रतिकारके संबंधमें कुछ चिन्तन नहीं करते। कैसी धुन है उन तत्त्ववेदियोंकी कि ऐसे दु:सह परीषह हैं फिर भी उनसे रंच भी विचलित नहीं होते। जो पुरुष उस तत्त्वकी दृष्टि नहीं कर पाते उनको ये सब अचरजकी बातें मालूम होती हैं। इतना तो गृहस्थों के भी देखा जाता है कि किसी दिन यदि विशेष आय हो रही हो, ग्राहकोंका ताँता लगा हो, दूकान अच्छी चल रही हो तो भूख प्यासकी सुध भूल जाती है। तो यह तो सिद्ध है कि कोई धुन ऐसी होती है कि जिसमें ये वेदनायें सब आसानीसे निकल जाती हैं। फिर साधु जनोंकी तो अपने आपमें बसे हुए कारण परमात्मतत्त्वकी धुन है उसे स्वयं एक अलौकिक आनन्द प्रकट हो रहा है, तो वे इन परीषहोंकी विजय करनेमें समर्थ होते हैं।

उष्णपरीषहजय कैसी ही गर्मी पड़ रही हो, कुवोंमें जल नहीं रहा, ऐसी तीव्र गर्मीके समयमें जहाँ गला, तालू, मुख सूख रहा है क्योंकि वह तो शरीरकी बात है, उसपर साधुका क्या वश, फिर भी साधु अपने उस तत्त्वज्ञानके आनन्दसे आनन्दित रहकर इस ओर दृष्टि नहीं देते। उस उष्ण वेदनाके प्रतिकारमें समर्थ बहुत गृहस्थावस्थामें साधन जुटाये थे, पर उन साधनोंका अब ख्याल नहीं करते और अपने इस तत्त्वज्ञानरूपी शीतल जलमें समुद्रमें अवगाह रहे हैं, ऐसे साधुजनोंके उष्णपरीषह विजय होती है।

दंशमशकपरीषहजय —एक कठिन परीषह है दंशमशक। डांस, मसक, मक्खी, चींटी, बिच्छू आदिक कोई भी जीव जन्तु डस रहा हो, काट रहा हो, उनसे जो बाधा हो रही है उस बाधाके प्रतिकारकी वाञ्छा भी नहीं है योगीके और न उस बाधाको वे मन, वचन, कायसे दूर करनेका यत्न करते। केवल एक निर्वाण प्राप्तिका ही जिनके संकल्प बना हुआ है ऐसे पुरुषोंके द्वारा जो दंशमशककी वेदना सह ली जाती है, उस उपद्रवमें रंच खेद नहीं मानते हैं वहाँ होता है दंसमशकपरीषहजय। बताते हैं कि जब अंग्रेजी राज्यमें क्रान्तिका समय आया तो भगतसिंहको गिरफ्तार किया गया और गुप्त रहस्य जाननेके लिये उनके अंगुलीके नीचे एक मोमबत्ती जलाई गई, तिसपर भी गुप्त रहस्यको भगतसिंहने नहीं बताया! तो धुन ही तो है। उनकी धुन और किस्मकी थी। तो अपनी धुनमें रहकर ऐसे कठिन परीषह भी सह लिए जाते हैं। और, जहाँ शरीरसे भिन्न केवल आत्मतत्त्वके अनुभवनकी ही धुन बस रही हो वहाँ तो यह परीषहविजय आसान रहता है। जब तक परीषहविजयकी कुञ्जी नहीं प्राप्त कर ली जाती तब तक ये सब आश्चर्यकी बातें लगती हैं। कुञ्जी है अपने आनन्दस्वरूपका दर्शन और उसमें रमण करनेकी धुन। जिसके कारण यह शरीर ऐसा निराला विदित होने लगता है जैसे कि और दूसरे शरीर।

नाग्न्यपरीषहजय — एक परीषह है नाग्न्यपरीषह। जैसे उत्पन्न हुआ बालक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

निर्विकार होता है, निष्कलङ्क होता है इस प्रकारका जिन्होंने रूप धारण किया है, जो किसी पापको छुपा नहीं सकते निष्परिग्रह हैं, निर्वाणकी प्राप्तिके लिए साधनभूत समझकर जिन्होंने यह नग्न अवस्था धारण की है, मनमें विकार जिनके रंच नहीं है, बाहरके शरीर, स्त्रीके रूप अत्यन्त अशुचि हैं, इस प्रकार कुरूप रूपसे भावना करने वाले साधुजनोंके जो रातदिन अखण्ड ब्रह्मचर्यका पालन है ऐसी नग्नावस्थाको धारण करके भी विकार न आने देना यह है नाग्न्यपरीषहविजय।

अरतिपरीषहजय – साधुजनोंके कितने भी अनिष्ट समागम आयें फिर भी इष्ट बुद्धि जोड़नेके लिए उत्सुक नहीं रहते, वे गानोंमें रुचि रखें रागके भजन सुननेमें रुचि रखें जिनमें एक राग रस बढ़ता हो ऐसी वृत्ति साधुवोंके नहीं होती है। वे विकट–विकट स्थानोंमें रहा करते जहाँ लौकिकजन निवास भी नहीं कर सकते, वृक्षकी गुफा वोंमें, सूने घरोंमें रहकर भी वे स्वाध्यायसे रंचमात्र भी अरति नहीं करते हैं, ऐसे अनिष्ट प्रसङ्गोंमें भी कभी उन भोगोंका ध्यान नहीं करते उन आरामोंका ध्यान नहीं करते जो बहुत–बहुत आराम भोगा है घरमें रहकर। उन सबका ख्याल न रखकर केवल एक विशुद्ध ज्ञान ज्योतिमात्रके अनुभवकी ही जिनके चाह लगी है ऐसे पुरुष अनिष्ट प्रसङ्गोंमें भी खेद न मानते हैं, इसे अरतिपरीषहजय कहते हैं। देखिये - कर्म बन्ध तो जीवके रागद्वेष मोहभावका निमित्त पाकर होता है। इस ज्ञानबली पुरुषमें रागद्वेष मोह कहाँ उत्पन्न हो रहे हैं फिर बंध कहाँसे हो ? ऐसा ही पुरुष परीषह विजयमें निष्णात होता है।

स्त्रीबाधापरीषहजय – स्त्रीबाधापरीषह – कदाचित् जङ्गलके स्थानमें भी एकान्तमें या अन्यत्र भी कहीं नवयौवन वाली स्त्रीके द्वारा भी कोई रागरङ्गकी बातें हों, या कोई देवांगना अपना सुन्दर स्त्रीरूप रखकर किसी ऋषिका चित्त डिगाना चाहती हो तो उस समय भी ऐसे साधु जिन्होंने इन्द्रियके व्यापारोंका संकुचित कर दिया है वे स्त्रीकी राग भरी बातें सुनकर, उनकी मुस्कान निरखकर उनके विलास सहित कटाक्षको देखकर, उनके प्रहासको देखकर रंचमात्र भी उद्वेग नहीं करते, उनमें काम व्यथा नहीं होती, ऐसे साधुवोंके स्त्रीपरीषह विजय होती है, कोई यदि ऐसा ध्यान करले कि कोई मनुष्य गाली दे रहा है तो वह तो हमारी परीक्षा कर रहा है, ख्याल कर लेनेसे उसपर क्रोध नहीं आता। यों ही सर्वत्र ख्याल करलो जहाँ कुछ भी घटना आपके समक्ष कोई घटाये बस यही सोचलें कि यह तो मेरी परीक्षा करनेके लिए ऐसी चेष्टा कर रहा है, इतनी बात सोच लेनेसे ही कषाय मंद हो जायगी। तो यह भी ध्यान करलें कि ये देवांगनायें अथवा कोई मित्र मेरी परीक्षाको तो नहीं आया, तो इतनेसे ही उसका विचार परिवर्तित हो जाता है, ये साधुजन कभी विकल्पमें भी आयें तो इस प्रकारके शुभ विकल्प करते हैं, और मुख्यतया तो अपने आत्मस्वरूपकी दृष्टि रखकर वहाँ आनन्दित रहते हैं। ऐसे साधुवों के स्त्रीपरीषह विजय सुगम

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हृती है।

चर्यापरीषहजय - चर्यापरीषहजयमें संत योगी चलते समय जो तकलीफ होती है—कांटा चुभे, पृथ्वीमें जमे हुए तृण चुभें, लेकिन वे उसमें अपने चित्तको म्लान नहीं बनाते। जिन्होंने दीर्घकाल तक गुरुकुलमें रहकर ब्रह्मचर्यकी सेवा की है बंध और मोक्षके तत्त्वका जिन्होंने भली प्रकार निर्णय किया है, संयमके साधन देव, शास्त्र गुरु, आत्मतत्त्व इनकी भक्ति करके जिन्होंने आत्माको पवित्र बनाया है ऐसे मुनि गुरु जनोंसे आज्ञा लेकर कभी विहार भी करें तो अनेक तपश्चरणोंसे वे डिगते नहीं, और ईर्यासमितिसे संयमकी रक्षा करते हुए विहार करते हैं। तो कुछ भी चुभे पैरमें फिर भी वे खेद नहीं मानते और न यह ध्यानमें लाते कि मैं पहले ऐसे रथोंपर चलता था, काररोंमें घूमता था, विमानोंमें जाता था, कभी पृथ्वीपर पैर नहीं रखा, मखमलके गद्दोंपर कदम रखता था, इस आरामको भी जो रंचमात्र भी नहीं सोचते और यथा समय अपने आवश्यक धर्मकार्योंमें सावधान रहते हैं ऐसे साधु संत जनोंके चर्या परीषह विजय होती है।

निषद्यापरीषहजय – निषद्यापरीषहजय एक आसनसे बैठनेका परीषह सहना निषद्यापरीषहजय है। संतजन श्मशानमें, किन्हीं गुफाओं कन्दरावोंमें अथवा अन्य भयानक स्थानोंमें पहुँचकर जिस आसनसे बैठकर ध्यान लगाया बस उसी आसन में बैठे रहते हैं, वहाँपर सिंह व्याघ्र आदिककी गर्जनाके शब्द भी सुन पड़ रहे हों तो भी उन्हें भय नहीं होता। किसी प्रकारके उपसर्ग होते हों तो भी वे अपने ध्यानमार्ग को नहीं छोड़ते। यों एक क्या अनेक बाधायें वे साधुजन सहन करते हैं। उन साधु-संतोंके निषद्यापरीषहजय होती है। इन विशुद्ध परिणामोंसे कर्मोंका सम्वर होता है, संचित कर्म झड़ते हैं। इस सम्वर निर्जराके प्रतापसे कर्मोंका पूर्णक्षय होता है। वहाँ निरावरण अतीन्द्रिय ज्ञान प्रकट होता है जिसे मुख्य प्रत्यक्ष कहते हैं।

संवरतत्त्वमें योगीका शय्यापरीषहजय – ज्ञानका स्वभाव जाननेका है। जाननेमें आते हैं ज्ञेय पदार्थ, सत् पदार्थ। तो जो भी सत् हों वे समस्त ज्ञानमें आ जायें ऐसा ज्ञानका स्वभाव है। किन्तु संसार अवस्थामें यह ज्ञानस्वभाव अपने स्वभावके अनुरूप पूर्ण विकसित नहीं हो रहा है, इसका कारण है ज्ञानपर लगा हुआ ज्ञानावरण कर्म। जब उस कर्मका आवरण नष्ट होता है तब यह विकास सम्पूर्ण उत्पन्न होता है। वह निरावरणता सम्वर तत्त्व और निर्जरा तत्त्वके कारण होती है। नवीन कर्म न आयें और पूर्वबद्ध कर्म झड़ जायें इस विधिसे समस्त कर्मोंसे छुटकारा मिल जाता है तो उस ही निरावरणता प्रसङ्गमें सम्वर तत्त्वका वर्णन चल रहा है और उसमें परीषहविजयका प्रसङ्ग है। साधु संतजन ज्ञान ध्यानके तपश्चरणमें रत रहा करते हैं, उनके इस परिश्रमके कारण शरीर थक जाता है। तो एक मुहूर्तको वे खर विषम कठोर, पाषाण किसी भी जमीनपर जो निर्दोष हो उसपर कुछ निद्रा लेते हैं सो भी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

निद्रा एक करवटसे लेते हैं और ऐसा निश्चल पड़कर लेते कि मानो काठ पड़ा है अथवा प्राणरहित कोई देह पड़ा है। इस प्रकार एक करवटसे ककरीली जमीनपर शारीरिक थकान दूर करनेके अर्थ ज्ञानका संस्कार लिए हुए कुछ शयन करते हैं। उस समय कोई उपद्रव भी आये, कोई स्वंतरकृत बाधा भी आये तो भी उन समस्त परीषहोंको वे समतासे सह लेते हैं। जो संतजन इतने परीषहोंसे भी खेद नहीं मानते, और ज्ञानस्वरूप निज अंतस्तत्त्वकी भावनामें प्रसन्न रहते हैं उन संतोंके शय्यापरीषह विजय होती है।

आक्रोशपरीषहविजय - ये योगीश्वर अपने ज्ञानबलसे इतना बलिष्ट होते हैं कि वे दूसरे अज्ञानी जनोंके द्वारा कैसी ही गाली दी जानेपर भी चित्तमें खेद नहीं लाते हैं कोई दुष्ट जन निन्दाकी बात बोले, असभ्यताकी बात बोले, मर्मभेदी वचन बोले, ऐसे वचन जो क्रोध अग्निकी सिखाको बढ़ा दें लेकिन उन शब्दोंमें, उन अर्थोंमें उनका चित्त नहीं लगता। यद्यपि वे योगी इतना बलिष्ट हैं कि गाली देने वालेका मुंह तोड़ सकते हैं, पर उनके रंच भी प्रतिकार करनेकी भावना नहीं है। वे अपने आप कर्मका भी चिन्तन करते कि ऐसा ही निमित्तिनैमित्तक भाव है कि खोटे कर्म जो किए गए थे पहिले, उनका यह विपाक है। अथवा गाली देने वालेके भी पापकर्म का चिन्तन करते हैं कि देखो यह बेचारा कितना दुःखी है। कितना पापका उदय है कि इसे ज्ञानका प्रकाश नहीं मिल रहा, और इस शरीर जड़को ही मुझे समझकर, यह गाली गलौज बक रहा है। वे साधु संतजन यों विचार करके उस उपद्रवसे अपना मन फेर लेते हैं, तपश्चरणकी भावनामें रत रहते हैं। कषाय विषका लेशमात्र भी मुझमें आये तो वह महा विष है। उस विषकी कणिकाको भी अपने हृदयमें स्थान नहीं देते हैं। ऐसे ज्ञानी पुरुषोंके आक्रोशपरीषह विजय होती है।

बधपरीषह विजय — जगतमें प्राणी नाना भावोंके होते हैं। साधुवोंको भी निरखकर किसीके बैर भाव उमड़ जाता है तो कोई बैरी उन्हें छेदे काटे, मुदगरोंसे मारे, कितना ही शरीरपर आक्रमण करे, बध भी करे तो ऐसे हिंसक पुरुषोंमें जीवोंमें रंच मात्र भी मनका विकार नहीं करते। उन्हें शत्रु नहीं मानते। कोई ऐसा अलौकिक ज्ञान प्रकाश होता है जो उन योगीश्वरोंको सर्वत्र वही विशुद्ध प्रकाश नजर आता है। मेरा कोई जीव विरोधी नहीं है। कोई कुछ करता है तो उसके उस प्रकार के कर्मका उदय है, बेचारा विवश है, पराधीन है यों और दयाका भाव लाते हैं। जैसे कोई मां अपने किसी कुपूत बच्चेके द्वारा सतायी भी जाय तो भी उसपर बच्चे जैसी ही बुद्धि रखती है। कोई बच्चा दो चार थप्पड़ भी मारे, सरके बाल भी नोचे, मुखसे काट भी खावे पर वह मां उस बच्चेपर दया बुद्धि ही करती है। बेचारेके दिमाग कम है, सोच नहीं सकता, यों अपने पुत्रपर करुणाकी बुद्धि ही करती है इसी प्रकार ये साधु संत जन किसी दुष्ट पुरुषके द्वारा सताये जानेपर भी उस पुरुषमें करुणा बुद्धि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

करते हैं। यह बेचारा मोहके वश है, इसे ज्ञान प्रकाश नहीं मिला, बाह्य दृष्टि किए हुए है और दुःखी हो रहा है। यों सताये जानेपर भी उस पुरुषके प्रति योगीश्वर रंच मात्र भी द्वेष बुद्धि नहीं लाते हैं। चिन्तन करते हैं कि यह तो मेरा कमाया हुआ, पाप कर्मका फल है। यह बेचारा क्या करे, और फिर जिस शरीरपर ताड़न करनेके लिये यह उतारू हुआ है यह शरीर तो जलके बुदबुदकी तरह अस्थिर है। वही तो बाधा जायगा। मेरा धन तो सम्यक्त्व, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र है, यह तो नहीं बाधा जा सकता। ऐसा विचार करने वाले साधुसंतोंके जिनकी इतनी समता है कि कोई चंदनका लेप करता हो अथवा कोई चाकूसे शरीरको छील रहा हो तो भी उनके किसी के प्रतिराग अथवा किसीके प्रति द्वेष नहीं जगता है। उनके तो एक आत्महितकी ही धुनि लगी है। हितमार्ग है समता। वे साधुजन अपने उस समता मार्गसे नहीं डिगते ऐसे योगीश्वरोंके बध परीषह विजय होती है।

याचनापरीषह विजय—आत्महितके भावसे योगी अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग तपका आचरण करते हैं। नाना प्रकारके तप करते हैं। सर्दीमें खुले स्थानमें रहना, गर्मीमें पहाड़ोंपर बैठना, छायारहित वृक्षोंके नीचे रहना, कठिन तप कि हड्डी और नसाजाल ही जिनपर दिखता है, कठिन रोग भी हो गए हैं, प्राणोंका चाहे वियोग हो भी जाय उसका वे इतना ख्याल नहीं रखते, पर किसी भी परिस्थितिमें वे औषधि आहार आदिकी याचना नहीं करते। भिक्षाकालमें भी बिजलेके प्रकाशकी तरह निकल जाते हैं, किसीने भक्ति पूर्वक पड़गाहन किया और उन्हें यह जच गया कि इसका हृदय विशुद्ध है और आहार दान देनेका इसका बड़ा ऊँचा भाव है तो वहां आहार ले आते हैं पर वे किसी चीजकी याचना नहीं करते। ऐसे योगीश्वरोंके यह याचनापरीषह विजय है।

अलाभपरीषहविजय शरीर तो जब तक आत्माका केवलज्ञान नहीं हुआ तब तक आहारके बिना नहीं टिकता, सो संयमकी रक्षा करनेकी वे आवश्यकता समझते हैं, सो वायुकी तरह निसंग अनेक देशोंमें पर्यटन करनेके कारण जिनका शरीर खेद हो गया है, जिनके एक बारका ही जीवन पर्यन्तको भोजन लेनेका नियम है ऐसे साधुसंतजन भिक्षालाभके लिये नगरमें निकले और उन्हें भिक्षाकी प्राप्ति न हो तो उनके चित्तमें संक्लेश नहीं होता और जब आहार लाभसे भी बढ़कर उस अलाभमें गुण समझते हैं। यह तो मेरा परम तपश्चरण है। परीक्षाके समय यदि उत्तीर्णता होती है तब तो उसकी योग्यता मानी जाती है और परीक्षाके समय वह अनुत्तीर्ण हो समय चाहे अपनी कितनी ही विशुद्ध चर्या बतला रहा हो तो भी समझिये कि उसमें वह योग्यता नहीं है। जैसे कोई गृहस्थ घरके पास मंदिर है, कभी कभी दर्शन करने चला जाता है, तो जब कभी पहुंच भी जाता है, कभी अच्छी तो वह भी कोई खास श्रद्धा नहीं है। कोई आता है परीक्षाका समय, न हो आहार आदिकका लाभ, बहुत

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

दिनोंके उपवासे भी हैं ऐसी स्थितिमें अलाभमें परमतपश्चरण मानते हुए और आत्म स्वरूपके दर्शनमें सन्तुष्ट हुए योगीके अलाभ परीषह विजय होती है। जैसे किसी कृपण पुरुषको किसी चीजमें कुछ धनका लाभ होता दीख रहा हो तो उस प्रसङ्गमें वह अनेक विपदायें भी सह लेता है, लाभ मिलनेकी निकटता जान करवह संतुष्ट रहा करता है ऐसे ही आत्मीय विशुद्ध आनन्दके अनुरागी योगीश्वरोंके बाह्य परिस्थितिमें कुछ भी विपदा आये वह देख रहा है कि मेरा यह अनन्त आनन्द आने वाला है उस आनन्दके श्रोतभूत शुद्ध ज्ञायकस्वरूप अंतस्तत्त्वका अवलोकन कर रहा है, सन्तुष्ट है।

रोगपरीषहविजय— यह शरीर व्याधियोंका घर है। मनुष्य शरीरमें सभी अशुचि पदार्थ भरे पड़े हैं लेकिन इसमें विराजमान यह आत्मा गुणरत्नोंका भण्डार है उनके संचयके लिए उनकी वृद्धिके लिए, उनकी रक्षाके लिए वे कभी कभी आहार करते हैं, ज्ञानमात्रको अनुभवमें लेकर आनन्दानुभव करते रहनेकी धुन है, वे आहारमें उत्सुकता नहीं रखते किन्तु शरीरकी परिस्थिति है ऐसी कि कभी आहार लेना पड़ता, उस आहारको बहुत उपकार वाला इस कारण मानते हैं कि शरीर टिका रहेगा, मेरा ज्ञान भी मेरे अपने स्वरूपमें बसाये रहनेका अवकाश रहेगा तो यों कभी आहार करते हैं और आहारमें किसीने तत्त्वविरुद्ध भोजन दिया, शरीरमें विषमता हुई, बात आदिक विकार बढ़ गए और फिर नाना तरहके रोग उत्पन्न हो गए, लेकिन रोगके वशीभूत नहीं होते। उन योगीश्वरोंके ऐसी ऋद्धियाँ हैं कि जिनका थूक मूत्र, लार आदिक भी किसीके स्पर्श हो जाय तो उसके रोग दूर हो जाते, इतनी बड़ी ऋद्धियोंके अधिकारी हैं तो भी वे अपने शरीरसे निस्पृह हैं और अपने रोगोंके प्रतिकारकी भी अपेक्षा नहीं करते। ऐसे योगीश्वरोंके रोगपरीषह विजय होती है।

तृणस्पर्श परीषहविजय एवं मलपरीषहविजय - शरीरका आराम चाहने वाले लोग तो बड़े बड़े आरामके साधनोंमें रहते हैं, पर साधु संतजन ऐसे बनोंमें स्वतंत्र विहार करते हैं कि हवाके झोंके लगते, कंटक भी चुभते, मिट्टीके कण भी चुभते, अन्य अन्य तृण भी चुभते, पर मनमें वे रंच भी खेद नहीं लाते हैं, ऐसे तृणस्पर्शकी बाधावोंसे उपेक्षा रखने वाले योगीश्वरोंके तृणस्पर्श परीषह विजय होती है। उनकी इस आन्तरिक भावनासे कर्मोंका सम्वर चलता और बँधे हुए कर्म झड़ते हैं। मल परीषह विजय यह भी एक कठिन परीषह है। मनुष्य तो दिन भरमें कई बार तेल साबुन लगाकर नहाते हैं और सुनते हैं कि कोई लोग एक ही नहानमें तीन चार बार साबुन लगा कर नहाते हैं ताकि रंच भी मल न रह जाय, पर वे साधु संतजन चाहे पहिले बड़े राजा महाराज थे, बहुत बड़े आराममें थे पर वे अब जीवनभरके लिए स्नानका त्याग किए हुए हैं, उनके शरीरमें पसीना निकलनेसे उड़ती हुई धूल भी खूब चिपकी है, खाज भी उत्पन्न हो गई है लेकिन वे अपने शरीरपर आये हुए मलको दूर करनेका संकल्प भी नहीं रखते। वे तो अपने आत्मामें आये हुए मलोंका सम्यग्ज्ञान

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

चारित्ररूपी निर्मल जलसे ही प्रच्छालन करते हैं, ऐसे योगीश्वर देहके मलसे उत्पन्न हुई पीड़ाको भी समता से सहन करते हैं और वहाँ रंच मात्र भी खेद नहीं करते। ऐसे पुरुषोंके मलपरीषह विजय होती है।

सत्कारपुरस्कारपरीषहविजय सत्कार सम्मान न हो यह भी एक बड़ा क्लेशका प्रसङ्ग है, अथवा अपमान होना, अथवा सम्मान हो रहा है तो उसमें हर्ष मानना यह भी क्लेश है तथा सम्मान हो रहा है तो उसका भी खेद करना कि क्यों हो रहा है यह सम्मान ? इससे तो मेरा पतन है, किसी तरहका भी न हर्ष हो न विषाद हो यह कर्तव्य है। सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि सम्मान न पानेपर खेद करना, दूसरे नम्बरकी कमजोरी है सम्मान पानेपर हर्ष करना, तीसरे नम्बरकी कमजोरी है अपमान होनेपर खेद करना और चौथे नम्बरकी कमजोरी यह है कि सम्मान होनेपर उसका विकल्प रखना, खेद मानना कि क्यों हो रहा है यह सम्मान, यह तो मेरी बरबादीका कारण है। ये सब अपनी कमजोरीकी बातें हैं। अरे बाहरमें जो हो रहा है वह सब बाहरका है। जो तत्त्वज्ञानी पुरुष हैं वे तो अपने आत्माके सत्कारमें शान्त रहते हैं, इन बाहरी सत्कारोंमें रंच भी हर्ष अथवा विषाद नहीं करते। जैसे कोई कलाकार कोई चीज बना रहा है तो उसे सफलता मिलती जाती है वैसे ही वैसे वह सन्तुष्ट होता रहता है अथवा जैसे बालक लोग अपनी ड्राइङ्ग तैयार बनाकर फूल पत्तियोंसे खूब सजाकर जब ड्राइङ्ग तैयार कर लेते हैं तो वे बड़े सन्तुष्ट होते हैं। इसी प्रकार ये योगीश्वर अपने आत्मस्वरूपमें रमनेकी कला खेल रहे हैं, वे आत्मतत्त्वके चिन्तन, अनुभवनमें ही अपना सम्मान समझते हैं ऐसे योगीश्वर सत्कार परीषह के विजयी होते हैं।

प्रज्ञापरीषहविजय—जो पुरुष संसार भोगोंसे अत्यन्त विरक्त होते हैं ऐसे पुरुषोंके यह मौका आता है कि ज्ञानावरणका क्षयोपशम बढ़ता है, ज्ञानका विकास होता है, बहुत विद्यायें सिद्ध हो जाती हैं, वे शास्त्रज्ञानमें भी विशारद हो जाते हैं, इतनी निपुणता प्राप्त करने पर भी वे दूसरे जीवोंके प्रति यह ख्याल नहीं लाते कि मेरे सामने ये लोग तो कुछ भी नहीं हैं, वे तो सबमें समताका भाव रखते हैं। ऐसे योगीश्वर प्रज्ञापरीषह विजयके अधिकारी होते हैं। देखिये किसी पुरुषमें चाहे व्याकरणके ढङ्गसे, छंद शास्त्रके ढङ्गसे वह कला नहीं जगी जो एक साहित्यिक क्षेत्रके विज्ञानमें बुद्धिमानी समझी जाती है, किन्तु वह कला, सहजभाव स्वयं ही अपने आप पर दृष्टि आये और उस अलौकिक ज्ञानप्रकाश और आनन्दका अनुभव करले, यह तो सबमें सम्भव है, फिर छोटा कौन ? कदाचित् व्याकरणकी बातमें किसीका इस प्रकार विज्ञान नहीं बना, लेकिन इस विज्ञानका फल क्या है, इससे फायदा क्या है ? अरे समस्त फल यहीं गर्भित हैं कि आत्माको अपने विशुद्ध सहज ज्ञानानन्द स्वरूपकी सुधि आ जाय। यह बात तो कोई न भी पढ़ा हो उसके भी प्रकट हो सकती है। तब फिर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कौन छोटा रहा ? प्रज्ञाके जग जानेपर भी अन्यको अपनेसे तुच्छ समझना, यह तो सूर्यके आगे पटबीजनाकी तरह है आदि तुच्छ प्रकारके भावोंका आना यह इस प्रज्ञा का मद है। साधुसंतजन कितनी भी प्रज्ञा पायें, पर वे मद नहीं करते।

अज्ञान परीषहविजय – कोई साधुसंत अपने सम्यक् मार्गमें चल रहे हैं और ऐसे ही ज्ञानावरणका उदय है इतना ही क्षयोपशम है कि उनके छंद व्याकरण साहित्यिक कला आदिकका ज्ञान नहीं जग पाया, ऐसे साधुवोंके प्रति यदि कोई कहे कि ये तो अज्ञानी हैं, पशुके समान हैं, ये तो कुछ जानते ही नहीं निरक्षर भट्टाचार्य हैं, यों अनेक आक्षेपके वचनोंको सहते हुए भी अपनी आवश्यक क्रियावोंमें प्रमाद नहीं लाते और वे धर्मके लिये एक मूल तत्त्वको पकड़े हुए हैं, उस तत्त्वको नहीं छोड़ते और कदाचित् भी चित्तमें ऐसा नहीं लाते कि मुझको तपश्चरण करते हुए अनेक वर्ष हो गए, पर कोई विज्ञानका अतिशय ही नहीं उत्पन्न होता, अवधिज्ञान भी नहीं होता, इस तरह किसी भी तरहका अभिप्राय नहीं लाते, ऐसे योगीश्वरोंके अज्ञान परीषह विजय है।

अदर्शन परीषहविजय जिनका हृदय परम वैराग्य भावनासे शुद्ध हुआ है, जिनको दीक्षा हुए अनेक वर्ष गुजर गए हैं और ज्ञानका अतिशय नहीं उत्पन्न हुआ तो वे ऐसा संदेह नहीं लाते कि जो मैं कर रहा हूं क्या यह सही मार्ग नहीं है, मुझे ज्ञान क्यों नहीं पैदा होता है ? बड़े बड़े उपवास आदिक करते हैं पर कुछ भी अतिशय नहीं हुआ है। शास्त्रोंमें वर्णन आता है कि बहुत उत्कृष्ट तपश्चरण करने वालेको बड़े बड़े चमत्कार प्रातिहार्य विशेष उत्पन्न हो जाते हैं, क्या यह गलत है ? इस प्रकार किसी भी प्रकारका सन्देह न लाना और अपने आत्म विशुद्धिके प्रयोगमें व्रत परिपालन आदिकमें सावधान रहना ऐसा जिन योगीश्वरोंका दृढ़ श्रद्धान है और आत्महितमें जिनकी लगन है उनके अदर्शनपरीषहविजय होती है। यों परीषहविजयके परिणामसे योगियोंके ज्ञानावरण कर्मोंका विनाश होता है और ज्ञानकी निरावरणता बनती है तब यह ज्ञान अतीन्द्रिय होता है, समस्तरूपसे निर्मल स्पष्ट हो जाता है। यह है मुख्य प्रत्यक्षज्ञान। इस प्रकार ज्ञानके भेदोंमें मुख्य प्रत्यक्षके समर्थनमें उसकी निरावरणता सिद्ध ही है।

अनादिपरम्परा होनेपर भी कर्मोंके निःशेषरूपसे क्षयकी संभवता— परिपूर्ण विकसित ज्ञान निरावरण होता है। ज्ञानपर जो आवरण छाया था उसका विनाश संवर और निर्जरा तत्त्वके प्रसादसे होता है, निर्जरा और सम्बर ये सम्यग्दर्शन आदि गुणरूप हैं। सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रके जो परिणाम हों उन परिणामोंसे कर्मोंका सम्बर होता है और निर्जरा होती है। किसी आत्मामें सम्यग्दर्शन आदिक गुण परिपूर्ण रूपसे प्रकट हो जाते हैं तो वहाँ कर्मोंका अत्यन्त अभाव हो जाता है। यद्यपि ये कर्म अनादि संततिसे बराबर चले आ रहे हैं तो भी ऐसा नियम तो नहीं

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कि जो अनादि संततिसे चला आया हो उसका कभी वियोग नहीं हो सकता। सम्यग्ज्ञदर्शन आदिक परिणामके प्रतापसे ये कर्म अनादि बद्ध हैं परम्परासे तो भी मसूल नष्ट हो जाते हैं। जैसे पहिलेसे ही चला आया हुआ शीतल जल यदि किसी बर्तनमें भरकर अग्निपर रख दिया जाय तो उसका शीतलपना प्रतिपक्षी उष्ण अग्निके सम्बन्ध से नष्ट हो जाता है इसी प्रकार अनादिकालसे चले आये हुए ये पौद्गलिक कर्म प्रतिपक्षी सम्यग्ज्ञदर्शन आदिकके प्रभावसे समूल नष्ट हो जाते हैं। अथवा जिसकी संतान परम्परा अनादिसे चली आयी है ऐसे बीज और वृक्षमें देखिये बीज हो तो वृक्ष हो और वृक्ष हो तो बीज हो। इस तरह बीज और वृक्षकी परम्परा अनादिसे चली आयी है, तो भी यदि किसी बीजको जला दिया जाय तो उसकी परम्परा खतम हो जाती कि नहीं ? खतम हो जाती है, इसी प्रकार यह द्रव्यकर्म, भावकर्मकी परपरा अनादिसे चली आयी है और फिर भी सम्यग्ज्ञदर्शन आदिक परिणामसे इन रागादिक भावोंको नष्ट कर दिया जाय तो क्या यह कर्म बन्धनकी परम्परा नष्ट हो सकती ? होगी। तो इस प्रकार यहाँ यह सिद्ध किया गया कि कोई आत्मा ऐसा भी है कि जिसमें कर्मका बिल्कुल क्षय हो जाता है।

किसी आत्मामें रत्नत्रयकी परमप्रकर्षताकी सिद्धि—अब शङ्काकार यह कह रहा है कि हम तुम्हारी यह बात तो मान लेंगे कि सम्यग्दर्शन आदिक गुणोंकी प्रकर्षता होनेसे कर्मोंका क्षय होता है मगर उससे कर्मोंका क्षयमात्र ही सिद्ध होगा। पूर्णरूपसे समूल कर्मोंका नाश हो जाय यह सिद्ध नहीं हो सकता, क्योंकि सम्यग्दर्शन आदिक हों भी तो उनका परम प्रकर्ष सम्भव नहीं है ऐसा शङ्काकार कह रहा है। समाधानमें कह रहे कि यह बात असङ्गत है। किसी आत्मामें सम्यग्दर्शनकी पूर्ण प्रकर्षता सम्भव है। प्रकर्षता कहते हैं सीमाकी आखिरी हदको। तो किसी आत्मामें सम्यग्दर्शनादिकी प्रकर्षता सम्भव है। कैसे ? सो इसकी युक्ति सुनिये ! जिस जिस चीजमें तारतम्यरूपसे प्रकर्ष होता है उसका कहीं परम प्रकर्ष भी होता है। जैसे अमुक चीज लाल है, अमुक चीज ज्यादा लाल है, तो कोई चीज प्रकर्ष प्राप्त भी लाल होती है जिस चीजमें मूर्तमत्ता होगी उस उस वस्तुमें प्रकर्ष भी हुआ करता है। जैसे उष्ण स्पर्श, यह कम गरम है, यह उससे ज्यादह गरम है, यह उससे ज्यादह गरम है। तो गर्मीकी हम तारतमता देखते हैं तो किसी न किसी वस्तुमें यह गरमी परिपूर्ण भी रहती है। ऐसे ही रत्नत्रयमें तारतमता देखी ही जाती है। चौथे गुणस्थानमें रत्नत्रयकी छोटी अवस्था है फिर ऊपर ऊपरके गुणस्थानोंमें रत्नत्रय ऊँचा बढ़ जाता है। जब रत्नत्रयमें तारतमता देखी जा रही है तो यह सिद्ध है कि किसी आत्मामें यह रत्नत्रय परिपूर्ण भी होता है।

तरतमता होनेके कारण दुःखप्रकर्षकी सिद्धि—तरतमतासे रत्नत्रयकी प्रकर्षताकी सिद्धिके प्रसङ्गमें शङ्काकार कह रहा है कि यह बात तो यों समझमें नहीं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आती कि तारतमता तो दुःखोंमें भी देखी जाती है, किसीमें कम दुःख है किसीमें ज्यादह, किसीमें और ज्यादह। मगर किसीमें प्रकर्ष प्राप्त दुःख हो ऐसा तो कोई नजर नहीं आता ? उत्तर देते हैं कि किसी आत्माके दुखका प्रकर्ष भी होता है। सप्तम नरक का नारकी है – वह दुखकी परम हद है। जहाँपर अत्यन्त वेदना है, जहाँ शीतके कारण मेरु समान लोह भी छर छरकर बिखर जायगा, इतनी अधिक शीत है। जहाँ की भूमि बड़ी दुःखप्रद है। जैसे किसी कमरेमें बिजलीका करेण्ट फैल जाय तो उस जगहपर आदमीको जो दुःख हो सकता है उससे भी अधिक दुःख नरकोंमें पृथ्वीके कण-कणके छूनेमें पड़ा हुआ है। और जहाँ नारकी एक दूसरेको निरखते ही मार डालते हैं, मरते नहीं हैं, फिर भी उस शरीरके खण्ड–खण्ड हो जाते हैं और फिर पारे की तरह वे टुकड़े मिल जाते हैं और जीवित रहना पड़ता है। तो दुःखकी परम हद सप्तम नरकके नारकीमें पायी जाती है।

तरतमता होनेके कारण सुखप्रकर्षकी सिद्धि – अब शङ्काकार पूछता है कि सांसारिक सुखोंमें भी तारमता तो देखी जाती है—कोई कम सुखी, कोई ज्यादा सुखी, कोई उससे भी ज्यादह सुखी, किन्तु पूरी हद वाला तो यहाँ कोई नजर नहीं आता। उत्तर देते हैं कि साँसारिक सुखमें भी परम प्रकर्षता किसी आत्माको होती है और वह है सर्वार्थसिद्धिमें रहने वाला देव। उन देवोंके इन्द्रिय और मन सम्बन्धी सुख है, उनका वह सुख परम प्रकर्ष सुख है। देखिये ! सर्वार्थसिद्धिके देवोंके देवाङ्गनायें नहीं, सर्वार्थसिद्धिके देव अपने निवासस्थानको छोड़कर बाहर भ्रमण करते नहीं तिसपर भी बताया गया है कि सुखकी परम हद है सर्वार्थसिद्धिके देवोंमें। तो इससे सिद्ध है कि इन्द्रियके विषयमें जो पड़ना है वह सुखकी प्रकर्षता नहीं उत्पन्न करता उसमें तो वेदना लगी है तृष्णा लगी है। सर्वार्थसिद्धिके देवोंका सुख निरखिये ! वहाँ भोग विषयकी वेदनायें नहीं, काम वेदनासे रहित हैं तिसपर भी जो इन्द्रियविषय होता है और मनका वह सब विशिष्ट होता है वह परम प्रकर्षताका सुख है।

तरतमता होनेके कारण क्रोधप्रकर्षकी सिद्धि—शङ्काकार कहता है कि क्रोधमें भी तो तरतमता देखी जाती है। किसीके क्रोध कम है, किसीके ज्यादह है और किसीके उससे भी ज्यादह है मगर कोई ऐसा नहीं नजर आता कि जिसमें क्रोध की पूरी हद मिले। तो उत्तर देते हैं कि क्रोधका भी परम प्रकर्ष किसी आत्मामें सम्भव है – जैसे मिथ्यादृष्टि जीव। उनमें अनन्तानुबन्धी क्रोधकी परम प्रकर्षता है, परिपूर्ण क्रोध है। जैसे सिद्ध भगवानके अनन्त आनन्द हैं, सर्वार्थसिद्धिके देवोंमें परम प्रकृष्ट सुख है, सप्तम नरकमें परम प्रकर्ष दुःख है। इसी प्रकार मिथ्यादृष्टि जीवोंमें परम प्रकर्ष क्रोध, मान, माया, लोभ हैं। कोई ज्ञानी गृहस्थ भूपति किसी दुष्ट राजाका युद्ध में मुकाबला कर रहा हो तो उसके कितना क्रोध नजर आता है, उसपर शस्त्रोंका प्रहार भी करता है पर धर्मके प्रसङ्गमें वह धर्मध्यान करके शान्ति प्राप्त करता रहता

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है। और कोई पुरुष बाह्य धर्म भी खूब करता हो, बड़े नियम त्याग भी करता हो, पर यदि अन्दरकी गुत्थी नहीं सुलझी है, आत्माका स्वभाव ज्ञानमात्र है इसका उसने रंच भी दर्शन नहीं पाया, तो आप बतावें कि इन दोनों प्रकारके व्यक्तियोंमेंसे क्रोधकी प्रकर्षता किसकी अधिक कही जायगी ? क्रोधकी प्रकर्षता तो उसमें अधिक कही जायगी जिसे कुछ अपने आत्माकी सुध नहीं हुई, जो जानता ही नहीं कि मोक्षपथ क्या है ? उसमें क्रोधकी प्रकर्षता कहेंगे। उसका तो अपने परमात्मतत्त्वपर क्रोध है, कषाय है। अपने स्वरूपको वह समझ भी नहीं सकता और फिर वही अज्ञानी तीव्र कषायमें हो, हिंसादि प्रवृत्ति करे तो क्रोधका परम प्रकर्ष उसमें पाया ही जाता है, वह मिथ्या दृष्टियोंमें है। तो इससे यह सिद्ध है कि जिस चीजका तारतम्य हो, कमी बेसी हो उस चीजकी कहीं परमहदकी वृद्धि भी होती है।

तरतमता होनेके कारण क्षयोपशमिकज्ञान हानि प्रकर्षकी सिद्धि—अब शङ्काकार कहता है कि ज्ञानमें भी तो तरतमता देखी जाती है। किसीका ज्ञान कम है किसीका ज्यादह कम है किसीका उससे भी ज्यादह कम है। मगर किसीके ज्ञान बिल्कुल न हो ऐसा तो कोई समझमें आता नहीं। तो उत्तर देते हैं कि किसी जीवमें ज्ञानकी बिल्कुल हानि है ऐसा भी हो सकता है। यहां ज्ञानका अर्थ लगाना क्षायोपशमिक ज्ञान। क्योंकि क्षायोपशमिक ज्ञानमें ही हानिकी तरतमता पायी जाती है। क्षायिक ज्ञानमें तरमता नहीं है, क्षायिक ज्ञानमें, केवलज्ञानमें किसीके कम है किसीके ज्यादह है ऐसा तो है नहीं। केवलज्ञान तो समान होता है। तो क्षायोपशमिक ज्ञानमें जब हानि देखी जाती है, किसीका कम ज्ञान है किसीका और कम ज्ञान है, तो जब क्षायोपशमिक ज्ञानमें हानिकी तारतमता है तो केवली भगवानमें क्षायोपशमिक ज्ञान बिल्कुल नहीं है तो ज्ञानहानिकी तारमतामें भी यह युक्ति लगती है। इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि जिस बातमें तरतमता हुई वह कहीं परम प्रकर्षताको भी प्राप्त होती है। रत्नत्रयमें भी तरतमता नजर आ रही है। रत्नत्रय किसीके कम है, किसीके ज्यादह है किसीके और भी ज्यादह है यह प्रकर्षता देखी जा रही है, सो कोई आत्मा ऐसा है जिसके रत्नत्रयकी पूर्णता है। जब रत्नत्रयकी प्रकर्षता सिद्ध हो गयी तो उस ही आत्मामें ज्ञानावरणका निःशेषरूपसे अभाव है यह सिद्ध हो जाता है। यों ज्ञान निरावरण है और निरावरण होनेके कारण समस्त विश्वका जाननहार है, इसको ही मुख्यप्रत्यक्ष कहते हैं।

अनुमानप्रमाणसे अशेषकर्मप्रक्षयकी सिद्धि अब दूसरे प्रकारसे भी कर्मों का क्षय कहीं पूर्णतया सिद्ध हो जाता है। इसकी सिद्धि कर रहे हैं। एक युक्ति है कि जिसकी बढ़ोतरीमें जिसकी हानिकी अधिकता हो उसकी पूरी बढ़ोतरीमें दूसरेकी हानि पूरी हो जाती है। जैसे गरमी बढ़े तो ठंड कम हो जाती है। और जब गर्मी पूरी बढ़ जाती है तो ठंढा नाम निशान नहीं रहता, इसी तरह रत्नत्रयकी बढ़ोतरीमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कर्मोंका क्षय होता है तो जहाँ रत्नत्रय पूरा बढ़ चुका है उस आत्मामें कर्मोंका लेश भी नहीं रह सकता। इससे सिद्ध है कि कोई आत्मा ऐसा है कि जिसका आवरण रच भी नहीं है। सम्यग्ज्ञदर्शन क्या? पर द्रव्योंसे भिन्न निज ज्ञानस्वरूप आत्मतत्त्वमें रुचि होना, प्रतीति होना और एतावन्मात्र अपना अनुभव होना—मैं ज्ञानमात्र हूँ इस प्रकारका अनुभव होना, ऐसा ही उपयोग रखना और इस ही स्वरूपमें रम जाना यही है रत्नत्रय। ऐसा परिणाम जिसके हो उसको कोई चिंता सताये, उसमें किसी प्रकारकी वेदना जगे यह सम्भव नहीं है। जिसके यह रत्नत्रय परिपूर्ण प्रकट हो जाता है उसके कर्म समूल नष्ट हो जाते हैं। लोग तो भगवानसे प्रार्थना करते हैं कि मेरे अष्ट कर्म नष्ट हो जायें और उन अष्ट कर्मोंको जलानेके लिये मैं धूप खेता हूँ पर इन बिनतियोंसे ही काम न चलेगा, क्योंकि वहाँ सुनने वाला कौन है? भगवान तो सुनते नहीं, वे तो वीतराग हैं, लोग तो आने जाने वाले लोगोंको वह बिनती सुनाते हैं। पहिले तो बेसुरा, बेरासका धीरे धीरे कुछ गा रहे थे, जब देखा कि कुछ आदमी आ गए तो वे झट सावधान होकर बड़े सुन्दर रागमें जोर जोरसे गाने लगते हैं। तो वह बिनती तो उन आने वाले लोगोंको ही नाई। भगवान तो उन शब्दोंको सुनते नहीं हां निज परमात्मा सुनता है। किन्तु शब्दोंको नहीं, वे तो भावोंको सुनते हैं। तब अष्ट कर्मोंके नष्ट करनेकी तरकीब क्या है? भगवानके स्वरूपका स्मरण करके उनके ही समान अपने आपके स्वभावका परिचय पायें और उस स्वभावको निरख निरखकर सन्तुष्ट रहें, बस उसने समस्त वैभव पा लिया, अब कुछ उसे चाहिए नहीं। यों अपने आत्माकी उपासनामें तुष्ट हो जाये बस यही कर्मोंपर विजय करनेका उपाय है। यह बात किसीमें उत्कृष्ट रूपसे भी सम्भव है। तो यह समझना चाहिए कि कहीं कर्मोंका बिल्कुल भी क्षय हो जाता है।

अनुमानप्रमाणसे निःशेष आवरणहानिकी सिद्धि अब और भी युक्ति देखिये कर्मोंके आवरणमें हानियां जब देखी जा रही हैं तो किसी पुरुषमें यह आवरण हानि सम्पूर्णरूपसे भी हो जाती वे परिमाणकी तरह। जैसे परिमाणमें हानि देखी जाती है, यह एक किलो है, यह ६०० ग्राम है यह १०० ग्राम है आदि तो कहीं १ ग्राम भी है। इसी तरह किसी पुरुषमें प्रकृष्टरूपसे भी आवरण हानि हो सकती है। अथवा जैसे किसी ढेरपर कोई आवरण डाल दिया है तो आवरण हटावो हट गया, और भी हटावो तो और हट गया, तो कभी पूरा भी हटाया जा सकता है। इसी प्रकार ये कर्म जब क्षयको प्राप्त हो रहे हैं तो कहीं इनका बिल्कुल भी क्षय हो सकता है। और जहाँ आवरणकर्मका क्षय हो जाता है बस वहीं ज्ञानकी उत्कृष्टता सिद्ध हो जाती है जो जो प्रकाशात्मक चीजें हैं वे वे अपने आवरणको हानिके पूर्ण होनेपर उत्कृष्ट रूपसे प्रसिद्ध हो जाती हैं जैसे नेत्र ये अवलोकनका काम करते है, इन नेत्रोंपर कोई आवरण आ जाय और उस आवरणको पूरे रूपसे हटा दिया जाय तो यह पूरा निरख सकता है। नेत्रपर आवरण है पलकोंका। पलक बन्द कर लीजिए, जरा थोड़ा नजर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/
आयगा, कुछ और अधिक खोलो तो कुछ और अधिक नजर आयगा, पूरे खोल दो तो सब कुछ नजर आयगा। जैसे सूर्यपर बादलोंका आवरण हो, बादलोंका थोड़ा आवरण हटे तो कुछ और ज्यादह प्रकाश हुआ, कुछ और ज्यादह आवरण हटे तो कुछ और ज्यादह प्रकाश हुआ और जब पूरा आवरण हटे तो पूरा प्रकाश हो गया। इसी प्रकार ज्ञान भी एक प्रकाशात्मक चीज है, उसपर आवरण न रहे तो पूर्णज्ञान प्रकाश को प्राप्त होगा।

अपना स्वरूप, अपनी चर्या व अपनी निरख—आत्माको जाननेके लिये ज्ञानप्रकाशके रूपमेंसे स्वयंको निरखना चाहिए। मैं क्या हूं ? ⋯एक ज्ञान ज्योति सिर्फ जाननतत्त्व। ज्ञानप्रकाशमात्र मैं हूं इस द्वारसे आत्माको जाननेके लिये चलें तो आत्माका अस्तित्व ज्ञात होता है। आत्म प्रकाश होता है। तो चूंकि ज्ञान भी प्रकाशात्मक है। तो जैसे आवरणका विनाश होता है वैसे ही ज्ञान परिपूर्ण प्रकट हो जाता है। इस तरह यह सिद्ध हुआ कि जैसे आवरण कोई चीज है तो कहीं आवरण का भी अभाव पूर्णरूपसे होता। जहाँ आवरणका अभाव हुआ कि समस्त विश्वको, समस्त पदार्थोंको जानने वाला ज्ञान प्रकट हो जाता है। यह चर्चा किसकी की जारही है ? ⋯भगवानके ज्ञानकी, मुख्यप्रत्यक्षकी अपने स्वभावकी। यह सब चर्चा अपनी है। जैसे किस के परिजनोंकी चर्चा करें तो उस कुटुम्बका एक व्यक्ति समझता है कि देखो यह हमारी चर्चा कर रहा है, यद्यपि यह बात सही नहीं है, पर यह बिल्कुल सही बात है कि जो भगवानकी चर्चा है वह सब हमारी चर्चा है। भगवानके सम्बन्ध में आप जो जो कुछ भी गुणगान करें अनन्तज्ञानी हुए अनन्तदर्शी हुए, अनन्त आनन्दमय हुए, रागद्वेषसे रहित हुए—वे अपनी ही तो चर्चायें हैं। अपने स्वभावको देखो, क्या आत्मामें आत्माके स्वभावसे रागद्वेष लगे हुए हैं ? आत्मामें जो ज्ञान स्वभाव पड़ा है क्या उस स्वभावमें इतनी सीमा है कि मेरा ज्ञान इतनी दूर तक ही जाने इस से अधिक दूरकी बात न जाने ? जो भगवानकी बात है सो मेरी बात है। यह चर्चा अपनी ही है। परिपूर्णज्ञान विकासके ज्ञानमें समग्र सत् आते हैं तिसपर भी यह अपने आनन्दसे विचलित नहीं होता, अपने ही सुखमें मग्न रहता है।

ज्ञानपर कर्मप्रवृत्तियोंका आवरण—जब ज्ञानपर रंचमात्र भी आवरण नहीं रहता तो यह ज्ञान समस्त पदार्थोंका जाननहार हो जाता है, क्योंकि जिस ही पदार्थके विषयमें ज्ञानका आवरण पड़ा होगा उस ही पदार्थका ज्ञान नहीं हो सकता। ज्ञानपर आवरण करने वाली कर्म प्रवृत्तियां ५ प्रकारकी मानी गई हैं—मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनःपर्ययज्ञानावरण और केवलज्ञानावरण। ५ ज्ञान हैं तो ५ ज्ञानोंका आवरण करने वाले कर्म भी ५ प्रकारके हैं। अब उनमेंसे कोई भी एक ज्ञान ले लोजिए ! मतिज्ञान—मतिज्ञानसे कितनी तरहके ज्ञान हम किया करते हैं। चौकी जाना, बेंच जाना, पुरुष जाना, भींट जाना आदिक ! कितनी तरहके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

होते हैं उतने ही ज्ञानावरण होते हैं। जिसे जिस ज्ञानावरणका क्षयोपशम है उस ही पदार्थ का वह मतिज्ञानी ज्ञान किया करता है। तो जिस भी पदार्थका आवरण होगा उस पदार्थका ज्ञान नहीं हो सकता। यदि लेशमात्र भी आवरण हो तो ज्ञानमें यह सामर्थ्य नहीं प्रकट हो सकती है कि वह समस्त विश्वको जान सके। यहां अशेष ज्ञान की सिद्धि की है फिर भी प्रयोजनभूत आप इतना ही देखें कि इन समग्र ज्ञानोंमें राग का अंश भी नहीं है अतएव अनन्त आनन्द है। रागका अंश हो तो सर्वज्ञ नहीं हो सकता। जितना भी आनन्द प्रकट होता है वह वैराग्यके कारण प्रकट होता है। ज्ञानका काम तो मात्र जना देना है। यदि राग नहीं है तो विशुद्ध आनन्द मिलेगा और यदि राग है तो उस ज्ञानका अर्थ कल्पना बन जायगा। और, कल्पना से क्षोभ हुआ ही करता है। यों समस्त आवरणोंके दूर होनेसे पूर्ण ज्ञान विकसित होता है। यों मुख्यप्र यक्ष सिद्ध हुआ।

आगमसे ही अशेषज्ञता माननेके मन्तव्यमें प्रश्नोत्तर किसी आत्मामें ज्ञान समस्त पदार्थोंको जानने वाला होता है। इस प्रसङ्गमें शङ्काकार कह रहा है कि चलो हम भी मान लेते हैं कि कोई ज्ञान समस्त पदार्थोंको जाननहार है किन्तु वह ज्ञान आगमके द्वारा ही समस्त पदार्थोंको जानता है। कोई अतीन्द्रिय ज्ञान हो, निरावरण हो ऐसा ज्ञान कहीं भी नहीं होता। कोई ज्ञान यदि समस्त पदार्थोंको जानने वाला भी होगा तो आगमके द्वारा वह जानेगा, इस शङ्काका उत्तर देते हैं। कि यह बात भली नहीं है क्योंकि यहां तो विशद ज्ञानका प्रकरण है। जो स्पष्ट ज्ञान है वह आगम द्वारा नहीं होता। शास्त्रोंसे आगमसे जो जाना जायगा, जान तो लिया जायगा कुछ, पर वह अस्पष्ट जाननेमें रहेगा। जिस आगमसे स्वर्ग और नरकोंकी रचना भी जानी जाती है किन्तु जैसे आंखों देखी रचना स्पष्ट है कैसी गङ्गा नदी है, कैसी जमुना है कैसा पहाड़ है। जो कुछ आंखोंसे देख लिया गया जैसे वह स्पष्ट रहता है, इसी प्रकार स्पष्टज्ञान आगमसे नहीं हुआ करता आगमज्ञान परोक्ष ज्ञान है।

आगमज्ञानमें अशेषज्ञताकी असंभवता आगमसे सर्वज्ञता माननेके प्रसङ्ग में साथ ही यह भी बात है कि आगम भी समस्त पदार्थोंका ज्ञान करानेमें समर्थ नहीं, किन्तु आगमज्ञानकी अर्थ पर्यायमें प्रवृत्ति नहीं। अर्थ पर्याय किसे कहते हैं—वस्तुमें स्वभावतः जो षड्गुण हानिवृद्धि रूपसे क्षण-क्षण परिणमन होता है उसको। उस परिणमनको हम आगम द्वारा नहीं जान सकते, किन्तु उसका ज्ञान निर्मल निरावरण प्रत्यक्षके द्वारा हो जाता है। हम पदार्थमें अर्थ पर्यायको हेतुसे तो जान रहे हैं कि भिन्न पदार्थोंमें प्रतिक्षण परिणमन होता है क्योंकि अर्थ क्रिया देखी जाती है। अथवा पदार्थोंका सत्व है। प्रतिक्षण अर्थ परिणमन हुए बिना सत्व नहीं ठहर सकता। तो यों हम अनुमानसे जान लें। आगमसे जानल अन्दाजारूतमें, पर उस अर्थ पर्यायको

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हम स्पष्ट नहीं जान सकते। अर्थ परिणमन पदार्थ सत्त्व नहीं रख सकता, अवस्तु बन जाता। तो अर्थ पर्याय आगमसे नहीं जाना जा सकता। फिर समस्त पदार्थोंका भी ज्ञान आगमसे सम्भव नहीं है। जैसे कोई पुरुष किसी मकानके बारेमें बहुत कुछ बताये फिर भी अनेक बातें बतानेको छूट ही जाती हैं इसी प्रकार आगम द्वारा, कितने ही ज्ञान इकट्ठे किए जायें, पर समस्त पदार्थोंका ज्ञान सम्भव ही नहीं है, और प्रत्यक्ष ज्ञान होनेपर निरावरण ज्ञान प्रकट होनेपर सब कुछ प्रत्यक्ष एक ही साथ एक झलक में स्पष्ट जान लिया जाता है।

इन्द्रियजन्य ज्ञानमें अशेषज्ञताकी असंभवता - चाहे आगमके द्वारा जाननेकी कल्पना करें चाहे इन्द्रियके द्वारा जाननेकी कल्पना करें, उस ज्ञानको इन्द्रिय-जन्य मानने पर भी उस ज्ञानकी अतीन्द्रिय अर्थमें प्रवृत्ति नहीं हो सकती। इन्द्रियके द्वारा जो ज्ञान उत्पन्न हो वह इन्द्रियसे अगोचर सूक्ष्म परमाणु आदिक पदार्थोंको जान ले यह सम्भव नहीं, क्योंकि इन्द्रिय केवल रूप, रस, गंध, स्पर्श पुद्गलको ही जानता है, सो भी वह सामने हो, किसीका व्यवधान न पड़ रहा हो तिसपर भी अनेक परमाणुका स्कंध हो ऐसे स्थूल विषयका इन्द्रियज्ञान जानता है इन्द्रियज ज्ञानरूप आदिक रहित, व्यवहित और सूक्ष्म पदार्थोंको जाननेमें क्या समर्थ हो सकता है। इससे मानना चाहिए कि जब कर्मोंका प्रक्षय हो जाता है तो ज्ञान ऐसा निरावरण प्रकट होता है कि वह समस्त पदार्थोंका जाननहार बन जाता है यही केवल ज्ञान कहलाता है, ऐसे ही प्रभुका ज्ञान होता है। इस स्थलमें जो कुछ भी वाद विवाद चल रहा है वह ज्ञान की अशेषज्ञता निरावरणता और अतीन्द्रिय इन तीन बातोंपर चल रहा है।

योगज धर्मानुग्रहसे भी इन्द्रियज्ञानमें अशेषज्ञताकी असंभवता शङ्काकार पुनः कहता है कि बड़े बड़े योगीश्वरोंकी जो समाधियां होती हैं योगजधर्म होता है उन योग धर्मोंसे योगसे उत्पन्न हुए प्रभावसे सहित इन्द्रियां समस्त पदार्थोंको जान सकती हैं। फिर उस ज्ञानमें अशेषज्ञता आ गयी, क्या रुकावट हो सकती है। अतीन्द्रिय माननेकी फिर कोई जरूरत ही नहीं रहती। अतीन्द्रिय कोई ज्ञान होता नहीं ये इन्द्रियां ही जब योग समाधिके बलसे उत्पन्न होकर प्रभाववाली होती हैं तो ये ही इन्द्रियां आकाश आदिक समस्त पदार्थोंको जाननेमें समर्थ हो जाती हैं। उत्तरमें कहते हैं कि यह कहना भी बिना सोच विचारका है क्योंकि इन्द्रियोंमें जो योगज धर्मका प्रभाव बनता है कि योगके कारण इन्द्रियमें प्रभाव बनता है कि वह उस योग धर्मसे इन्द्रियमें अनुग्रह क्या हुआ? क्या यह अनुग्रह हुआ कि इन्द्रियां अपने विषयमें लग रही हैं उसमें कुछ अतिशय पैदा कर दिया अथवा इन्द्रियके जाननेमें कुछ सहयोग दें। यदि कहो कि इन्द्रियां जो जान रही थीं अब योगियोंके योगके कारण उसमें अतिशय और पैदा हो गया। खैर अतिशय भी मान लो, फिर भी जिस इन्द्रिय के द्वारा जो बात जानी जायगी उसमें ही तथा उनका अतिशय होगा जितनी सीमा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हैं वहां तक ही तो अतिशय होगा। यह तो न होगा कि वे इन्द्रियाँ अमूर्त पदार्थ को जानने लगें। चक्षु इन्द्रिय रूपको जानती है तो योगज धर्मसे उसमें अतिशय आता है। तो यह आ जायगा कि चक्षु इन्द्रिय जरा और दूरका जानने लगें, पर यह तो सम्भव नहीं है कि चक्षु परमाणुको भी जानने लगें? जो उसका विषय नहीं है उसे भी समझने लगे। यदि ऐसा अतिशय मानोगे ही तो आंख इन्द्रिय रूप रस, गंध, स्पर्श आदिक सब विषयोंको जान जाय ऐसा अतिशय बन जायगा, फिर एक इन्द्रियसे अधिक इन्द्रियां माननेकी भी क्या जरूरत? और, एक ही इन्द्रिय ज्ञानसे काम निकाल लिया जायगा। यदि कहो कि इन्द्रिय अपने विषयोंमें लग रही थी, उनमें सहयोग दिया तो ठीक है। तब भी यह बात है कि वह अपने विषयको ही जानेगी। तो इन्द्रियमें सामर्थ्य नहीं है कि समस्त पदार्थोंको जान सके। चाहे कितना ही आत्माका अतिशय प्रकट हुआ हो, चाहे कितने ही द्रव्योंने प्रभावित किया हो, लेकिन इन्द्रियां अतीन्द्रिय अमूर्त पदार्थोंके जाननेमें समर्थ नहीं हो सकतीं। यह ज्ञान जो निरावरण हो गया उसमें ही यह सामर्थ्य है कि अपने ही स्वभावसे समस्त सत् पदार्थोंको जान सकता है।

भावनाप्रकर्षज योगिविज्ञानमें अशेषज्ञताका पक्ष—अब शङ्काकार यह शङ्का कर रहा है कि योगियोंका जो ज्ञान होता है वह भावनाका जो अंतिमरूप है, प्रकर्ष है उस पर्यन्त भावना पहुंचनेसे उत्पन्न होती है। तब योगियोंके ज्ञानमें अशेषज्ञता सम्भव है वह योग विज्ञान समस्त पदार्थोंको जान लेगा तब अतीन्द्रिय निरावरण ज्ञान माननेकी कोई जरूरत न रहेगी। देखिये—भावना दो प्रकारकी होती हैं एक श्रुतमयी और एक चिन्तामयी। अर्थात् दूसरेके मुखसे वचन सुनकर जो उनका भाव समझा, अर्थ जाना, एक साधारण रूपसे वह तो है श्रुतमयी भावना। और उसके द्वारा जो पदार्थके स्वरूपका चिन्तन किया वह है चिन्तामयी भावना। जिसे सीधे शब्दोंमें समझा जाय तो जैन सिद्धान्तके शब्दोंसे समझ लीजिए—द्रव्य श्रुत और भाव श्रुत। जो दूसरोंके वाक्य सुननेमें आ रहे हैं उनसे उत्पन्न हुआ जो ज्ञान है भावना है वह तो है श्रुतमयी भावना। जब श्रुतमयी भावना निर्मल होती है अर्थात् जो शब्द सुने हैं उन शब्दोंका ज्ञान विशिष्ट रूपसे हो जाता है तो फिर चिन्तामयी भावनाका प्रारम्भ होता है अर्थात् भावज्ञान बनता है, फिर उस भावज्ञानकी भावनाको बहुत किया जानेपर वह ज्ञान समस्त पदार्थोंका जाननहार हो जाता है। फिर आवरण वगैरह मानना, फिर उसका विनाश सिद्ध करना ये सब श्रम व्यर्थ हैं। कहां आवरण और कहां उसका विनाश है? यह तो केवल श्रुतमयी और चिन्तामयी भावनाका प्रसाद है। अभी शास्त्र पढ़ा, उनका अर्थ समझा और उनका मनन किया फिर तत्त्वके अन्तः स्वरूपमें पहुँचे, उसकी भावना बना ली। तो अपने आप ऐसा महान विज्ञान प्रकट हो जाता है कि वह समस्त पदार्थोंका जाननहार बन गया। अब आवरण माननेकी क्या जरूरत है? भावना न करते थे तो ज्ञान न जान पाता। अब भावना भली प्रकार बन गयी तो ज्ञानमें सब प्रकारके जाननेका सामर्थ्य आ गया।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/
ज्ञानावरण कर्म मानना फिर उसका क्षय मानना इसकी क्या जरूरत है ?

भावनाप्रकर्षज योगिविज्ञानमें भी अशेषज्ञताका अभाव—अब भावना प्रकर्षज्ञ ज्ञानकी समस्याका समाधान करते हैं कि यह बात तुम्हारी सारहीन है। यहां समस्या रखी है क्षणिकवादियोंने, तो यह भावना दोनोंके दोनों क्षणिक हैं और नैरात्म्य की भावना है। क्षणिकवादके सिद्धान्तमें क्षण क्षणमें नवीन नवीन पदार्थोंका उत्पन्न होना माना गया है। पदार्थ उत्पन्न होता है और उत्पन्न होते ही नष्ट हो जाता है, दूसरे क्षणमें दूसरा पदार्थ उत्पन्न होता है। इस प्रकार पदार्थ क्षणिक माने गए हैं और नैरात्म्य माना गया है अर्थात् आत्मा कुछ भी नहीं है। सदा रहने वाला आगे पीछे जिसकी पर्याय परम्परा चले ऐसा आत्मा नहीं माना गया है जो प्रत्येक समय अपनी यूनिटमें इकहरे पनमें जो ज्ञान बर्त रहा है बस वही पदार्थ है। कोई आत्मा हो जिसमें ज्ञान बनता हो और सदाकाल रहता हो, जिसमें ज्ञान नये नये उत्पन्न होते हों ऐसा आत्मतत्त्व क्षणिकवादियोंकी चीज नहीं है। किन्तु क्षण क्षणमें जो ज्ञान नवीन नवीन बनता रहता है बस वही मात्र तत्त्व है। कोई ज्ञानक्षणोंका आधारभूत ध्रुव आत्म हो ऐसी बात नहीं है। तो जिसके सिद्धान्तमें आत्मतत्त्व नहीं है, क्षणिकवाद है उसके यहां न तो श्रुतभावना सिद्ध होती है और न यह चिन्तामयी भावना सिद्ध होती है। कुछ शब्द सुननेमें आयें तो उनका भाव समझनेमें कुछ समय व्यतीत होता है। किन्तु यह क्षणिक वाद है प्रतिक्षण नया पदार्थ उत्पन्न होता है। जहां कहने सुननेको आत्मा है, जहां आत्मा माना ही नहीं गया वहां क्या भावना, किसकी भावना, किसके लिए भावना। वहां सारी भावना मिथ्यारूप है। दूसरेकी बात सुनकर वे शब्द खुद भी बोलना चाहें केवल इस अभिप्रायसे यह शास्त्र रचना हुई है। मिथ्याज्ञान कहीं परमार्थविषयक योगिज्ञानको उत्पन्न नहीं कर सकता अगर मिथ्याज्ञान पदार्थको जानने लगे तो फिर दुनियाकी कोई व्यवस्था ही न रहेगी। तो जैसे क्षणिकपना सिद्ध नहीं होता है इसी प्रकार वस्तुमें नैराश्यपना होना, वस्तुका दूसरे समय न ठहरना, वस्तुमें स्वयं कोई गुण भी नहीं है वस्तु कोई पर्यायोंसे सहित कुछ हो ऐसा जहाँ माना ही नहीं गया है वहां पदार्थ क्या चीज है, सत्त्व क्या चीज है। न तो नैरात्म उनका सिद्ध होता और न उनकी भावना सिद्ध होती है।

ज्ञानके आवरणके प्रक्षयसे ज्ञानविकास—ज्ञानका प्रसङ्ग सबके साथ है, सब जान सकते हैं। सीधी बात मानना चाहिए कि प्रत्येक आत्मामें ज्ञान ऐसा स्वभाव रखता है कि वह समस्त विश्वके पदार्थोंको जान ले, लेकिन ज्ञानपर आवरण पड़ा हुआ है यह आवरण निमित्त दृष्टिसे तो पौद्गलिक कर्मका है और उपादानगत दृष्टिसे विषय कषायके परिणामोंका है। जब तक जीवमें रागद्वेष मोह विषय कषाय बसते हैं तब तक इसका ज्ञान सही विकसित नहीं हो सकता। जिसकी क्रोध करनेकी प्रकृति बनी है ऐसे क्रोधी पुरुषका ज्ञान आपको सही ढङ्गमें न मिलेगा। जिसके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

विषय कषायमें तीव्रता है, उसका ज्ञान सही ढङ्गमें नहीं रह सकता है। तो साक्षात् तो कितने ही आवरण हैं जो इस ज्ञानको विकसित नहीं होने देते। पर वे कषायें भी किस तरह हैं, किस प्रकार उनकी उत्पत्ति हुई है। क्या आत्मामें आत्माके ही कारण स्वभावसे कषायें जग जाती हैं? नहीं पौद्गलिक कर्मोंका निमित्त पाकर ये कषायें जगती हैं। तो मानना चाहिए कि ज्ञानमें समस्त पदार्थोंके जाननेका स्वभाव है। आवरण सहित होनेसे यह ज्ञान जान नहीं पाता। जब निरावरण होता है तब यह अतीन्द्रिय होकर समस्त पदार्थोंको स्पष्ट जानने लगता है।

भावनाप्रकर्षआदियोंके प्रतिबन्धक कर्मके माननेकी अनिवार्यता—इस प्रसङ्गमें जो भावनाके द्वारा ज्ञानसे सर्वज्ञ बना है उनसे पूछा जा रहा है कि यह तो बतलावो कि तुम्हारी श्रुतमयी व चिन्तामयी भावना अर्थात् शब्दोंको मनका ज्ञान हुआ उसके उपयोग और उसके माध्यमसे आश्रयसे फिर पदार्थोंके अन्त: स्वरूपको जाननेकी भावना की, इन दोनों भावनाओंको करने वाले लोग तो अनेक हैं, सबको क्यों नहीं वह योग विज्ञान हो जाता जैसा कि सुगतको माना है। जब सभी लोग भावनामें लगे हैं तो सभीको क्यों नहीं अशेषज्ञता होती? कोई कारण तो होगा जैसे यहाँ भी तो भगवान तो सर्वज्ञ हैं और भगवानके मार्गपर योगी भी चल रहे हैं, गृहस्थ भी चल रहे हैं, भावना सब बना रहे हैं। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्रकी सब भावना बनाये हैं। धर्मपालनका सब लोग यत्न करते हैं, पर सबको सर्वज्ञता क्यों नहीं हो जाती? इस उलहनेमें उनकी भावना वालेके उलहनामें फिर भी अन्तर है। वहां केवल एक श्रुतभावना है। कोई कितना ही तपश्चरण करलें, उसके थोड़ा ज्ञान ज्यादह तो मान लिया गया है, पर अशेषज्ञता नहीं मानी है। किन्तु यदि यह बन सके किसी योगसे रत्नमयका मार्ग तो वह सर्वज्ञ बन सकता है। लेकिन दृष्टान्तके लिए जितनी बात कही गई है उतनेमें यह घटा लीजिए कि जो अरहंत हुये, सर्वज्ञ हुए, उनके ही मार्गपर ये सब चल रहे हैं। ये सब क्यों नहीं ध्यानस्थ हो जाते क्यों नहीं सर्वज्ञ हो गए, तो उसका कारण स्पष्ट है। अभी इस आत्मामें विभावोंका और उनके निमित्तभूत पौद्गलिक कर्मोंका आवरण इतना चढ़ा हुआ है कि इस आत्माको सर्वज्ञता नहीं मिली। यहां तो यह उत्तर है पर आप बतलावो कि भावना सभी मनुष्य करते हैं, पर सभीको क्यों नहीं सर्वज्ञता होती? यदि यह कहो कि उस प्रकारकी भावना नहीं बन सकी सबके जैसीकी सुगतकी बनी तो इसमें भी कारण बतलावो। जब तत्त्व सबने जान लिया और भावनामें जिसका मन लग रहा, मन भी चाह रहा कि मैं भावनामें कुशल हो जाऊं फिर भी सबकी भावना समान क्यों नहीं बन जाती? सुगतकी तरह क्यों नहीं बन जाती? यदि यह कहो कि प्रतिबन्धक कर्म उनके लगा हुआ है इसलिए वे भावनामें सुगतकी तरह नहीं बन पाते हैं तो बस हो गया उत्तर। खैर यहां मान लिया इसका प्रतिबन्धक कर्म, यही गनीमत। जरा पहले से ही मान लेते तो कर्मोंका आवरण होनेके कारण सबकी भावना सुगतकी तरह नहीं

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बन पायी और न वे सर्वज्ञ हो पाये, यही बात तो इस प्रसङ्गमें कही जा रही है कि ज्ञानपर आवरण पड़ा है उसके निमित्तसे यह ज्ञान समस्त विश्वको जाननेमें समर्थ नहीं हो रहा है। जब आवरणका क्षय हो जायगा, कर्म दूर हो जायेंगे तब अशेषज्ञता उत्पन्न हो जाती है। इसी प्रकार यहां तक यह सिद्ध किया गया कि पूर्णरूपसे आवरणका विनाश होनेपर जो ज्ञान उत्पन्न होता है जो कि अतीन्द्रिय है, समस्त पदार्थोंका जाननहार है उसे मुख्य प्रत्यक्ष कहते हैं।

ग्रन्थमें प्रमाणका विवेचन – इस ग्रन्थमें जितना भी प्रतिपादन है वह इसी ग्रन्थके प्रथम सूत्रके विषयमें ही स्पष्ट बोध करानेके लिये है। प्रमाणका लक्षण माना है – जो स्व और अपूर्व अर्थका निश्चय कराये वह ज्ञान प्रमाण है। देखिये – पदार्थका निर्णय प्रमाणसे ही होता है। और पदार्थके निर्णयमें कमी होगी। संशयादिक होगा तो प्रमाणाभाससे होगा। इस ग्रन्थमें उस निर्णय करने वाली कुञ्जीका ही निर्णय दिया गया है कि कैसा प्रमाण हुआ करता है जिससे पदार्थका निर्णय किया जाय वह है प्रमाणभूत जो निजको और परको निर्णयमें रखे। उस ज्ञानके भेदमें इस समय मुख्य प्रत्यक्ष ज्ञानका वर्णन चल रहा है। जहां सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्रकी प्रकर्षताके कारण आवरणका क्षय हो जाता है वहां अतीन्द्रिय निर्मल स्पष्ट रूपसे जानने वाला ज्ञान उत्पन्न होता है, उस ज्ञानका नाम है मुख्य प्रत्यक्ष। इस मुख्य प्रत्यक्ष में यद्यपि तीन ज्ञान कहे हैं—अवधिज्ञान, मनः पर्ययज्ञान और केवलज्ञान। फिर भी वर्णनमें जो उत्कृष्ट हो वही मुख्यतासे आया करता है। तो केवलज्ञानके सम्बन्धमें जो कि समस्त तीन लोक तीन कालके पदार्थोंको जानता है, उसका वर्णन चल रहा है कि कोई ज्ञानी समस्त विश्वका जाननहार भी होता है। कुछ सिद्धान्त ऐसे हैं कि निरावरण और परिपूर्ण स्पष्ट ज्ञान ही नहीं मानते और उनके न माननेका सीधा कारण यह है कि उन्होंने सारी नाप तौल अपने ज्ञानसे की। हमको जिस तरह सुख मिल रहा है उसी तरह और सब लोगोंको भी सुख मिलता होगा, इस प्रकार अपने ही ज्ञानकी खूंटीसे तुलना करके निर्णयका सिद्धान्त रखने वाले लोग अशेषज्ञानको नहीं मानते कि ऐसा भी कोई ज्ञान होता है आत्मामें, जो सबका जाननहार है, किन्तु जैन दर्शनमें ज्ञानके स्वभावको ही बताया है कि ज्ञानमें सबके जाननेका स्वभाव है वही निरावरण होनेपर ऐसा विकसित होता है कि समस्त जान लेता है। अब इसके बाद बहुत लम्बे प्रसङ्गमें सर्वज्ञ नहीं है यह पूर्व पक्ष होगा और सर्वज्ञ है यह उत्तर पक्ष होगा। यह विषय रोचक भी है और अपने कामका भी है। लेकिन पहिलेसे ही कठिन जानकर मनको ढीला करदे कोई तो कुछ नहीं पल्ले पड़ता और यह समझकर कि ज्ञान क्या नहीं समझ सकता, उपयोग लगाये तो उत्तरोत्तर आत्माकी महिमा ज्ञात होगी कि आत्माका कैसा वैभव है और कैसा प्रभाव है, यदि उपयोग लगाकर सुनें तो सब विदित हो जायगा।

सर्वज्ञके अभावकी आशंका एक सिद्धान्त केवल क्रिया काण्डोंमें विश्वास

Report any errors at vikasnd@gmail.com

रखता है - यज्ञ होम आदिकसे ही स्वर्गकी प्राप्ति होती है स्वर्गसे बढ़कर और कोई जीवकी अवस्था नहीं है। सर्वज्ञ कोई नहीं होता। वेद आगमके द्वारा ही अशेष तत्त्व जाने जाते हैं, पर कोई सर्वज्ञ ऐसा नहीं है कि जो सबको जानता हो और कर्मोंके आवरणसे दूर हो। उस सिद्धान्तके अनुयायी यह शङ्का कर रहे हैं कि समस्त पदार्थोंको जान जाय ऐसा कोई ज्ञानवान पुरुष होना असम्भव ही है। फिर ऐसे ज्ञानकी कल्पना करना कि केवलज्ञान होता यह कपोल कल्पित है। क्योंकि अनुमान प्रमाणसे भी यह सिद्ध होता है कि दुनियामें कोई पुरुष सर्वज्ञ नहीं है, क्योंकि सर्वज्ञकी सिद्धि करा देने वाला कोई प्रमाण नहीं है, न प्रत्यक्षसे सर्वज्ञको सिद्धि होती है, अनुमानसे, न आगमसे न अर्थापत्तिसे, न अनुमानसे, और अभाव प्रमाण तो सद्भावको सिद्ध ही क्या करेगा? यों किसी भी प्रमाणसे सर्वज्ञकी सिद्धि नहीं है। यह सब शङ्काकार कह रहा है और यह बहुत लम्बे समय तक शङ्का चलेगी।

प्रत्यक्षसे सर्वज्ञकी असिद्धि - अच्छा तुम्हीं बताओ कि समस्त पदार्थोंको जानने वाला यदि कोई सर्वज्ञ है तो वह प्रत्यक्षसे जाना जाता है अथवा अनुमान आदिक प्रमाणसे। प्रत्यक्ष तो केवल सामनेकी चीज, पास वाली चीज, रूप रस, गंध स्पर्श विषय इनको ही जानता है, इसके तो दूसरे पुरुषमें रहने वाला जो ज्ञान है उस तकको भी जाननेमें सामर्थ्य नहीं है, फिर प्रत्यक्ष सर्वज्ञको क्या जानेगा। प्रत्यक्ष ज्ञान तो जो सामने हैं, स्थूल पदार्थ हैं उनको ही जाननेमें समर्थ है, अतीतकाल, भविष्य कालके सूक्ष्म परमाणु आदिक समस्त पदार्थोंको साक्षात् करले प्रत्यक्ष, यह तो सम्भव ही नहीं है, फिर कैसे प्रत्यक्षसे सिद्ध होगा कि कोई लोकमें सर्वज्ञ है। शङ्काकार जैन आदिकके प्रति यह कह रहा है कि यदि आप लोग यह कहें कि अतीत भविष्यके समस्त पदार्थोंको यदि कोई ज्ञान ग्रहण नहीं कर रहा है तो न करे तो भी प्रत्यक्षके द्वारा उन समस्त पदार्थोंको साक्षात्कार करने वाले निज ज्ञानका तो ग्रहण है। उत्तर में शङ्काकार कहता है कि यह बात अयुक्त है, जब ग्राह्यका ग्रहण नहीं तो ग्राहकका ग्रहण कैसे? ज्ञानका तो ज्ञान हो गया और ज्ञानमें जो पदार्थ आया उसका ग्रहण नहीं होता तो ऐसा भी कोई ज्ञान है क्या? जैसे हमने चौकीको जाना तो चौकी जाननेमें आयी तब हमारा ज्ञान ग्रहणमें आया। चौकीको तो नहीं जाना, पर चौकीके जानने वाले ज्ञानको हमने जान लिया यह बात अयुक्त है। प्रत्यक्षसे तो सर्वज्ञकी सिद्धि नहीं है।

अनुमान प्रमाणसे सर्वज्ञकी असिद्धि - अनुमानसे भी सर्वज्ञ प्रतीत नहीं होता। वह कैसे? अनुमान ज्ञान बनता कब है जब कि साधन और साध्यका परस्पर सम्बन्ध जान लिया गया हो। जैसे इस पर्वतमें अग्नि है—धुवां होनेसे, यह अनुमान बनाया तो यह अनुमान कब प्रमाण होगा। कैसे सही बनेगा? जब यह ज्ञात हो कि धुवां और अग्निका ऐसा सम्बन्ध रहा करता है। जहां जहां धुवां होता है वहां वहां

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अग्नि होती है। अग्निके बिना धुवां हो ही नहीं सकता है इस कारणसे धुवां देखकर अग्निका ज्ञान कर लेना यह अनुमान सही है। तो इस तरह सर्वज्ञकी सिद्धि करनेमें तुम जो भी अनुमान बनावोगे और इसमें तुम जो भी हेतु दोगे उस हेतुका सर्वज्ञ साध्यके साथ सम्बन्ध किसीने जाना ही नहीं। जिस पुरुषने अग्नि भी देखा हो, धुवां भी देखा हो वही तो उनका सम्बन्ध बता सकता है सर्वज्ञकी सिद्धिके लिए तुम जो हेतु दोगे उसका सर्वज्ञके साथ सम्बन्ध विदित हो ही नहीं सकता। जब साध्य और साधन ये दो बातें देखी गयी हों तब तो वहाँ सम्बन्ध बनाया जा सकता है।

सर्वज्ञत्व साध्यका हेतुके साथ सम्बन्धका प्रत्यक्षसे अनिर्णय सर्वज्ञकी सत्ता तुम्हारा साध्य है और हेतु तुम जो भी दोगे उसका सर्वज्ञके अस्तित्व के साथ सम्बन्ध तुमने किस तरह जाना प्रमाणसे या अनुमानसे। प्रत्यक्षसे तो ज्ञात हो ही नहीं सकता, क्योंकि सर्वज्ञका प्रत्यक्ष है नहीं। कहीं सर्वज्ञका प्रत्यक्ष हो जाय तब तो किसी हेतुके द्वारा सर्वज्ञकी सत्ता सिद्ध कर सकते हो। जैसे कहीं अग्नि देखी हो तब तो धूम का अग्निके साथ सम्बन्ध बताया जा सकता है। तो सर्वज्ञ तो प्रत्यक्षसे कहीं देखा ही नहीं है फिर उसका सम्बन्ध कैसे बन सकेगा। और जब तक सम्बन्ध ज्ञात न हो साधन और साध्यका तब तक अनुमान नहीं बन सकता। जितने भी अनुमान होते हैं वे सब साधन साध्यके सम्बन्धको जानने के बाद ही होते हैं। जैसे नदीमें बाढ़ आई हुई है और जिस जगह दिख रही है बाढ़ उस जगह आस पास वर्षा भी नहीं है तो वह अनुमान करता है कि ऊपर वर्षा हुई है, क्योंकि ऊपर अगर वर्षा न हुई होती तो यह बाढ़ न आती। तो ज्ञानसे जाना और अनेक बार देखा भी कि वर्षात होती है तो बाढ़ आया करती है। तो वर्षाका होना और बाढ़का आना ये दोनों हमने जब आंखों देखा है तब हम उसका सम्बन्ध बना सकते हैं। तो सर्वज्ञ भी सिद्धिमें जो भी तुम हेतु दो उसका भी और सर्वज्ञका भी साक्षात्कार हो जाय तब तो उसका सम्बन्ध माना जा सकता है। जब तक सम्बन्ध विदित नहीं होता तब तक अनुमान भी नहीं बन सकता। यदि बिना सम्बन्धके अनुमान बना लिया जाय तो अनेक अव्यवस्थायें हो जायेंगी। जो चाहे कहलें। जैसे कुछ लिखते लिखते गलत लिख गया तो कहने लगें कि यह गलती इसलिए हुई कि इस दालानमें तीन खम्भे हैं, यों अटपट जो चाहे बोल दिया जाय। तब सम्बन्ध माने बिना अनुमान प्रमाण बन गया तो जो चाहे अटपट सिद्ध किया जा सकता है। तो अनुमान से भी सिद्धि सर्वज्ञकी नहीं हुई, क्योंकि साध्य और साधनका सम्बन्ध प्रत्यक्षसे विदित नहीं होता।

सर्वज्ञत्व साध्यका हेतुके साथ सम्बन्धका अनुमानसे अनिर्णय—यदि कहो कि सर्वज्ञको सिद्ध करनेके लिए जो हेतु दिया जायगा, उस हेतुका सर्वज्ञके साथ सम्बन्ध अनुमानसे मान लेंगे तो यह तो बतलावो कि क्या इसी अनुमानसे साध्यसाधन

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

का सम्बन्ध भी मान लोगे या अन्य अनुमानसे ? यदि इसी अनुमानसे मानोगे तो इतरेतराश्रय दोष है। सर्वज्ञ है क्योंकि जो चाहे कह लो। तो इस ही हेतुसे सर्वज्ञ सिद्ध करोगे और इस ही अनुमानसे सर्वज्ञका और इस ही अनुमानसे सर्वज्ञका और इस ही अनुमानसे सर्वज्ञका और हेतुका सम्बन्ध जानोगे तो इसमें इतरेतराश्रय दोष है। जब पहिले सर्वज्ञ सिद्ध हो तब तो साध्यसाधनका सम्बन्ध सिद्ध हो। जब साध्य साधनका सम्बन्ध सिद्ध हो तब सर्वज्ञ सिद्ध हो। जैसे कि इस पर्वतमें अग्नि है धुवाँ होनेसे। इस अनुमान प्रमाणको सिद्ध करनेके लिये अग्नि और धुवांका सम्बन्ध जानना आवश्यक है। तो अग्नि और धुवांका सम्बन्ध कहां जाना जा रहा है ? प्रत्यक्षसे तो जाना नहीं जा रहा है क्योंकि उस समय अग्नि आंखों दिख नहीं रही है, अनुमानसे भी नहीं जाना जा रहा है, क्योंकि अनुमानसे जानेगे तो इतरेतराश्रय दोष है, अनुमान से जानेंगे तो अनवस्था दोष है। तो जैसे अग्नि और धुवाँका सम्बन्ध व्याप्तिज्ञानसे जाना जाता अथवा दोनोंका सम्बध जाना जाता ऐसे ही व्याप्ति यहां हो ही नहीं सकती। कारण यह है कि व्याप्ति वहां ही होती है जहां दोनों साध्य साधन देखे हों जहां धुवां होता है वहां अग्नि होती है, जहां अग्नि नहीं होती वहां धुवां नहीं होता ऐसी जो व्याप्ति है वह तब ही तो जाना गई जब अनेक बार अग्नि और धुवां का सम्बन्ध आंखों देख चुके। जब सर्वज्ञ देख चुके हों तब ही तो सर्वज्ञके साथ किसी हेतुकी व्याप्ति बनायी जा सकती है, सो अनुमानसे भी इसका सम्बंध नहीं जाना जाता प्रत्यक्षसे सिद्ध नहीं वे क्योंकि जो इन्द्रिय प्रत्यक्षसे परे है ऐसे परोक्षभूत किसी बातमें प्रत्यक्षकी प्रवृत्ति नहीं हो सकती और अगर प्रत्यक्षसे सर्वज्ञ जान लिया गया तो ठीक है, अनुमानकी जरूरत क्या रही। और प्रत्यक्षसे जानी हुई चीजमें किसीका विवाद भी नहीं रहना चाहिये। अग्निको प्रत्यक्षसे देख लिया और स्पर्श करके जान लिया अब उसमें कौन विवाद करता है कि अग्नि ठण्डी होती है या गरम। सर्वज्ञ धर्मी अनुमानसे भी नहीं जाना जाता क्योंकि सर्वज्ञके अर्थ तत्त्वका परिचय हो, तब तो उसकी प्रवृत्ति हो। जब तक धर्मी नहीं जाना जायगा तब तक हेतुका सम्बन्ध नहीं बनाया जा सकता। देखिये शङ्काकार कह रहा है कि न तो सर्वज्ञका किसीको पता न सर्वज्ञके अस्तित्वका ही परिचय और सिद्ध किया जायगा कि सर्वज्ञ है तो यह तो एक अव्यवस्थाकी बात होगी। इससे सर्वज्ञ नहीं है क्योंकि उसकी सिद्धि करने वाला कोई प्रमाण नहीं मिलता।

सर्वज्ञत्व साध्यके साधनमें दोषत्रय—शङ्काकार सर्वज्ञवादियोंके प्रति कह रहा है कि और, भी सुनिये ! सर्वज्ञकी सत्ता सिद्ध करनेमें तुम जो भी हेतु दोगे, उन सब हेतुओंमें तीन दोष हो जायेंगे किसीमें असिद्ध दोष होगा किसीमें विरुद्ध दोष होगा, किसीमें अनेकांतिक दोष होगा, कैसे सो सुनिये, तुम सर्वज्ञको सिद्ध करनेमें जो भी हेतु दोगे, यह बतावो कि वह हेतु भावस्वरूप है या अभाव स्वरूप वाला है या दोनों धर्मों वाला है ? हेतु कोई सद्भाव परक होता है कोई अभावपरक। जैसे यहां

Version 1

अग्नि होना चाहिए धुवां होनेसे—यह सद्भावपरक हेतु है। धुवांकी सत्ता बताकर अग्निकी सत्ता बताना, और यहां ठण्ड अधिक है क्योंकि गर्मी रंच भी नहीं है तो अभाव करके सद्भाव सिद्ध किया है ऐसा कोई हेतु अभावपरक। तो सर्वज्ञको सिद्ध करनेमें आप जो हेतु देंगे वह सद्भाव धर्म वाला? सद्भाव धर्म वाला तो असिद्ध है—क्योंकि सर्वज्ञका सद्भाव ही असिद्ध है फिर उसके भावस्वरूप धर्मकी सिद्धि कैसे हो सकती। यदि अभावकी बात कहकर सर्वज्ञकी सिद्धि करोगे तो विरोध है। अभावसे सद्भाव कैसे सिद्ध होगा। सर्वज्ञ है क्योंकि न होनेसे। अभावसे सर्वज्ञकी सत्ता सिद्ध नहीं हो सकती और यदि हो जाय तो फिर कोई भी हेतु जिस चाहेको सिद्ध कर दें। यदि कहो कि अभाव और सद्भाव दोनों धर्मोंको लिए हुए हेतु है तो इसमें अनेकांतिक दोष होगा जो दोष दोनोंमें दिया है वह दोष आयगा और वह हेतु व्यभिचारी हो जायगा। सर्वज्ञकी सत्ताको सिद्ध भी कर सकेंगे और न भी सिद्ध कर सकेंगे। इस तरह सर्वज्ञका निषेध करने वाले मीमांसक सिद्धान्तने सर्वज्ञके अभावका पुष्टि की है कि लोकमें सबको जानने वाला ज्ञान हो ही नहीं सकता।

अनुमानप्रमाणसे सर्वज्ञकी सिद्धि—अब सर्वज्ञकी सत्ताके सम्बन्धमें आचार्य देव समाधान देते हैं कि यह तुम्हारा कहना कि सर्वज्ञकी सत्ता सिद्ध करने वाला कोई प्रमाण नहीं है यह बात गलत है। सर्वज्ञकी सत्ता सिद्ध करने वाला अनुमान आदिक प्रमाण है। कैसे? सो सुनो कोई आत्मा समस्त विश्वका साक्षात्कार करने वाला है, क्योंकि ज्ञानमें पदार्थोंके ग्रहण करनेका स्वभाव होनेपर फिर आवरण कर्म जरा भी नहीं रहा, इससे सिद्ध है कि ज्ञान समस्त पदार्थोंका जानने वाला होता है। ज्ञानका स्वभाव जाननेका है और जाननेमें कोई सीमा नहीं होती कि ज्ञान इतना को ही जाने। जो ज्ञान इन्द्रियसे उत्पन्न होता है और अर्थात् जिस ज्ञानकी उत्पत्तिमें इन्द्रियां निमित्त हैं उस ज्ञानमें तो हद हो जाती है, पर वह हद ज्ञानकी ओरसे नहीं हुई, उत्पत्ति कारणकी ओरसे हुई। ज्ञानमें स्वभावतः कोई सीमा नहीं होती कि कितनेको जाने। ज्ञानमें तो यह भी अड़चन नहीं है कि ज्ञान सामनेके पदार्थोंको ही जाने। सामने हो, पीछे हो, किसी ओर हो, सबको ज्ञान जान सकता है। तो जब ज्ञान सर्व सत्को ग्रहण करनेमें समर्थ है। और फिर उस ज्ञानपर कोई प्रतिबंध न रहे तब वह ज्ञान समस्त विश्वको जान लेगा। इसमें कोई सन्देह नहीं रहता। जो जो प्रकाश जिसको ग्रहण करनेका स्वभाव होनेपर बाधा रहित हो वह उसका साक्षात्कार करने वाला है। जैसे हम आपके ज्ञानमें यह सामर्थ्य है कि माननेकी चीज जान सकते हैं और सामने पड़ा हो पर्दा तो पर्दाके मिटते ही हम उस पदार्थको जान जाते हैं। नेत्रमें सामनेके पदार्थको देखनेका स्वभाव है और नेत्रपर पड़ गई है जाली अथवा कोई पर्दा, वह पर्दा नष्ट हो जाय तो एकदम सामने दिखने लगेगा, इसी प्रकार ज्ञानमें पदार्थको जाननेका स्वभाव पड़ा हुआ है और फिर ज्ञानका आवरण सब दूर हो जाय विषय कषायोंका आवरण व पौद्गलिक कर्मोंका आवरण दूर हो जाय, तो यह ज्ञान

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

समस्त पदार्थोंको जान लेगा इसमें कोई सन्देहकी बात नहीं है। जैसे कि नेत्रमें सामर्थ्य है कि यहाँके पदार्थोंको जान ले नेत्र विज्ञानसे और छाया हो अंधेरा तो उस समय नहीं जान पा रहे न सही, किन्तु इस नेत्रज्ञानमें ऐसा स्वभाव पड़ा है कि इन सब पदार्थोंको जान सकता है और फिर हो जाय अंधकारका विनाश। उस प्रतिबंधका अभाव तो समस्त पदार्थ जाननेमें आ जायेंगे। इसी प्रकार ज्ञानका स्वभाव है पदार्थोंको जाननेका और फिर हो जाय ज्ञानके आवरणका विनाश तो नियमसे वह ज्ञान समस्त विश्वको जान लेगा। इस प्रकार सिद्ध होता है कि कोई आत्मा सर्वज्ञ है।

आत्मामें समस्त पदार्थोंका अवगम करनेके स्वभावकी सिद्धि - यहां शङ्काकार कर रहा है कि हम तो नहीं मानते कि आत्मामें समस्त पदार्थोंके ग्रहण करनेका स्वभाव पड़ा है। स्याद्वादी उत्तर देते हैं कि तुम्हारे यहां भी तो वेदके बलसे समस्त पदार्थोंके ज्ञानकी उत्पत्ति मानी गई है, और फिर अनुमान प्रमाणसे भी इन समस्त पदार्थोंको जान लेते हैं। जगतमें जितने भी पदार्थ हैं वे सब अनेकात्मक हैं क्योंकि सत् होनेसे। जो जो भी सत् होते हैं है अनेकात्मक होते हैं। जो अनेकात्मक नहीं वह सत् भी नहीं। देखो इस अनुमानसे हमने समस्त पदार्थोंकी सकल, लम्बाई चौड़ाई रूप, रंग, लेकिन सामान्यरूपसे हमने समस्त पदार्थोंको जान ही लिया। जिस समय हम अनुमानसे यह जानते हैं कि जगतमें जितने भी पदार्थ प्रतिक्षण उत्पन्न होते हैं, व्ययको प्राप्त होते हैं और सदा काल बने रहते हैं। क्योंकि सत् होनेसे। इस प्रकार जो भी सत् होता है वह उत्पादव्यय ध्रौव्यात्मक है। ये तीन चीजें पायी जाती हैं प्रत्येक पदार्थमें सत्त्व, रज तम। तो हम भी सभी अनुमानोंसे समस्त पदार्थोंका ज्ञान करने वाले हो जाते हैं। स्पष्ट न जान पाया, विशेष न जान पाया, पर एक साधारणरूपसे जिन धर्मको दृष्टिमें रखकर जान रहे हैं हम समस्त पदार्थोंको जान लेते हैं। तो आत्मामें समस्त पदार्थोंके जाननेका स्वभाव पड़ा हुआ है।

अनुमान प्रमाणसे ज्ञानमें अशेषार्थ ग्रहण स्वभावकी सिद्धि - जो जिस विषयक ज्ञान होता है वह उसके ग्रहण करनेका स्वभाव वाला है। जैसे रसना इन्द्रिय पदार्थके रसको विषय करती है तो इससे सिद्ध है कि रसना ज्ञानमें रसको ग्रहण करनेका स्वभाव पड़ा है। कभी किसी चीजका रूप जानना हो तो जीभसे चखकर तो नहीं जाना जा सकता क्योंकि रसना इन्द्रियका तो रसके ही ग्रहण करानेका स्वभाव है। चक्षु इन्द्रियमें रूपके ही ग्रहण करनेका स्वभाव है। स्वभाव तो है किसी इन्द्रियका और जानना चाहें किसी इन्द्रियके द्वारा तो उसमें विडम्बना बन जायगी। एक पुरुष जन्मसे अन्धा था, एक बच्चेने कहा कि बाबाजी आज हम तुम्हें खीर खिलायेंगे, तो बाबाजी बोले कि खीर कैसी होती है? तो वह बच्चा बोला कि सफेद सफेद होती है। सफेद कैसी? अगर रूप देखा हो तो वह अंधा सफेद जाने। तो बच्चा बोला - बगुला जैसा। अब बगुला भी कभी देखा हो तो जाने। तो वह बाबाजी पूछते हैं कि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बगुला कैसा होता है ? तो बाबाजीके आगे बगुला जैसा टेढ़ा हाथ करके कहता है कि बगुला ऐसा होता है। बाबाजीने उसे टटोल कर देखा तो कहा अरे ऐसी खीर हम नहीं खावेंगे। यह तो हमारे पेटमें गड़ेगी। अब देखो, बताना तो था खीरका स्वाद और बता दिया बगुलाका आकार। तो इसीसे कहते हैं कि बड़ी टेढ़ी खीर है। यह काम सिद्ध कर लेना यह तो बड़ी टेढ़ी खीर है। जैसे अंधे पुरुषके लिए खीरका ज्ञान करना बहुत टेढ़ा काम हैं। कैसे ज्ञान कराये ? इसी प्रकारका कठिन और विडम्बनापूर्ण झगड़े वाला कोई रूप हो तो उसके लिए यह अहाना बोला करते हैं कि यह तो 'टेढ़ी खीर है !' तो जिस इन्द्रियके द्वारा जिस विषयको ग्रहण करनेका स्वभाव है जान लिया जाता है तो समझना चाहिये कि उसको इसी प्रकार समझना चाहिए कि आत्मामें पदार्थोंको जाननेका स्वभाव पड़ा है तब हम पदार्थोंको जानते हैं। तो यह सिद्ध है कि इन पदार्थोंके जाननेका इसमें स्वभाव है। तो जब पदार्थोंके जाननेका आत्मामें स्वभाव है और फिर उसके जाननके रोकने वाला आवरण कोई रहा नहीं तो नियमसे यह ज्ञान समस्त विश्वका जाननहार हो जायगा। इस प्रकार सर्वज्ञको सिद्ध करने वाला अनुमान प्रमाण है। यह आत्मा समस्त पदार्थोंको जानता है यह व्याप्तिसे सिद्ध है, आगमसे भी सिद्ध है और ज्ञानसे भी सिद्ध है। सर्वज्ञका तुम अभाव नहीं कह सकते।

ज्ञानमें सकलार्थ ग्रहण स्वभावकी झांकी मीमांसावादमें कोई मुख्य प्रत्यक्ष ज्ञान सर्वज्ञ नहीं माना गया है। केवल एक आगमसे ही जाना जा सकता है, जान लिया जाता है कोई पुरुष ऐसी सामर्थ्य नहीं रखता कि कभी समस्त विश्वका जानकार बन सके। ज्ञानका सर्वोच्च स्थान (साधन) आगम ही है। यों असर्वज्ञत्व मानने वालोंके प्रति सिद्ध किया जा रहा है कि आत्मा सर्वको जानता है। यह बात तो अब भी किसी न किसी पद्धतिसे है। न भी हुआ कोई प्रभु सर्वज्ञ, हम आप संसारी जीव हैं तिसपर भी ऐसी पद्धति है कि जिस पद्धतिसे विदित होता है कि हम आप भी सबको जानते हैं। इस विषयमें अनुमान द्वारा तो सिद्ध किया ही था। कैसे कोई जान ले कि जगतमें जितने भी पदार्थ हैं वे सब उत्पादव्यय ध्रौव्य वाले हैं, त्रिगुणात्मक हैं, क्योंकि सत् होनेसे। तो यों एक सामान्यरूप से समस्त पदार्थोंको जान लिया गया। जैसे कोई पुरुष अपने ज्ञानी मित्रसे बहुत बहुत कहता है कि चलो अमुक पहाड़का दृश्य देखें, अमुक सरोवरका दृश्य देखें, चलो वहां ले चलें जङ्गलका दृश्य दिखायें, तो वह ज्ञानी कहता है कि मैंने देख लिया सब। अरे अभी चले कहाँ हो, कहाँसे देख लिया ?...हाँ देख लिया सब, जो कुछ होगा वह पौद्गलिक होगा, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श वाला पिण्ड होगा। तो उसने यहाँसे ही अपने प्रयोजनके अनुसार अपनी पद्धतिमें सब देख लिया। तो सबको जान लेनेकी पद्धति आत्मामें है, वह इस समय निरावरण नहीं है, अतएव केवल ज्ञानकी तरह स्पष्ट समस्त विश्व नहीं ज्ञात होता है, पर पद्धति तो है सकल पदार्थोंके जाननेको।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

व्याप्तिज्ञान और आगमसे भी ज्ञानमें सकलार्थ ग्रहण स्वभावकी सिद्धि सर्वके ज्ञानके सम्बन्धमें दूसरी बात यह है कि सबको जाने बिना व्याप्तिज्ञान नहीं बन सकता। जिसे तर्क प्रमाण कहते हैं, जब अनुमान बनाया कि इस पर्वतमे अग्नि होना चाहिए धूम होनेसे तो यह व्याप्ति प्रथम ही ज्ञात होती है। जितने भी जहां जहाँ भी धुवां हैं वे सब अग्नि से उत्पन्न हुए हैं। अतएव यह धुवाँ अग्निका ज्ञापक है। देखो इस तर्क ज्ञानने दुनियाभरके धुएँका और अग्निका ज्ञान कर लिया। हुआ है यह सामान्य रीतिसे, युक्तिके ढङ्गसे, किन्तु पद्धतिमें तो सब विषय आ गया। और भी देखिये ! आगमसे भी सर्वज्ञ होता है यह सिद्ध है। इस ग्रन्थमें जो सर्वज्ञ-वादी हैं वे यदि अपने आगमके प्रमाण देने लगें तो उनकी कौन मानेगा ? जो सर्वज्ञ नहीं मानते हैं उनके आगमका ही प्रमाण मिल सके तो उनके लिए मान्य होगा। तो देखो ! मीमांसकोंके आगममें भी लिखा है कि वेद भूत वर्तमान और भविष्यत् और दूरवर्ती सतस्त पदार्थोंको, पुरुषोंको जना देनेमें समर्थ तो इससे सिद्ध हुआ कि पुरुष सर्वज्ञ बन सकता है। वेदने जना दिया, किसी तरह जाना, आखिर सबको जाननेमें समर्थ तो हो गया पुरुष और फिर अनुमान ज्ञान जितने भी बनते हैं उन सबमें विधि प्रतिषेधका विचार जरूर चलता है। जहाँ जहाँ धुवाँ है वहाँ वहाँ आग है, जहां आग नहीं, वहाँ धुवाँ नहीं। तो देखिये ! विधि रूपसे और प्रतिषेध रूपसे सारे विश्वके स्थलोंको जान ले ऐसा जाने बिना तर्क ज्ञान नहीं बन सकता। तो व्याप्तिज्ञानमें भी सबका जानना बन गया। फिर यह क्यों कहते हो कि आत्मामें समस्त पदार्थोंके जानने का स्वभाव नहीं है ? स्वभाव है।

सर्वज्ञत्व साध्यका हेतुके साथ सम्बन्धका तर्कसे निर्णय सर्वज्ञका अभाव सिद्ध करनेमें जो असर्वज्ञवादियोंने यह युक्ति दी थी कि देखो सर्वज्ञको सिद्ध करने के लिए जो भी हेतु दिया जायगा उस हेतुका सर्वज्ञत्व साध्यके साथ सम्बन्ध विदित नहीं हो सकता। और, जब तक हेतुमें साध्यका सम्बन्ध न जान लिया जाय तब तक अनुमान प्रमाण नहीं बनता। जैसे जहाँ जहाँ धुवाँ है वहाँ वहाँ अग्नि है, यह सम्बन्ध विदित हो वही पुरुष तो धुवाँ देखकर अग्निका ज्ञान कर सकेगा। जिसे इस व्याप्तिके सम्बन्धका परिचय नहीं हैं वह कैसे अनुमान बनायेगा ? तो सर्वज्ञके लिए तुम जो हेतु दोगे उस सर्वज्ञके साथ सम्बन्ध अविदित है। यदि विदित है तो बतावो प्रत्यक्षसे या अनुमान से ? और, ऐसा कहकर दोष दिया था किन्तु वह सब असङ्गत है, सर्वज्ञत्व साधनामें इन दोषोंका अवकाश नहीं है, इसका कारण यह है कि सर्वज्ञ पना सिद्ध करने के लिए जो हेतु दिया जायगा उस हेतुका और सर्वज्ञत्वके साथ सम्बन्ध है, वह यद्यपि न प्रत्यक्षसे जाना जाता और न अनुमान से, किन्तु तर्क नामका एक प्रमाण है उससे जाना जाता है। देखो—तर्कयुक्तियाँ ! अन्यथानुपपत्तिके माध्यम से अविनाभाव जाना जाता है। इसके बिना यह नहीं हो सकता। और, यह है तो वह जरूर है। बस, यही एक कुञ्जी है अनुमान प्रमाण की। तो उस तर्क नामके

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रमाणसे हम व्याप्ति सिद्ध करते हैं, अतएव हेतुका और सर्वज्ञत्व साध्यका सम्बन्ध मिल जाता है और अनुमान बन जायगा कि कोई न कोई पुरुष सर्वज्ञ अवश्य है, क्योंकि उन सब पदार्थोंके जाननेका स्वभाव होकर भी आवरण एक भी नहीं रहे। इससे सिद्ध है कि कोई पुरुष समस्त विश्वका जाननहार है।

सर्वज्ञत्वसाध्यमें अन्य अनुमानवत् धर्मीकी सिद्धि—सर्वज्ञत्वके खण्डनमें असर्वज्ञवादियोंने जो यह युक्ति दी थी कि तुम यह सिद्ध करते हो कि सर्वज्ञ है और उसके लिए हेतु देते हैं तो जैसे कोई पर्वतमें अग्नि सिद्ध करना चाहे धुवाँका हेतु देकर तो पर्वत तो आँखों दिखता है तब तो उसमें आग सिद्ध करेंगे। पर्वत हुआ पक्ष, इसी प्रकार पहले पक्ष, धर्मी सर्वज्ञ तो दीखें तब उसमें हेतना सिद्ध कर सकेंगे, पर सर्वज्ञ किसी प्रमाणसे नहीं जाना जाता। इस प्रकारकी युक्ति देकर जो खण्डनका प्रयास किया था वह भी असिद्ध है। कारण यह है कि इस अनुमानमें पक्ष सर्वज्ञ नहीं सर्वज्ञको हम धर्मी नहीं बना रहे जिससे सर्वज्ञकी असिद्धिको यह दोष दिया जा सके। तब फिर क्या धर्मी बना? कोई आत्मा? हमारा तो अनुमान प्रमाण यह है कि कोई आत्मा सर्वज्ञ है। समस्त पदार्थोंको जाननेका स्वभाव होनेपर आवरण कोई नहीं रहा। तो हमारा धर्मी तो कोई आत्मा है और 'किसी आत्मामें" कोई विवाद नहीं। बहुतसे आत्मा हैं उनमेंसे किसी आत्माका हम अनुमान बना रहे हैं, तो यह भी दोष नहीं आता सो अनुमान निर्दोष है, उससे सर्वज्ञकी सिद्धि होती है। एक दोष दिया था असर्वज्ञवादियोंने कि उस सर्वज्ञकी सत्ता सिद्ध करनेमें जो भी कुछ हेतु दोगे उसमें तीन दोष आते हैं असिद्ध, विरुद्ध, अनेकान्तक, यह भी बात ठीक नहीं है कारण यह है कि इस तरहके विकल्प बनानेसे तो सारे अनुमान प्रमाण नष्ट हो जायेंगे। किसी भी जगह हम पूछ सकते हैं। जैसे कि एक सही अनुमान बनायें कोई कि यह पर्वत अग्नि वाला है—धूमवाला होनेसे। तो पूछा जा सकता है वहां कि यह धूमपना क्या अग्नि वाले पर्वतका धर्म है या अग्नि रहित पर्वतका धर्म है? यदि अग्नि वाले पर्वतका धर्म है ऐसा जान लिया तो अग्निवान तो पहिले ही उसने मान लिया, फिर हेतु देने की जरूरत क्या? यदि कहो कि अग्नि रहित पर्वतमें धर्म है यह धुवां तो, उससे तो उल्टी बात सिद्ध हो जायगी कि दोनों बातें हैं तो उसमें हेतु व्यभिचारी बनेगा तो सारे अनुमान यों खतम कर सकते। जैसे युक्ति देकर सर्वज्ञत्वका खण्डन करना चाहा था कि सर्वज्ञका सद्भाव मानने वाले, तुम सर्वज्ञत्व सहित सर्वज्ञत्वमें सत्ता सिद्ध करते हो या सर्वज्ञत्व रहित पदार्थमें तुम सर्वज्ञकी सत्ता सिद्ध करते हो तो यह तो कोई युक्ति नहीं है। जैसे सब प्रकृतमें कहेंगे कि जिस अग्निका अभी विवाद है या नहीं, उस धर्मसे सत् पर्वतमें हम अग्नि सिद्ध करते हैं तो यही बात यहां है कि जिसकी सत्तामें विवाद है उस धर्म करके सहित किसी आत्मामें हम सर्वज्ञपना सिद्ध करते हैं। तो जैसे पर्वत अचल है और उस रूपसे हमें बिल्कुल समझमें आ रहा है और उस रूपसे ठीक हमें समझमें आ रहा है अब उसमें अग्निका संदेह है। अग्नि है या

Report any errors at vikasnd@gmail.com

नहीं, उस साध्यका हम हेतु बना रहे हैं कि धुवां है अतएव अग्नि है, इसी प्रकारसे आत्मा तो प्रसिद्ध है जगतमें हम अनेक आत्मावोंको जानते हैं उन आत्मावोंके विशेषण से उनकी सत्ता प्रसिद्ध है। अब सर्वज्ञपना अप्रसिद्ध है। तो सर्वज्ञपना करके सहित जिसका कि विवाद चल रहा है, किसी आत्मामें हम सर्वज्ञपना सिद्ध करते हैं इसमें विरोधकी कोई बात नहीं है। तो सर्वज्ञके खण्डन करनेमें जो युक्तियां देते हो वे सब असत्य हैं, निर्बल हैं, अतएव सर्वज्ञका खण्डन नहीं हो सकता। कोई आत्मा नियमसे सर्वज्ञ है।

अविशेष या विशेषरूपसे सर्वज्ञत्व सिद्ध करनेकी आशङ्का अब शङ्काकार फिर अपनी बात रख रहा है कि तुम जो सर्वज्ञ सिद्ध कर रहे हो वह सामान्य रूपसे सिद्ध कर रहे या विशेष रूपसे ? अर्थात् कोई है सर्वज्ञ इतना ही बात सिद्ध करना चाहते हो या अरहंत सर्वज्ञ हैं ? आदिक कोई विशेषरूपसे सर्वज्ञ सिद्ध करना चाहते। यदि कहो कि हम सामान्यरूपसे सर्वज्ञ सिद्ध करना चाहते तब फिर विशेष रूपसे अरहंत भगवान द्वारा प्रणीत आगमका आश्रय करना तो युक्त नहीं बैठा, क्योंकि तुम तो सामान्यरूपसे सर्वज्ञ मानते हो। यदि विशेष रूपसे सर्वज्ञको सिद्ध करना चाहते कि अरहंत सर्वज्ञ हैं तो और कोई सर्वज्ञ रहा नहीं, फिर दृष्टान्त किसका दोगे ? कोई भी बात दृष्टान्तसे ही तो स्पष्ट होती है। और कोई सर्वज्ञ रहा नहीं तो दृष्टान्त किसका दोगे ? तब फिर उसमें यों अनेक नैतिक दोष आ जायगा। और, भी सुनो ! जिस हेतुसे तुम प्रतिनियत अरहंतको सर्वज्ञ सिद्ध करोगे उसी हेतुसे तुम प्रतिनियत अर्हन्तको सर्वज्ञ सिद्ध करोगे उसी हेतुसे सुगत भी सर्वज्ञ बनेंगे, क्योंकि उनमें अब कोई विशेषता तो न रही, हेतु उनमें भी जायगा क्योंकि सर्वज्ञके सिद्ध करनेमें इस लोकमें कोई हेतु नहीं, तुम अटपट बोलोगे तो उससे अरहंत ही सर्वज्ञ हैं, यह कैसे निर्णय बनेगा, सभी सर्वज्ञ होंगे। तो सर्वज्ञकी सिद्धि न सामान्यरूपसे होती है और न विशेषरूपसे।

अविशेषरूपसे सर्वज्ञत्व सिद्ध करके विशेषरूपसे सिद्ध करनेकी पद्धति— अविशेष या विशेषरूपसे सर्वज्ञ माननेकी शङ्कापर आचार्यदेव उत्तर देते हैं कि सामान्यरूपसे सर्वज्ञ सिद्ध करते हो या विशेषरूपसे ? यह कहना तुम्हारा केवल बकवाद मात्र है क्योंकि जरा उसे सोचो सर्वज्ञताकी सिद्धिमें सर्वप्रथम तो सामान्यतया सिद्ध करना होगा, तब माना जायगा सामान्यतया सिद्धकी दलील सुनकर, कि हाँ बात ठीक है, कोई आत्मा सर्वज्ञ हो सकता है, तब उसके बाद कोई आत्मा सर्वज्ञ हो सकता वे यह विशेषरूपसे सिद्ध किया जाता है। अतः ये दोनों दोष नहीं आते। इस समय तो सामान्यरूपसे सर्वज्ञके सम्बन्धमें ही विवाद है, तुम तो सर्वज्ञपना जरा भी नहीं मानते, तो पहिले यह सिद्ध होता है कि कोई आत्मा सर्वज्ञ है क्यों ? यों कि ज्ञानका समस्त पदार्थोंके ग्रहण करनेका स्वभाव है और फिर उस ज्ञानपर आवरण रहा नहीं, इससे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सिद्ध है कि जो इस परिस्थितिमें आ गया, आत्मा निरावरण हो गया वह सर्वका ज्ञान हार बन गया। ज्ञानमें सब पदार्थोंके ग्रहण करनेका स्वभाव है यह भी भली भाँति सिद्ध कर दिया गया है और जब कि ज्ञानीपर आवरणोंकी कमी बेसी देखी जा रही है। किसीका ज्ञान विशेष विकसित है उसमें आवरणकी हानि अधिक है, किसीका आवरण अधिक नष्ट है तो आवरण हानिकी जब प्रकर्षता देखी जा रही है तो कोई आत्मा ऐसा भी है जिसके आवरण रंच भी नहीं है। बस वह सर्वज्ञ होगया। कितना सुगम साधन दिया गया है। सर्वज्ञताके माननेमें विवाद क्या है? फिर तो यह परखा जायगा कि हो तो गया सर्वज्ञ, जान तो लिया इतने समस्त पदार्थोंको, किन्तु रागद्वेष तो रंच मात्र भी नहीं है। तो जहाँ रागद्वेष नहीं रहते वहां ज्ञान किस प्रकारसे जानता है? बस, इसके परखने भरकी एक कसर रह जाती है। इसे परख लो प्रभु सबको जानता है इसमें तो रंच भी सन्देह नहीं पर रागद्वेष न रहनेपर जीव का परिणाम किस प्रकारका चलता है इसमें बुद्धि लगावो। तो पहिले तो यह सिद्ध किया गया है कि कोई आत्मा सर्वज्ञ है इसके बाद फिर विशेष जानकारी करनेके लिये फिर सिद्ध किया जायगा कि अरहंत ही सर्वज्ञ हैं।

विशेषरूपसे सर्वज्ञत्व सिद्धि— अरहंत प्रभु सर्वज्ञ हैं क्योंकि प्रत्यक्ष और आगमसे अविरुद्ध वचन उनके ही पाये जाते हैं। जो जिस विषयका स्पष्ट और निर्दोष जानकार होता है उसका वचन कहीं भी स्खलित नहीं हो सकता, मिथ्या नहीं हो सकता। कोई पूछे कि हम कैसे समझें कि अरहंत प्रभुके वचन प्रत्यक्ष और आगमसे विरोध नहीं खाते। तो यह बात बतानेके लिए तो बहुत लम्बा समय चाहिये। और इस ही प्रकारकी निर्दोषता बतानेके लिए देवगम स्तोत्र बना है। जिसपर अकलङ्क देवने अष्टशती टीका की और उसे अपने पेटमें रखकर उन वचनोंमें बीच—बीचमें अपने व्याख्यानसे प्रवाह रूपमें मिलाकर अष्ट सहस्री की व्याख्या हुई है जिसे विद्यानन्दी स्वामीने की है। ये बहुत पहिले समयमें बड़े दिग्गज विद्वान हो गए। और मोटे रूपसे तो इतनासा ही परखलें कि वस्तु स्वरूप बताया गया है कि प्रत्येक पदार्थ अनादि सिद्ध है और वह उत्पादव्यय ध्रौव्य स्वभाव वाला है। किसी भी पदार्थको उठाकर देख लीजिए—ये तीनों चीजें स्वभावत: पायी जाती हैं। या नहीं, जबकि अनेक लोग ऐसी कल्पना करते हैं कि कभी दुनियामें कुछ न था, अंधकार ही था, फिर एक आगकी कणिका निकली, सूर्य बना, समुद्र बना, मछली बनी फिर मेढक बना, फिर और और तरहसे मनुष्यके निर्माणकी कल्पना करते हैं, वह प्रत्यक्षसे बिल्कुल विरुद्ध बैठता है, आगमसे अविरुद्धता है, इस बातको आप निरख लीजिए जो लोक की रचनाका विषय है। जितने भी आगम मिलेंगे चाहे दक्षिण देशके आचार्यने बनाया हो या उत्तर देशवासी आचार्यने बनाये हों, कहीं एक अंगुलका भी तो फर्क नहीं है। जो भी पर्वत बताये, जो भी विस्तार बतायें कहीं रंच भी तो फर्क नहीं है। चरणानुयोगमें, द्रव्यानुयोगमें, सभी अनुयोगोंके सम्बन्धमें जो वर्णन किया है पहिले

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

से बादमें बिरोध आता हो ऐसी स्थितियां नहीं नजर आतीं । तो ऐसे वचन उनके ही हो सकते हैं, उनकी परम्परासे ही निर्णीत हो सकता है तो सर्वज्ञ है इसमें कोई विवाद नहीं यों पहिले सर्वज्ञको सामान्यरूपसे सिद्ध किया जाता है फिर विशेषरूपसे । यह युक्ति सही नहीं बैठती तुम्हारी कि बतावो तुम सामान्यरूपसे सर्वज्ञ सिद्ध करते या विशेषरूपसे ?

अविशेष या विशेषरूपसे सर्वज्ञत्व प्रतिषेधकी असङ्गति– अविशेष व विशेषरूपके विकल्प करनेकी हठ ही रखोगे तो हम यह कह बैठेंगे कि अच्छा तुम बतावो तुम सामान्यरूपसे सर्वज्ञका निषेध करते या विशेषरूपसे ? जो दोष दिया है वह दोष आपके लिए भी आ सकता है । किस तरह ? यदि कहो कि हम सामान्यरूपसे सर्वज्ञका खण्डन कर रहे हैं तो यह खण्डन तो नहीं आया कि अरहंत सर्वज्ञ नहीं हैं, यह बात तो नहीं बैठी । विशेषरूपसे कहोगे कि अरहंतके सर्वज्ञत्वका खण्डन करेंगे, तो उसका फिर दृष्टान्त बताओ । तो जो दोष सर्वज्ञकी विधिमें किया गया है वह दोष सर्वज्ञके निषेधमें भी किया जा सकता है । तो यह कोई दोष नहीं बैठता । पहले सामान्यसे सर्वज्ञताकी सिद्धि करते हैं फिर विशेषरूपसे करते हैं ।

विशेषरूपसे सर्वज्ञत्वका परिचय–समन्तभद्राचार्यने जब प्रभुके नमस्कारके लिए भक्ति जगी तो तर्क किया अपने आपमें कि कैसा प्रभु मेरे नमस्कारके योग्य है ? तो किसीने कहा कि जिसके पास देवता लोगोंके आनेका ताँता बना रहे, जो आकाशमें चले, जिसके ऊपर चमर ढुलें बस वह है प्रभु ! तो आचार्य कहते हैं—नहीं, इतनी बात तो कोई मायावी पुरुष भी कर सकता है । जिसे कुछ सिद्धि हो या और प्रकारके चमत्कार हों वह भी ये बातें करा सकता है । इस कारण तो कोई हमारा प्रभु नहीं है । तो फिर कहने लगा वह कि जिसके शरीरमें हाड़–माँस आदिक कुधातु नहीं, दिव्य शरीर है, पसीना मल आदिक नहीं हैं वह है प्रभु ! तो बोले—नहीं, ऐसा शरीर तो देवोंके भी मिल जाता है । तो फिर कहने लगा कि लो जैन शासन चलाया है इसलिये ये प्रभु हैं । तो यों तो शासन सभीने चलाया, जिसका जो धर्म है उसने वही चलाया, इससे भी सिद्ध नहीं होता कि मेरे नमस्कारके योग्य ये प्रभु हैं ! अच्छा, तो तुम बतावो, प्रभु कौन हो सकता है ? तो बताया उन्होंने कि जिसमें दोष और आवरण बिल्कुल भी न हों, वही प्रभु है । रागादिक दोष, अज्ञान दोष और कर्मोंका आवरण, ये जहाँ नहीं हैं वही सर्वज्ञ प्रभु हो सकता है । तो यह तो सामान्य कथन है, और इस सामान्य कथन से टिकाव तो कहीं नहीं हो सकता है । तो कहा उन्होंने कि हे प्रभो ! अरहंत, तुम ही वह सर्वज्ञ हो प्रभु, क्योंकि आपके वचनोंमें कहीं दोष नजर नहीं आता । जैसे जिसका जुखाम बुखार मिट गया उसके वचनों से ही लोग पहिचान जाते कि इसका रोग दूर हो गया, और यह निर्दोष है, इसी प्रकार जो वचन निर्दोष है उसकी निर्दोषतासे ही यह प्रकट होता है कि प्रभु आप ही सर्वज्ञ हैं । फिर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वह निर्दोषता कैसी है उसको बतानेके लिये सब मत-मतान्तरोंका विवेचनात्मक प्रतिपादन समन्तभद्राचार्यने किया है और सिद्ध किया है कि आपके इस अनेकान्तमें कोई विवाद नहीं है अतएव आप ही सर्वज्ञ हैं। पहिले सामान्यरूपसे सिद्ध कर लीजिए है कोई वह अवश्य सर्वज्ञ। फिर विशेषरूपसे भी वह सर्वज्ञ सिद्ध कर लिया जायगा।

सर्वज्ञत्व साधक अनुमानके साध्यमें शङ्काकारके दो विकल्प जो किसी भी आत्माको सर्वज्ञ नहीं मान रहा है ऐसा सिद्धान्तवादी स्याद्वादवादियोंसे प्रश्न कर रहा है कि तुम जो यह मानते हो कि सूक्ष्म और दूरवर्ती तथा अतीत भविष्यकालके पदार्थ किसी न किसीके द्वारा प्रत्यक्ष हैं क्योंकि प्रमेय होनेसे अग्निकी तरह, जैसे अग्नि प्रमेय है, पर्वतमें छुपी हुई है अग्नि, जिसका कि धुवां बाहर निकल रहा है वह अग्नि किसी न किसीके द्वारा प्रमेय है। जो पर्वतपर होगा वह तो उस अग्निको देख ही रहा होगा। तो किसीको प्रत्यक्ष तो जरूर है अग्नि क्योंकि प्रमेय होनेसे। इसी प्रकार ये सूक्ष्म पदार्थ प्रमेय हैं अतएव किसी न किसीके द्वारा प्रत्यक्ष हैं, ऐसा जो स्याद्वादी कहते हैं वह कथनमात्र है। वह बात युक्त नहीं हो सकती। शङ्काकार यहाँ इस अनुमानका खण्डन कर रहा है। सर्वज्ञ न मानने वाले लोग सर्वज्ञत्व साधक अनुमानमें आपत्ति दे रहे हैं। क्या? अच्छा बताओ तुम्हारे अनुमानमें दो बातें आयीं, कि यह पदार्थ प्रमेय है इस कारणसे दूसरी बात क्या आयी कि किसी न किसीके प्रत्यक्ष है। एक है हेतु और एक है साध्य। साध्य तो यह है जो सिद्ध किया जा रहा है कि सूक्ष्म आदि पदार्थ किसीके प्रत्यक्ष हैं तो साध्यके बारेमें ही पूछ रहे हैं कि किसीके प्रत्यक्ष हैं, इसका अर्थ क्या? क्या यह ज्ञानके द्वारा प्रत्यक्ष है या अनेक ज्ञानोंके द्वारा वह पदार्थ प्रत्यक्ष है? इन विकल्पोंका भाव यह है कि जैसे हम इतने पदार्थोंको जान रहे हैं तो इतने पदार्थ जो जाने जा रहे हैं ये एक ज्ञानके द्वारा जाने जा रहे हैं या अनेक ज्ञानों के द्वारा? आप ही सोचिये एक आँखसे देखकर जानो तो एक ही बात जाना, तो एक ज्ञानके द्वारा प्रत्यक्ष करना कहलायेगा। और देखनेके ही साथ यदि तत्सम्बन्धी दशों बातें जाननेमें आयें तो अनेक ज्ञानोंके द्वारा प्रत्यक्ष कहलायेगा। यों इस सम्बन्धमें पूछ रहा है शङ्काकार कि प्रमाणु आदिक सूक्ष्म पदार्थ राम रावण आदिक अतीत पदार्थ और मेरु आदिक दूरवर्ती पदार्थ ये किसीके प्रत्यक्ष हैं तो क्या एक ज्ञानके द्वारा प्रत्यक्ष हैं या अनेक ज्ञान उत्पन्न किए, उन ज्ञानोंके द्वारा प्रत्यक्ष हैं।

सर्वज्ञत्व साध्यके दोनों विकल्पोंसे शङ्काकार द्वारा सर्वज्ञत्वका निराकरण -- इन परमाणु आदिक पदार्थोंको एक ज्ञानके द्वारा प्रत्यक्ष मानोगे तो यह तो विरोध है, क्योंकि हम देख रहे हैं कि जो पदार्थ प्रमेय हैं वे पदार्थ एक ज्ञानके द्वारा प्रत्यक्ष नहीं होते। देखते ही के साथ यह रूप है, यह कड़ा है यह ऐसे आकारका है, कहाँका बना है? कितनी बातें जानी जाती हैं जो जैसे भी वह प्रमेय है, तो अनेक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

ज्ञानोंके द्वारा प्रत्यक्ष तो कह लेनेपर एक ज्ञानके द्वारा नहीं कहा जा सकता, क्योंकि जितने भी प्रमेय होते हैं वे सब एक ज्ञानके द्वारा प्रत्यक्ष नहीं होते। क्योंकि जैसे इन्द्रियाँ अलग अलग विषयोंको जानती हैं, नेत्र रूपको जानेंगे, घ्राणेन्द्रिय गंधको जानेगी रसना रसको जानेगी, कर्ण शब्दोंको जानेंगे। तो जब ज्ञानके विषय न्यारे न्यारे हैं और किसी वस्तुमें उसके धर्मोंका बोध होता है तो एक ज्ञानके द्वारा कैसे बोध हो सकता है? दूसरी बात यह है कि जो दृष्टान्त दिया है अग्नि आदिकका तो वे सारे प्रमेय ऐसे हैं कि वे एक ज्ञानके द्वारा प्रत्यक्ष नहीं होते तो तुम्हारा दृष्टान्त भी साध्यसे रहित हो गया। यदि कहो कि अनेक ज्ञानों के द्वारा प्रत्यक्ष होते हैं वे सारे पदार्थ तो शङ्काकार कह रहा है कि यह बात तो हम मान लेंगे, अनेक प्रत्यक्षोंके द्वारा, अनुमान आदिकके द्वारा समस्त पदार्थोंका परिज्ञान किया जा सकता है। यदि प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम आदिक सभी प्रमाणोंके द्वारा तुम सबका जानने वाला ज्ञान मानते हो तो उसमें हमें इतराज नहीं है, पर एक ज्ञानके द्वारा ही समस्त लोकालोक प्रत्यक्ष हो जाय, ज्ञानमें आ जाय यह बात स्वीकार नहीं करते। यहाँ शङ्काकारका अभिप्राय यह है कि वेद आगम, अनुमान आदिक प्रमाणोंसे यदि धीरे-धीरे बटोर बटोरकर उन ज्ञानोंसे सब विश्वको जान लिया जाय यह तो हम मान सकते हैं, पर कोई एक ज्ञानप्रकाश ऐसा उत्पन्न होता है आत्मामें कि सिर्फ उस ज्ञानके ही द्वारा सारा लोकालोक एक साथ ज्ञानमें आ जाय यह हम नहीं मान सकते। यों शङ्काकार आत्माकी असर्वज्ञताके सम्बन्धमें कि कोई भी आत्मा सर्वज्ञ नहीं हो सकता है, इस सिद्धान्तको समर्थित करते हैं।

सर्वज्ञत्वसाधक अनुमानके साध्यमें दोषका अनवकाश सर्वज्ञत्व साध्य के विकल्पोंके समाधानमें कहते हैं कि वे सूक्ष्म आदिक पदार्थ एक ज्ञानके द्वारा प्रत्यक्ष होते हैं या अनेक ज्ञानोंके द्वारा प्रत्यक्ष होते हैं ऐसा विकल्प करना असंगत है क्योंकि इस अनुमानमें तो हम प्रत्यक्ष सामान्यके द्वारा यह सिद्ध कर रहे हैं कि किसी न किसीके सूक्ष्म आदिक पदार्थ भी प्रत्यक्ष हो जाते हैं, क्योंकि प्रमेय है। इस समय हम यह नहीं सिद्ध कर रहे कि एक ज्ञानके द्वारा प्रत्यक्ष होता है या अनेक ज्ञानोंके द्वारा, यह बात पीछे बतावेंगे। पहिले यह तो स्वीकार करलें कि हाँ जो भी प्रमेय है, जो भी सत् है, यदि वस्तु है तो किसी न किसीके द्वारा वह अवश्य ज्ञेय है। पहिले तो यह सिद्ध किया जा रहा है। जब सामान्यरूपसे यह सिद्ध हो जायगा कि हाँ ये राम रावण आदिक अतीत कालके लोग, मेरु आदिक दूरवर्ती पदार्थ, परमाणु आदिक सूक्ष्म वस्तुवें किसीके प्रत्यक्ष होते ही हैं ऐसा सिद्ध हो जानेपर फिर बतावेंगे कि वह प्रत्यक्ष इन्द्रिय और मनकी अपेक्षासे उत्पन्न हुआ नहीं हो सकता। वर्तमान में जो स्पर्शन इन्द्रिय हैं या मन है। इनके निमित्तसे उत्पन्न होने वाले ज्ञानमें राम रावण आदिकका स्पष्ट नक्शा ला देना बशकी बात नहीं है। परोक्ष रूपसे कुछ उस का अन्दाजा चित्रण करके जाना जा सकता है, पर सूक्ष्म आदिक पदार्थोंका स्पष्ट

http://www.jainkosh.org
Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/
बोध उस ही ज्ञानसे हो सकता है जो ज्ञान इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा नहीं रखता और फिर जो ज्ञान इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा न रखकर स्वभावसे उत्पन्न होता है वह ज्ञान एक स्वरूप होगा। नानास्वरूप नहीं हो सकते। कार्यमें नानापन तब आता है जब कारणोंका नानापन हो। जो ज्ञान केवल आत्माके स्वभावसे ही विकसित होता है, इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा नहीं रखता है उस ज्ञानमें नानापन नहीं हो सकता। वह एक ही ज्ञान है, जिसे केवल ज्ञान कहते हैं। तो यहां तक इतना सिद्ध हुआ कि परमाणु आदिक सूक्ष्म पदार्थ किसीके प्रत्यक्ष होते हैं और जिस ज्ञानके द्वारा यह प्रत्यक्षीभूत होता है वह ज्ञान इन्द्रिय और मनसे उत्पन्न नहीं होता। यों अतीन्द्रिय ज्ञानके द्वारा सारा लोकालोक, विश्व किसीके द्वारा एक साथ ज्ञात होता है।

सकलप्रत्यक्ष ज्ञानकी इन्द्रियानिन्द्रियानपेक्षता इस प्रसंगमें यदि यह पूछेगा कोई कि हम यह कैसे निश्चय बनायें कि वह ज्ञान इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा नहीं रखता तो सिद्धि सुनो किसी भी तत्त्वकी सिद्धि करनेके लिये जितना समर्थ प्रत्यक्ष ज्ञान होता है उतना ही समर्थ अनुमान ज्ञान होता है। लोक व्यवहारमें अनुमानका अर्थ लच्चड़ ज्ञान करते हैं जिस ज्ञानमें दम नहीं है, हाँ अनुमानमें तो ऐसा ही लगता है। पर न्याय शास्त्रमें अनुमान प्रमाणको उतना ही ठोस माना गया है जितना ठोस प्रमाण प्रत्यक्ष रहता है। अन्तर इतना होता है कि प्रत्यक्ष प्रमाण तो विशद होता है और अनुमान प्रमाण अविशद होता है, जैसे कि आजकी मानी हुई दुनियाका नक्शा है, उसे देखकर ज्ञान करते हैं कि यह अमेरिका है, यह एक जर्मन है—एक तो यह ज्ञान और कोई पुरुष अमेरिका हो आये और उसने समझ लिया कि यह अमेरिका है एक यह ज्ञान। इन दोनों ज्ञानोंमें झूठ तो किसीको न कहा जायगा। दोनों ही दृढ़तासे कहते हैं कि अमेरिका यही है - और कितनी ही बातें वह भी न बता सकेगा जो अमेरिकासे आया हो। और उससे अधिक बातें वह बता देगा जिसने भूगोलसे, इतिहाससे, नक्शोंसे ज्ञान किया है। लेकिन नक्शोंसे ज्ञान वाला ज्ञान अविशद है और जो स्वयं हो आया वहां, उसका ज्ञान स्पष्ट है। तो विशदता और अविशदतामें तो अन्तर है किन्तु प्रमाणतामें अन्तर नहीं है। प्रभुका ज्ञान इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा नहीं रखता है, इस बातको अनुमान प्रमाणसे सिद्ध कर रहे हैं। योगि प्रत्यक्ष इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा न रखकर ही होता है, क्योंकि वह ज्ञान सूक्ष्म आदिक पदार्थोंको विषय करता है। जो इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा करके उत्पन्न होता है वह ज्ञान सूक्ष्म आदिक पदार्थोंको विषय नहीं कर सकता। जैसे हम आप छद्मस्थ जीवोंको प्रत्यक्ष और योग्यका ज्ञान सूक्ष्म आदिक पदार्थोंको विषय करता है, इससे सिद्ध है कि वह ज्ञान इन्द्रिय और मनसे उत्पन्न नहीं होता।

साध्यविकल्पोंके अडङ्गापर अनुमानोच्छेदका प्रसङ्ग—ये समस्त पदार्थ किसीके प्रत्यक्ष हैं, ऐसा साध्य बनानेपर जो लोग यह अडङ्गा लगा देते हैं कि अच्छा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बतावो एक ज्ञानके द्वारा प्रत्यक्ष है या अनेक ज्ञानोंके द्वारा प्रत्यक्ष है ? ऐसा अड़ंगा लगानेपर तो हम उनके किसी भी सही अनुमानको सिद्ध न करने देंगे। हम इसमें उनसे पूछ सकते हैं। जैसे कि कोई अनुमान बनाये कि इस पर्वतमें अग्नि है, धुवाँ होने से। जैसे रसोईघर याने रसोईघरमें अग्नि है, धुवाँ होनेसे यह बार-बार जाना, सो ऐसे ही धुआँ होनेसे पर्वतमें भी अग्नि है। यह अनुमान हुआ तो सही है ना, अग्नि के रहनेकी बात तो सही है ना, पर हम इसे भी सिद्ध न होने देंगे। वहाँ पूछा जा सकता है कि तुम किस अग्निको वहाँ सिद्ध कर रहे हो ? इसको स्पष्ट समझनेके लिए थोड़ा यों जानो कि एक पुरुष चला जा रहा है देशाटनको, रास्तेमें उसने किसी छोटे पहाड़पर बहुत सा धुवाँ देखा तो देखकर वह ज्ञान करता है कि इस पर्वतमें अग्नि है, धुवाँ होनेसे। जहाँ जहाँ धुवाँ होता है वहाँ वहाँ अग्नि होती है जैसे रसोईघर। तो इस अनुमानमें जो पर्वतमें अग्नि सिद्ध कर रहे हो वह क्या पर्वतमें रहने वाली अग्नित्वसे सहित अग्निको सिद्ध कर रहे हो या दृष्टान्तमें आई हुई अग्निसे विशिष्ट अग्निको सिद्ध कर रहे हो ? क्या मतलब इस विकल्पका, कि रसोईघरमें जो अग्निपना है उससे सहित अग्निको पर्वतमें सिद्ध कर रहे हो या पर्वतका स्वयं जो अग्निपना है उससे सहित सिद्ध कर रहे हो ? देखिये ! अनुमानको जब बिगाड़ना है, उसकी कोई बात हम आगे बढ़ने ही नहीं देना चाहते हैं तो उसका उपाय है कि ज्यादह विकल्प करके उसका दिमाग बिगाड़ दें। तो जो सब्य अग्नि है जिसको हम सिद्ध करना चाहते हैं उस अग्निके धर्मवाली अग्निको सिद्ध करना चाहते हैं तो यह विरुद्ध हेतु है, क्योंकि वह अग्निपना दृष्टान्तमें नहीं है। पर्वतकी अग्नि रसोईघरमें नहीं पहुँची। यों दृष्टान्त साध्यविकल भी हो जायगा। उसका कोई दृष्टान्त ही न मिलेगा। यदि कहो कि हम रसोईघरकी अग्निके धर्मसे सहित अग्निको सिद्ध कर रहे हैं तो बिल्कुल विरुद्ध बात है। वहाँकी आग वहीं है। तो यों विकल्प बनाकर कुछ सिद्धि ही नहीं हो सकती। यदि यह कहो कि पर्वत और रसोईघर दोनों जगह पाई जाने वाली जो अग्नि सामान्य है हम उसको सिद्ध कर रहे हैं तो तुम्हारी बात ठीक बैठेगी। इस प्रकार यह अनुमानसे न तो एक ज्ञानके द्वारा प्रत्यक्ष है ये, अभी न यह सिद्ध कर रहे और अनेक ज्ञानों द्वारा प्रत्यक्ष हैं ये परमाणु आदिक, न यह सिद्ध कर रहे, किन्तु प्रत्यक्ष सामान्य सिद्ध कर रहे। तो जब यह सिद्ध हो जाता है कि परमाणु आदिक पदार्थ किसी न किसीके द्वारा प्रत्यक्ष होता ही है फिर यह बतावेंगे कि यह सब किस ज्ञानके द्वारा प्रत्यक्ष होता है। इस प्रकार इस अनुमानके बताये गए साध्यको दोष नहीं दिये जा सकते !

प्रमेयत्व हेतुमें विकल्प करके शङ्काकार द्वारा दोषापादन अब शङ्काकार हेतुमें दोष ढूंढता है, इस अनुमानमें चूंकि यह बात कही गयी कि परमाणु आदिक पदार्थ किसीके प्रत्यक्ष हैं प्रमेय होनेसे, अर्थात् इसमें ज्ञेयपना है, किसी न किसीके द्वारा जाना जा सकता है। तो जरूर किसी के प्रत्यक्ष है। जो बात किसी न

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

किसीके द्वारा जानी जा सकती है वह अर्थ किसीके प्रत्यक्ष होती है। तो इसमें जो प्रमेयत्व हेतु दिया है इस प्रमेयत्वका अर्थ क्या है ? अब शंकाकार हेतुमें दोषके खोज की पकड़ कर रहा है। क्या सर्वज्ञके ज्ञानमें आने वाले प्रमेयके धर्म करके सहित प्रमेय हेतु मानते हो या हम आप छद्मस्थोंके प्रमाणमें जिस प्रकार ज्ञेय होता है उस प्रकार का ज्ञेयपना मानते हो ? या दोनों जगह साधारण सामान्य स्वभाव रखने वाला प्रमेयपना मानते हो ? पहिली बात तो यों अयुक्त है कि उसीका ही तो विवाद चल रहा कि सर्वज्ञ है कि नहीं, और हेतु तुम दे रहे कि सबको जानने वाले प्रमाणमें जैसा प्रमेयपना आया करता है ऐसा प्रमेय है इस कारण यह पदार्थ किसीके प्रत्यक्ष है। तो उस ही हेतुमें विवाद है तो कैसे वही हेतु दिया जा सकता है ? यदि हेतुमें ही सर्वज्ञता मान ली गई तो सर्वज्ञता सिद्ध करनेके लिए हेतु देना ही व्यर्थ है। जैसे कोई कहे कि इस पर्वतमें अग्नि है—अग्नि होनेसे, इसका कोई अर्थ भी है क्या ? अग्नि होनेसे, इसे यदि स्वीकार कर लिया तो फिर अनुमान बनानेकी जरूरत क्या है ? इसी प्रकार 'प्रमेय होनेसे' इसका अर्थ यह लगा लिया कि सबको जानने वाला जो प्रमाण है उस प्रमाणके द्वारा प्रमेय है। तो हेतुका अर्थ ही यह हो गया कि सब किसीके द्वारा प्रत्यक्ष है क्योंकि प्रत्यक्ष होनेसे। तो इसका अर्थ तो कुछ भी नहीं रहा, और फिर प्रमेयत्व हम आप लोगोंमें पाया नहीं जाता। जिसका तुमने दृष्टान्त दिया, अग्नि आदिकका, उसमें भी ऐसा प्रमेय नहीं पाया जाता कि सबको जानने वाले ज्ञान में आया हुआ प्रमेय हुआ। यदि कहो कि लोकके प्रमाणमें जैसा प्रमेय आता है वह प्रमेय मानते हैं तो हम लोगोंके प्रमाणमें प्रमेय किस प्रकार आता है तो वह तो यहां स्पष्ट है, उससे तो सर्वज्ञताकी सिद्धि नहीं हो सकती। यदि सामान्य कहो तो जो दोनोंमें रहे, ऐसा कोई सामान्य नहीं होता। सामान्य तो सामान्य होता है, उसमें आपत्ति नहीं है। तो यों प्रमेयत्व हेतु देकर भी सर्वज्ञको सिद्ध नहीं किया जा सकता है। ऐसी यह शंकाकार शंका कर रहा है।

परमार्थतत्त्वकी बुद्धिकी दुर्लभता—देखिये ! सर्वज्ञको न मानने वाली बात तो आसान है। प्रायः सभी लोग नास्तिक हैं अथवा चारुवाक हैं। जो सामने चीज दिखी उसे ही तो स्वीकार करना और जो सामने नहीं आया उसे न मान सकना यह तो साधारणतया सभी जीवोंकी बुद्धि है। जब नरक और स्वर्गोंका वर्णन शास्त्रों में आता है तो आजकलके भी कुछ विद्वान यह कहने लगे कि यह वर्णन माला अध्याय निकाल देना चाहिये। इसे कौन मान लेगा, पर जिसको तत्त्वके स्वरूपका दृढ़ निर्णय हुआ है जो कि सर्वज्ञ परम्परासे प्ररूपित है, जीवादिक ७ तत्त्वोंका स्वरूप क्या है, किस प्रकारसे परस्परमें निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है ? और किस तरहसे पदार्थोंमें स्वयं अपने आपकी योग्यता है ? पदार्थ अपने ही धर्ममें शाश्वत रहते हैं। अन्य समस्त पदार्थोंसे त्रिकाल विविक्त रहते हैं और किस प्रकार आश्रव, बंध, सम्वर, निर्जरा की परिणति बनती है ? इन सब वर्णनोंको जो कि इस अनुभवसे उतारकर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

निर्णीत कर सकते हैं जिन्हें जब वे सब बातें एकदम सही उतरती हैं तो प्रभुपर इतनी भक्ति उमड़ती है कि उनके कथनमें प्रतिपादनमें शङ्का नहीं हो सकती। भला हम किसी महापुरुषकी उन बातोंको तो झट मानलें जो हमारी आँखोंके आगेकी बात है और जो बातें ऐसी बतायें कि जहाँ तक हमारे नेत्र नहीं पहुँच सकते, उनको हम न मानें तो इसके मायने यह है कि हमें अपनी ही बुद्धिपर गौरव है, घमण्ड है, हम दूसरे की बातोंमें कुछ भी विश्वास नहीं रखते, और ऐसी मान्यता वाले तो एक मण्डूकन्याय वालोंकी तरह हैं जो कि एक संकुचित दायरेमें रहते हैं। जैसे कि कोई कुवाँके भीतर बैठा हुआ मेंढक हंस पक्षी से पूछे कि तुम कहाँ रहते? वह कहे कि मानसरोवरमें! ... मानसरोवर कितना बड़ा है? ...बहुत बड़ा। तो एक पैर फैलाकर उस मेढक ने पूछा क्या इतना बड़ा है? अरे इससे बड़ा! फिर उसने दूसरा पैर फैलाकर पूछा —क्या इतना बड़ा? अरे इससे भी बड़ा! फिर क्रमशः तीसरा और चौथा पर फैलाकर पूछा क्या इतना बड़ा? अरे इससे भी बड़ा! फिर खूब चारों पैर फैलाकर और पेटको भी खूब फुलाकर पूछना चाहा तो उसका पेट ही फट गया। वह मेंढक जान ही न पाया कि मानसरोवर कितना बड़ा है? जिसके कथनमें पूर्वापर कहीं विरोध नहीं, जो सुगम तत्त्व है वह तत्त्व जब शतप्रतिशत यथार्थ अनुभवमें आता है तो उन सर्वज्ञदेवकी वाणीमें जो परोक्षभूत कथन हो वह भी यथार्थ है। कर्मोंके बारेमें हम आप अनुमानसे कुछ जानते तो हैं कि हैं कर्म, होंगे कर्म कोई, किन्तु उन कर्म परमाणुवोंका प्रकृति, स्थिति, अनुभाग आदिकके कैसे विभाग और कैसी रचनायें, कैसे उनकी निर्जरा? एक एक समयकी बातका निरूपण जैसे करणानुयोग है उसमें ही कोई जो भी रचनायें परोक्षभूत बतायी गयी हैं वे आस्तिक पुरुषोंकी श्रद्धामें तो अवश्य रहती हैं और न मानने वाले नास्तिकोंकी संख्या तो अनन्तानन्त है। यां केवल आँखसे देखे उसे ही प्रमाण माने, ऐसी बुद्धि वाले लोग सर्वज्ञको न माननेमें अपनी युक्तियाँ दे रहे हैं। अभी शङ्काकारका पक्ष सुनते जाइये। समाधान बादमें देंगे।

आगमसे भी सर्वज्ञत्वसिद्धिके अभावकी आशङ्का—ज्ञानको निरावरण और अशेषज्ञताका स्वभाव वाला न मानने वाले लोग शङ्का कर रहे हैं कि सर्वज्ञकी सिद्धि प्रत्यक्षसे भी नहीं हो सकी, अनुमानसे भी नहीं हो सकी और आगमसे भी सर्वज्ञकी सिद्धि नहीं होती है। जिस आगमसे सर्वज्ञ सिद्ध करोगे वह आगम नित्य होता हुआ सर्वज्ञका प्रतिपादक है अथवा अनित्य होता हुआ सर्वज्ञका प्रतिपादक है? नित्य आगमका अर्थ है कि जिसे किसीने न बनाया हो, अनादि कालसे चला आया हो वह तो है नित्य आगम और जो किसी आचार्यने, ऋषिने, पण्डितने बनाया हो वह है अनित्य आगम। नित्य आगम तो सर्वज्ञका प्रतिपादक हो नहीं सकता क्योंकि सर्वज्ञ हुआ है किसी समय जीव और आगत है अनादिकालसे, तो सर्वज्ञसे पहले आगम है। जो चीज पहिले है, आगम है, आदिवान चीजका जिकर क्या कर सकेगा, एक बात। दूसरी बात ऐसा कोई आगम नित्य है नहीं जिससे सर्वज्ञत्वका प्रतिपादन बना हो।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/
और यदि आगम है भी नित्य तो वह किसी भी सद्भावमें प्रमाण नहीं है किन्तु कार्य के अर्थमें उसकी प्रमाणता है। मीमांसक सिद्धान्त आगमको तो मानते कि है कोई वेद और है नित्य लेकिन उसका अर्थ वस्तुके स्वरूपका प्रतिपादन करना नहीं है किन्तु लोगोंको यज्ञमें, धर्ममें, व्यवहारमें लगानेका प्रयोजन है। तो नित्य आगम तो सर्वज्ञत्व का प्रतिपादन करता नहीं। अनित्य आगमकी बात यदि कहोगे तो यह बतलावो कि वह अनित्य आगम जो सर्वज्ञको सद्ध करे वह सर्वज्ञके द्वारा बनाया हुआ है या किसी अन्य पुरुषके द्वारा बनाया हुआ है? यदि कहो कि सर्वज्ञके द्वारा बना हुआ है तो अन्योन्याश्रय दोष हो गया। पहिले सर्वज्ञके द्वारा प्रणीत है आगम यह सिद्ध हो तो आगममें प्रमाणता आये, और आगम जब प्रमाणभूत सिद्ध हो जाय तो उसमें सर्वज्ञकी बात लिखी हो तो सर्वज्ञकी बात सिद्ध हो सके! यदि कहो कि आगम किसी अन्य पुरुषने बनाया तो अन्य पुरुषोंकी बात तो पागलोंकी तरह मानी जायगी सर्वज्ञके सम्बन्धमें, अन्य पुरुष जो सर्वज्ञ नहीं है कुछ जानते ही नहीं है, उनकी बातोंका क्या मूल्य? इस प्रकार सवज्ञकी सिद्धि आगमसे भी नहीं हो सकती।

उपमानप्रमाणसे भी सर्वज्ञत्वसिद्धिके अभावकी आशङ्का— शङ्काकार कह रहा है कि सर्वज्ञकी सिद्धि देखो न प्रत्यक्षसे हुई न अनुमानसे, न आगमसे और उपमान प्रमाणसे भी सर्वज्ञकी सिद्धि नहीं होती। एक प्रमाण है उपमान! जैसे जङ्गलमें जा रहे हैं और वहाँ एक रोझ देखा तो यों ज्ञान करना कि यह रोझ गाय के सदृश है तो यह उपमान हो गया। रोझको बताया है और गायकी तुलनासे बताया है तो उपमान तो तब बनता है जब दोनोंका प्रत्यक्ष हुआ हो। यहाँ देखो रोझको सामने देख रहे हैं और गायका कई बार प्रत्यक्ष किया है तो उसका स्मरण हो रहा और रोझका प्रत्यक्ष हो रहा तब यह उपमान कर सकते हैं कि यह रोझ गायकी तरह है। सदृशताकी तुलनाकी बात वहीं तो आयगी जहाँ दोनोंका प्रत्यक्ष हुआ हो, अन्यथा नहीं आ सकती। किन्तु कोई सर्वज्ञ प्रत्यक्षसे देखा तो गया नहीं जिससे कि उससे किसीकी सदृशता लगायें और उसमें उपमान प्रमाण लगा सकें कि यह सर्वज्ञ किसकी तरह है? जिसने कभी सर्वज्ञको देखा नहीं वह सर्वज्ञको क्या बतायेगा? तो उपमासेसे भी सर्वज्ञत्वकी सिद्धि नहीं होती।

अर्थापत्ति प्रमाणसे भी सर्वज्ञत्वकी सिद्धिके अभावकी आशङ्का— प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, उपमान इन चारों प्रमाणोंसे सर्वज्ञत्वका निराकरण करनेके बाद शङ्काकार कह रहा है कि सर्वज्ञत्वकी सिद्धि अर्थापत्तिके प्रमाणसे भी नहीं हो सकती। अर्थापत्ति प्रमाण उसे कहते हैं जिसके बिना जो बात न हो उसे बताकर उसकी सत्ता सिद्ध करना। जैसे अग्निके बिना धुवाँ न हो सके तो धुवाँ बताकर अग्नि सिद्ध करना कि यहाँ अग्नि है. यह अर्थापत्ति प्रमाण कहलाता है। तो अर्थापत्ति प्रमाणस भी सर्वज्ञकी सिद्धि नहीं हो सकती, क्योंकि सर्वज्ञके बिना न उत्पन्न हो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ऐसा कोई पदार्थ किसी प्रमाणसे जाना नहीं गया। यदि यह कहो कि धर्म आदिकका जो उपदेश है, धर्म अधर्म पुण्य पाप इनके सम्बन्धमें जो उपदेश है वह सर्वज्ञके बिना नहीं हो सकता और उपदेश पाया जाता है इससे सर्वज्ञकी सिद्धि हो जायगी। तो शङ्काकार उत्तर देता है कि यह बात भी तुम्हारी यों ठीक नहीं कि धर्म आदिकका उपदेश बहुतसे लोग सुनते हैं, ग्रहण करते हैं और वे उनके नाना अर्थ लगाते हैं और सर्वज्ञके अभावमें भी धर्म आदिक उपदेश सम्भव हैं। इस शङ्काकार के सिद्धान्तके अनुसार धर्म अधर्मका उपदेश वेद आगमसे चलता है, किसी सर्वज्ञकी मूल परम्परासे नहीं चलता। अतः अर्थापत्ति प्रमाणसे भी सर्वज्ञत्वकी सिद्धि नहीं होती।

सर्वज्ञत्वके अभावमें शङ्काकारकी शङ्काओंका संक्षिप्त तात्पर्य— शङ्काकार अपनी शङ्कायें रख रहा है कि देखिये! सर्वज्ञका हम लोगोंको प्रत्यक्ष तो हो नहीं रहा, आँखों तो सर्वज्ञ दिखता नहीं, तो उसे हम कैसे मानलें? कोई हेतु भी नजर नहीं आता अथवा सर्वज्ञका कोई एक देश अंश समझमें आ जाय, जिससे हम अनुमान कर सकें ऐसा भी कोई साधन विदित नहीं होता। न नित्य आगमसे सर्वज्ञकी सिद्धि है, न अनित्य आगमसे। जितनी भी सिद्धि है मात्र वचनोंसे, ये लोग अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार अर्थ लगाया करते हैं। यदि सर्वज्ञकी चीज होती यह देशना, यह आगम रचना तो इसके कई अर्थ क्यों लगते? जो अर्थ होता वह लगना चाहिए था। तो आगमसे भी नहीं जाना जाता। सर्वज्ञकी तरह कोई आदमी मिले जिससे कि हम उसकी तुलना कर सकें कि देखो सर्वज्ञ इसकी तरह होता है, ऐसा भी कोई नहीं जँचता। तो किस तरह मान लिया जाय कि सर्वज्ञ कहीं दुनियामें है, किसी भी प्रमाणसे सर्वज्ञकी सिद्धि नहीं होती। इस प्रकार शङ्काकारने अपनी शङ्का रखी है।

अन्यत्र भी सर्वज्ञकी अप्रत्यक्षताकी आशङ्का— अप्रत्यक्षवादी सर्वज्ञके अभावके ही सम्बन्धमें सर्वज्ञवादियोंसे फिर भी कह रहा है कि यदि तुम यह कहोगे कि इस समय ही हम लोगोंके ज्ञानमें कोई सर्वज्ञ नहीं है, हमारा प्रत्यक्ष इस समय सर्वज्ञको सिद्ध नहीं कर रहा, लेकिन किसी दूसरे देशके लोगोंको तो सर्वज्ञ सिद्ध हो रहा होगा अथवा चौथे कालमें तो लोग सर्वज्ञके दर्शन करते होंगे, तो यह बात भी तुम्हारी युक्त नहीं है, क्योंकि जिस जातिका जो प्रमाण होता है उस प्रमाणसे ही जातिका पदार्थ दीखा करता है। जैसे आँखोंसे जो देखा गया तीन कालमें भी वैसा ही दिखेगा, वही दिखेगा। आज हमें सर्वज्ञ नहीं दिख रहा तो कैसे कल्पना करें कि कोई सर्वज्ञ था या विदेह आदिकमें है या आगे होगा? जिस जातिके प्रमाणसे जैसा जाना जाता है उस जातिके प्रमाणसे वैसा ही सब जाना जायगा। जैसे इस देश कालमें हम जिस प्रत्यक्ष आदिकसे जान रहे हैं वैसे ही अन्य देश कालोंमें भी वहाँके लोग भी उसी प्रकारका रूपीमूर्तिक अर्थको जानेंगे। सर्वज्ञको ग्रहण करने वाला कहीं प्रत्यक्ष हो ही नहीं सकता।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सर्वज्ञत्वनिषेधक प्रत्यक्षके स्वरूपमें विकल्पोंके रूपमें प्रतिशङ्का — अब शङ्काकार ही फिर यह कह रहा है स्याद्वादकी ओरसे कोई समाधान उठाकर अथवा इस समय सर्वज्ञवादी ही कह रहा है यों मानकर सुनिये कि तुम जो सर्वज्ञका निषेध कर रहे हो प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणसे तो क्या जिस प्रकार ये इन्द्रिय आदिक जनित प्रत्यक्ष ज्ञान सर्वज्ञ अर्थको नहीं सिद्ध कर पा रहे हैं क्या इस ही प्रकार का देशान्तरमें या अन्य समयोंमें प्रत्यक्ष आदिकके द्वारा तुम सर्वज्ञका अभाव सिद्ध कर रहे हो या अन्य प्रकारके प्रत्यक्ष आदिकके द्वारा सर्वज्ञका अभाव सिद्ध करते हो ? यदि ऐसे ही चतुर्थकाल आदिकमें प्रत्यक्षका अभाव सिद्ध करते हो तो हम मानते हैं। इस प्रकार प्रत्यक्ष तो ऐसी ही चीज जानेंगे जैसा हम यहाँ जानते हैं। और, यदि दूसरे प्रकारके प्रत्यक्षसे तुम सर्वज्ञका अभाव सिद्ध कर रहे हो तो यह बात तुम्हारी अयुक्त है। फिर तो हम तुम्हारे सिद्धान्तमें भी बाधा उपस्थित कर सकते हैं। जैसे कि तुम मीमांसक आदिक लोग यह मानते हो कि यह दुनिया किसी बुद्धिमानके द्वारा बनायी गई है क्योंकि इन सब चीजोंमें आकार पाया जाता है, जिस जिस चीजमें आकार पाया जाय वह किसी बुद्धिमानके द्वारा बनाया गया होता है। जैसे घड़ेमें आकार है, उस आकारको कुम्हार बनाता है। इसी तरह ये पर्वत, वृक्ष आदिकके आकार बनाये गये हैं। और, वह बुद्धिमान है एक ईश्वर। तो हम तुम्हारे इस सिद्धान्तमें भी बाधा उपस्थित कर सकते हैं कि जैसे यहाँके शिक्षा लेने वाले छद्मस्थ लोग अल्पज्ञजन घट आदिकके बनाने वाले हैं, क्या इस ही प्रकारका कोई बुद्धिमान है इस जगतका बनाने वाला ? यदि है तो वह तो हम लोगोंकी तरह ही एक संसारी प्राणी हो गया, उसमें बनानेका सामर्थ्य ही नहीं हो सकता। और, अन्य प्रकारसे हम मान नहीं सकते क्योंकि सर्वज्ञके अभावमें भी तुम अन्य प्रकारका प्रत्यक्ष नहीं मान रहे। इसपर पूर्वपक्षकार मीमांसक सिद्धान्तकी ओरसे उत्तर आयगा।

आत्मतत्त्वके अपरिचयमें सर्वज्ञत्वके अभावकी आशङ्का — इस प्रसङ्गमें इतनी बात जान लेने की है कि मूल बात यह चल रही है कि स्याद्वादी लोग, आत्मा की यथार्थ श्रद्धा करने वाले लोग यह बात रख रहे हैं कि आत्मा ज्ञानपुञ्ज है, ज्ञान का जो पिटारा है वही आत्मा है, इन रूप, रस, गंध, स्पर्श आदिक रूप नहीं है। तो रूप नहीं है, तो यह ज्ञानस्वरूप है, यह ज्ञानस्वरूप अपना ऐसा स्वभाव रखता है कि यह जानता ही जाय। ज्ञानमें जो रुकावट पड़ी है वह इन इन्द्रियोंके कारणसे पड़ी है। अज्ञानी जन तो यों देखकर खुश होते है कि देखो हम इन्द्रिय द्वारा जानते हैं, उन इन्द्रियोंमें प्रेम करते हैं, उन इन्द्रियोंका आधार मानते हैं, पर तत्त्वज्ञानीजन यह समझते हैं कि हमारे ज्ञानमें ये इन्द्रियाँ बाधा डाल रही हैं, यदि ये इन्द्रियाँ न होतीं, यह शरीर न होता, केवल ज्ञानपुञ्जमें ही होता तो चूँकि इसमें जाननेका स्वभाव पड़ा है, तो समस्त विश्वका जाननहार होता। जैसे किसी मकानमें बैठा हुआ पुरुष खिड़कियोंसे बाहरकी चीजों को देखे तो वह पुरुष उन खिडकियोंको आधार मानता है

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उस देखनेके कामके सम्बन्धमें कि देखो खिड़कियोंका कितना बड़ा उपकार है, मैं
इत ी चीजें माहरकी देख रहा हूँ, पर यह विदित न ीं है कि तेरे देखनेका स्वभाव
ज्ञान तो इतना बड़ा है कि तू चारो तरफका सब कुछ देख और जान। ये भीट खिड़की
आदि तो तेरे देखने जानने में बाधायें हैं। ज्ञान अपने स्वभावसे सबका जाननहार है,
पर हमारा उपयोग पर पदार्थोंकी ओर लगता है हम बाहरकी ओर दृष्टि करके जानने
का प्रयत्न करते हैं नो यह हमारा प्रयत्न ज्ञानमें बाधक बनता है न कि साधक। अर्थात्
ज्ञानका जो स्वाभाविक कार्य है, अशेष पदार्थोंका जानना, वह रुक गया। तो ज्ञानमें
ऐसा प्रभाव है कि सबको जान जाय, यह तो स्वभाव है और और आवरण सारे हट
जायें विषय कषाय कर्म ये सब आवरण दूर हो जायें फिर कौन ऐसी शक्ति है जो
आत्माकी अशेषज्ञताको रोक ले, फिर यह आत्मा समस्त विश्वका जाननहार हो जाता
है, स्वभाव ही उसमें ऐसा पड़ा हुआ है। यों तो है आत्मतत्त्वकी बात, किन्तु यह है
एक स्वसम्वेदनजन्य। विषय कषायोंके उपशमसे बुद्धिमें जो निर्मलता आती है, जिसमें
आत्महितकी भावना जगती है, अपने आपके स्वरूपको दृष्टि होती है उस पुरुष द्वारा
जानने योग्य यह बात है लेकिन जिसे आत्माका परिचय नहीं, जो आत्माको ज्ञानस्व-
भावी भी नहीं मानता, भले ही एक दर्शन दार्शनिकताके नाते काट छाँट करके
सिद्ध करे कि ज्ञान जुदा पदार्थ है, आत्मा जुदा पदार्थ है, इनका समवाय होता है तब
आत्मा ज्ञानी कहलाता है बड़े बड़े शास्त्र भी रच दिये जायें लेकिन स्वानुभव जब तक
नहीं होता है तब तक आत्माके मर्मको कोई पा नहीं सकता। यों आत्मपरिचयसे
रहित अज्ञानी पुरुष सर्वज्ञका सद्भाव नहीं मानता। सर्वज्ञ कोई हो भी सकता है यह
भी कल्पनामें नहीं आता यों शङ्काकार सर्वज्ञके निराकरणमें अपनी सब समस्यायें रख
रहा है।

धर्मपरम्पराके स्रोतके परिचयसे धर्ममें दृढ भक्ति—धर्मसाधनाकी परम्-
पराका मूल क्या है किस स्रोतसे धर्मकी परम्परा चली आयी है उस मूलको जान
लेनेपर धर्मपालनमें स्पष्टता आ जाती है इस कारणसे यह भी जानना आवश्यक है
कि हमें जो धर्म मिला है जिसकी परम्परासे प्राप्त हुआ है तो उस परम्पराका मूल
कौन था इस सम्बन्धमें जो सर्वज्ञमें विश्वास न रखने वाले हैं वे कहते है कि अनादि
अनन्त वेद वाक्यसे इस धर्मकी परम्परा चली, किन्तु सर्वज्ञवादी कहते हैं कि किसी
समय कोई आत्मा ऐसा पवित्र निर्मल प्रकट होता है कि जो समस्त विश्वका जानन-
हार हो जाता है ऐसी सर्वज्ञदेवके कर्मक्रियाका वश जो उपदेश आदिक होते हैं, दिव्य
ध्वनि खिरती है, उसका समागम पाकर बड़े ऊचे विशिष्ट गणधर आदिक उनका
अवधारण करते हैं और फिर उससे यह धर्म अनादि अनन्त है, किसी दिन धर्म आ
गया हो ऐसी बात नहीं है क्योंकि धर्म कहते हैं वस्तुके स्वभावको वस्तु अनादिकालसे
है, जबसे वस्तु है तबसे धर्म है। उस धर्मको बतानेका काम समय समयपर हुआ
करता है। इसकी भी परम्परा अनादिसे है। जब किसी देशमें बहुत काल तक धर्मका

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

विच्छेद हो जाता है, प्रयोगरूपमें धर्म जब न रहा तब कोई एक विशिष्ट पुरुष उत्पन्न होता है जो अपने स्वानुभवके बलसे कर्मोंका विध्वंस करके सर्वज्ञता प्राप्त करता है। फिर विच्छेद होनेके बाद जो अब धर्मका प्रकाश हुआ तो उस परम्पराका स्रोत सर्वज्ञ हुआ। तो सर्वज्ञपनेकी सिद्धि जो इस प्रकरणमें की जा रही है वह अपने लिए अनेक दृष्टियोंसे उपकारी है। सर्वज्ञ जो होता है वह समस्त विश्वको एक साथ स्पष्ठ जानता है। उसका स्वरूप समझमें आ गया तो प्रभुमें भक्ति बढ़ेगी, प्रभुकी महिमा जानी जायगी और फिर धर्ममें भी दृढ़ श्रद्धान होगा कि इस धर्मकी परम्परा सर्वज्ञसे, वीत रागताके पोषणसे होती आयी, यह धर्मवचन यथार्थ है।

इन्द्रियादिजनित प्रत्यक्षसे सर्वज्ञत्वके अभावकी आशङ्का—यहाँ असर्वज्ञवादी सर्वज्ञत्वका खण्डन कर रहे हैं। और उस प्रसङ्गमें सर्वज्ञवादियोंने यह बात रखी थी कि जो तुम सर्वज्ञपनेका खण्डन करते हो, प्रत्यक्षके द्वारा सर्वज्ञ नहीं जाना जा सकता! तो क्या जैसे यहाँ लोग इंद्रियोंसे जानते हैं, सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष करते हैं? क्या ऐसा प्रत्यक्ष सर्वज्ञको सिद्ध नहीं कर सकता या अन्य प्रकार ये प्रत्यक्ष सर्वज्ञको सिद्ध नहीं कर सकते? दोनोंमें आपत्ति दी, तिसपर अब शङ्काकार उत्तर दे रहे हैं कि जिस प्रकारका हम लोगोंको प्रत्यक्ष होता है उस ही प्रकारकी प्रत्यक्षसे यह सिद्ध किया जाता है कि सर्वज्ञ कोई नहीं है। जब हमें प्रत्यक्षसे सर्वज्ञ न विदित हुआ तो दुनियामें कहीं जावो, किसीको भी प्रत्यक्षसे सर्वज्ञकी प्राप्ति नहीं हो सकती है क्योंकि और तरहसे हमने प्रत्यक्ष माना ही नहीं है। जो इन्द्रिय और मनसे न उत्पन्न हो ऐसा कोई प्रत्यक्ष नहीं हुआ करता। यों शङ्काकार अपनी शङ्काको व्यवस्थित बना रहा है, अनुमान प्रमाणसे भी यह सिद्ध है कि ये प्रत्यक्ष आदिक प्रमाण जिनके संबध में तुम विवाद कर रहे हो वह इन्द्रिय मन आदिक सामग्रीकी अपेक्षा रखकर नहीं होता, क्योंकि प्रमाण ही तो है। जैसे हम लोगोंके प्रमाण है, हम इन्द्रिय और मनकी सहायताके बिना क्या जान पाते हैं? प्रत्येक ज्ञानोंमें या तो हम इन्द्रियका व्यापार जुटाया करते हैं तब बात समझमें आती या मनका बल लगाया करते तब बात समझ में आती। किसीका ज्ञान ऐसा नहीं हो सकता जो इन्द्रिय मन प्रकाश आदिककी अपेक्षा न रखे। शङ्काकार यह सिद्ध कर रहा है कि जैसा हम लोगोंको प्रत्यक्ष ज्ञान होता है बस प्रत्यक्ष ज्ञान ऐसा ही हुआ करता है। इससे निराला कोई अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष होता हो जो केवल आत्मशक्तिसे जानता हो ऐसा कोई प्रत्यक्ष नहीं है।

इन्द्रियोंमें अविषयग्रहणके अतिशयकी असंभवताकी तरह प्रत्यक्ष ज्ञानमें सर्वज्ञत्वकी असंभवता—कोई यह भी दोष नहीं दे सकता कि भाई जैसे गृद्ध है तो वह दूरसे ही देख लेता है ऐसे ही कोई ऐसा प्रत्यक्ष होता है वह उस प्रत्यक्षसे भी और विशेष जान लेता है, अथवा जैसे रात को चलने फिरने वाले पशु होते हैं वे बिना ही प्रकाशके खूब देख लेते हैं इसी प्रकार कोई प्रत्यक्ष ऐसा होता है जो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा रखे बिना वस्तुको जान लेता है । यह बात भी ठीक नहीं है, क्योंकि उन सब ज्ञानोंसे इन्द्रिय आदिकके उपयोग की आवश्यकता रहती ही है, इन्द्रिय आदिककी अपेक्षा किए बिना गृद्ध अथवा बिल्ली आदिक जानवरोंको ज्ञान उत्पन्न नहीं होता, बड़े बड़े आचार्य हुए हैं जिन्होंने अनुमान प्रमाणकी बहुत बड़ी सूक्ष्म व्याख्या की है जिन्होंने बड़े ऊँचे आगम लिखे हैं, भले ही लिखा, भले ही बड़ी सिद्धि कर ली, इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा रखे बिना वे कुछ भी नहीं कर सके हैं। कितने भी इंद्रियमें अतिशय आजायें पर इंद्रियाँ अपने विषयका उल्लंघन करके नहीं जान सकती । शङ्काकारका यह अभिप्राय है कि जितने भी प्रत्यक्ष होते हैं वे इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा करके होते हैं और उस प्रत्यक्षमें यह सामर्थ्य नहीं अथवा उस प्रत्यक्षका यह विषय ही नहीं कि वह सर्वज्ञको जाने अतएव सर्वज्ञ कोई नहीं होता है। जो कुछ भी ज्ञान है वह सब हम आप जैसा ही ज्ञान होता है जो किसी भी प्रकारसे हम अपने ज्ञानको बढ़ालें । जहाँ भी अतिशय देखा गया, जैसे गृद्धोंने बहुत दूरसे देख लिया तो आखिर देख ही तो लिया, और कुछ तो नहीं किया, अतिशय अपनी सीमामें हुआ करता है, अपना विषय छोड़कर अतिशय नहीं होता।

ज्ञानमें सर्वविषयज्ञताका अभाव—कोई पुरुष यदि बुद्धिमें बहुत बढ़ जाय तो वह एक दूसरेकी अपेक्षा बुद्धिमें बड़ा है, पर यह नहीं है कि उनको अतीन्द्रिय ज्ञान हो गया इसलिए बड़ा है। भले ही कोई बहुत उच्च जानकार हो फिर भी वह अतीन्द्रियके ढङ्गसे जानकार नहीं हो सकता जानेंगे तो इन्द्रियसे हो। कितना ही बुद्धिमान् हो कोई, बड़े सूक्ष्म अर्थको भी जाननेमें समर्थ हो, पर वह अपनी ही जातिमें जानेगा, कोई यदि एक शास्त्रमें बड़ा निपुण हो गया तो उस शास्त्रकी निपुणतासे यह न मान लेंगे कि यह समस्त शास्त्रोंमें निपुण हो गया। व्याकरण जानने वाले लोग व्याकरण उत्पत्ति, शब्द कैसे बनते हैं? सब कुछ जान जायेंगे, पर वे नक्षत्र, तिथि, ज्योतिष आदिक विद्याओंमें प्रवीण हो जायें सो नहीं हो सकता। इसी प्रकार ज्योतिषी लोग भले ही तिथि नक्षत्र आदिक का भरपूर ज्ञान करलें पर वे किसी शब्दके सिद्ध करनेमें असमर्थ हैं। तो ज्ञानकी सीमा होती है। ज्ञान जानता है इन्द्रिय मनसे जानता है उस ज्ञानमें यह सामर्थ्य नहीं है कि वह समस्त विश्वको एक साथ बिना इन्द्रिय मनकी सहायताके जान जाय ! शङ्काकार सर्वज्ञताका खण्डन कर रहा है कि लोकमें सर्वज्ञ कहीं भी होता नहीं है। उसका मतलब यह है कि जो अनादि नित्य आगम हैं वेद वाक्यादिक उनसे ही धर्मकी उत्पत्ति होती है, सर्वज्ञ कोई नहीं होता। और, जब कभी कोई जीव उन धर्मादिकका पालन करके मुक्त भी हो जाता है तो मुक्तिका अर्थ यह है कि वह कुछ समयको एक ज्योतिमें लीन हो गया, उसकी भी हद है। किसी समय वह उस लीनतासे हट जाता है और फिर संसारमें जन्म मरण करना पड़ता है।

प्राप्त ज्ञानमें भी विशारदताका अभाव—भैया ! यों समझिये कि जो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कुछ दिखता है, समागम है बस इतना ही मात्र सब कुछ है, अतीन्द्रिय पदार्थ कुछ नहीं है, ऐसा शङ्काकारका मंतव्य है और वह युक्तियाँ दे रहा है। प्रथम तो यह निर्णय नहीं कि जो जिस बातको जानता है वह उस बातमें पूर्ण विशारद है अथवा वह अपने विषयसे छूट नहीं सकता, और कदाचित् छूटा भी हो तो कोई किसी दूसरे विषयका अधिकारी तो न बन जायगा। चार विद्वान् थे—एक था वैयाकरण; व्याकरणका उच्च जानकार, एक था ज्योतिषी, एक था वैद्य और एक था नैयायिक! ये चारों सलाह करके चले किसी देश, कि चलो वहाँ धन कमानेका कोई उपाय बनायेंगे, उनके साथमें एक घोड़ा था, घोड़ेपर सारा सामान रखे थे। वे चारों पैदल जाते थे। रास्तेमें एक जगह वे ठहर गये। तो ज्योतिषी महाराजसे पूछा कि इस घोड़ेको किस दिशा में चरनेके लिए छोड़ दें? तो उस ज्योतिषीने विचारकर बता दिया कि अमुक दिशामें छोड़ दो। छोड़ दिया। अब वह घोड़ा स्वतन्त्र हो जानेसे कहींका कहीं चला गया। जब रसोई बनानेका प्रसङ्ग आया तो न्यायशास्त्रीसे कहा कि तुम जावो बाजार से घी ले आवो। वैद्य महाराजसे कहा कि तुम जावो बाजारसे जो निर्दोष सब्जी हो वह ले आवो! और, वैयाकरणको वहीं रसोई बनानेके लिये चूल्हेके पास छोड़ दिया, अब सुनो सबका हाल! नैयायिक गया घी लेने के लिये—एक गिलासमें घी लेकर चला। रास्तेमें सोचता है—घृताधारं पात्रं अथवा पात्राधारं घृतम्! घी पात्रके आधारमें है या पात्र घीके आधारमें है? बड़ी युक्तियां लगायीं पर विशेष समझमें न आया। तो परीक्षा करने के लिये उसने गिलासको औन्धा कर दिया। घी नीचे गिर गया। वह तो बड़ा खुश हुआ, ओह! मेरी समस्या हल हो गयी। घी पात्रके आधारमें है, पात्र घीके आधार नहीं है। घी जरूर धूलमें मिल गया, मिलने दो। जो ज्ञानके इच्छुक हैं उन्हें समस्याओंके हल होनेमें बड़ी खुशी होती है। फिर थोड़ी देरमें दिमाग ठिकाने आया तो उसी धूलसे मिले हुए घीको उस गिलासमें भरकर चला। वैद्य महाराज गये थे सब्जी लेने, अब वे सोचते हैं कि इस पालकमें ठंडका दोष है, मेथीमें पित्त बढ़ता है, यों और और भी अनेक चीजें सदोष देखीं। सोचा कि निर्दोष तो ये नीमकी पत्तियाँ हैं। सो नीमकी पत्तियाँ ही लेकर आये, हँसियासे विदारण करके दिया। अब वैयाकरणजी महाराज जब रसोईमें उसे उबाल रहे थे तो खदखद खदखदकी आवाज हो रही थी। होती है ना ऐसी ही आवाज?…हाँ होती है। तो उस शब्दको सुनकर कहा कि यह शब्द तो शुद्ध नहीं है। खूब सूत्रोंपर निगाह डाली। सोचा कि यह शब्द तो अशुद्ध है, फिर सोचा कि अशुद्ध बोलने वालेके मुखमें धूल डालना चाहिए। तो उस नीमकी पत्तीके सागमें उसने धूल छोड़ दिया। और, ज्योतिषी द्वारा बताई गई दिशामें छोड़ा हुआ घोड़ा तो स्वतन्त्र हो जानेसे कहींका कहीं चला गया था। तो इन ज्ञानोंका भी क्या हिसाब है? कोई ज्ञानमें कितना ही बढ़ जाय पर वह सब भावोंमें सब स्थानोंमें निष्णात हो जाय यह कोई नियम नहीं है।

ज्ञानकी इन्द्रियानिन्द्रियजन्यता होनेसे सर्वज्ञताकी असिद्धिका पूर्वपक्ष—

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कोई कितना ही जाने ? खूब जाने, शास्त्रोंसे जाने, प्रक्टिकल जाने, खूब सीखकर जाने, और तपश्चरण करके योग सिद्धि करके भी जाने, तो जैसा हम लोगोंका ज्ञान है उस ही जातिका तो ज्ञान बढ़ सकेगा। कोई अतीन्द्रिय ज्ञान हो जाय ऐसी स्थिति नहीं हो सकती, तो जितने भी पुरुष हैं, आत्मा हैं उन सबका प्रत्यक्ष ज्ञान हमारे ही प्रत्यक्षकी जातिका होगा। हमारा प्रत्यक्ष है इन्द्रिय और मन अपेक्षा रखकर जाननेका। तो ऐसा ही सबका है। कोई पुरुष अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष वाला नहीं हो सकता। इस प्रकार शङ्काकारने यह सिद्ध किया कि जितने भी ज्ञानी जीव हैं वे हम आप लोगोंकी ह तरह हुआ करते हैं, चाहे कोई कम जाने कोई उससे कुछ अधिक जाने। तो कितना हो कोई ज्यादह जाने, पर हम लोगोंकी जातिका उल्लंघन करके कोई नहीं जान सकता। इस कारण न कोई अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष है और न सर्वज्ञ है। शङ्काकार द्वारा यहाँ तक इस स्थलमें सर्वज्ञके निराकरणकी समाप्ति हुई।

सर्वज्ञत्वसाधक अनुमानमें प्रमेयत्व हेतुकी सामान्यता—अब असर्वज्ञत्वावादीकी शङ्काके सम्बन्धमें समाधान किया जाता है इस प्रसङ्गमें सबसे पहिले यह बात कही थी कि सर्वज्ञसाधक अनुमानमें जिसका कि रूप इस प्रकार है कि लोकमें ये सूक्ष्म, दूरवर्ती और अतीत भविष्यके पदार्थ किसी न किसीके द्वारा प्रत्यक्ष हैं, क्योंकि प्रमेय होनेसे, पदार्थ होनेसे, ज्ञेय हैं ना तो कोई इन्हें स्पष्ट भी जानता है इससे प्रमेयत्व हेतुमें दोष दिया था कि प्रमेयत्वका क्या अर्थ है ? क्या समस्त ज्ञेयोंमें व्यापकर रहने वाले प्रमाणके द्वारा प्रमेय है, ऐसे प्रमेयत्वकी बात कह रहे हो या हम लोग जिस प्रमाणके द्वारा प्रमेय हैं ऐसे प्रमेयत्वकी बात करते हो ? तो उसपर समाधान दिया जा रहा है कि हम प्रमेय सामान्यकी बात करते हैं। प्रमेय है अतएव किसी न किसीके द्वारा प्रत्यक्ष है। फिर इस प्रकारके विकल्प बढ़ानेसे तो यह बिड़म्बना बनेगी कि कोई जीव कुछ भी अनुमान प्रमाण न बना सकेगा। अच्छा, हम ही पूछेंगे कि कोई ऐसा अनुमान बनाता हो कि इस पर्वतमें अग्नि है, धुवां होनेसे। अनुमान तो सही है ना, लेकिन जैसे सर्वज्ञ साधक अनुमानके हेतुमें विकल्प उठा कर असर्वज्ञवादियोंने सर्वज्ञत्व नहीं सिद्ध करने दिया, उसी तरहके विकल्प उठाकर हम पर्वतमें अग्नि भी सिद्ध न करने देंगे, क्योंकि उनसे पूछा जायगा कि यह तो बतलावो कि जो धर्मी साध्य बनाया जा रहा है—यह पर्वत अग्नि वाला है तो अग्निवान पर्वतमें पाया जाने वाला धुवाँ इस हेतु में दिया है या जिस रसोई घरका दृष्टान्त देते हो उस अग्निमान रसोई घरमें रहने वाले धुवाँको हेतुमें लेते हो या दोनोंमें जो सामान्यरूप है उस धूम्रको लेते हो ? यदि कहो कि जिसको हम सिद्ध करना चाहते हैं उस ही अग्निवान पर्वतका धर्म है, धुवाँ, तो इसके मायने यह हुआ कि पर्वत अग्नि वाला है, अग्निवाला होनेसे। सीधा ही न बोलो, हेतु देनेकी क्या जरूरत ? और, तिसपर भी इसका दृष्टान्त ठीक न बन सकेगा—वह हेतु विकल हो जायगा, क्योंकि रसोई घरमें अग्निवान पर्वतका धर्मवाला धुवाँ नहीं है और फिर यदि कहो कि अग्निवान रसोई घरका धर्म है वह धुवां

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तो उस धुवाँसे तो रसोई घरकी अग्नि सिद्ध हो जाय, पर पर्वतकी अग्नि सिद्ध नहीं हो सकती। यदि कहो कि दोनों में रहने वाला सामान्य धुवाँको सिद्ध करना है तो भाई जैसे तुमने एक सामान्यको असम्भव बताया तो यह भी असम्भव हो जायगा। यदि यह कहोगे कि हम तो उस धुवाँ सामान्यकी बात कह रहे हैं जो कण्ठमें लग जाये जिससे कण्ठ रुक जाय। पर्वत वाली अग्नि है, रसोई वाली अग्नि है यह हम कुछ नहीं कहते। तो आचार्य कहते हैं कि बस अब तुम्हारी बुद्धि व्यवस्थित हुई। इसी तरह तो हम प्रमेय सामान्यकी बात कह रहे हैं। सर्वज्ञके प्रमाणमें प्रमेय होता है न उसकी बात कहते और न छद्मस्थके प्रमाणमें प्रमेय होता हे उसकी बात कहते, किन्तु जो जाना जाता है ऐसे प्रमेय सामान्यकी बात कह रहे हैं। अब उससे अनुमानका तुम खण्डन नहीं कर सकते हो, क्योंकि पदार्थ सब प्रमेय हैं।

पदार्थोंमें ६ साधारण धर्मोंमें प्रमेयत्व हेतुका स्थान—पदार्थमें ६ साधारण धर्म पाये जाते हैं—अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशवत्व और प्रमेयत्व। ये ६ गुण न होंगे तो कोई सत ही नहीं रह सकता। चाहे आकाश हो, चाहे पुद्गल हो, चाहे जीव हो यदि सत् है कुछ, तो उसमें ६ गुण अवश्य पाये जायेंगे। जैसे कि अस्तित्व गुण न हो तो सत्ता ही क्या रही? जब है ही नहीं कुछ। और, है तो माना जाय, तो पदार्थ नहीं रह सकना अर्थात् वह है अपने ही चतुष्टयसे है, परवस्तुके चतुष्टयसे नही है। यह बात सत्में है। है यदि सतमें न पड़ा हो तो उस है का अर्थ क्या रहा? कोई व्यक्ति ही न रहे, वस्तु ही न रहे। और, अस्तित्व भी माने, वस्तुत्व भी माने, किन्तु उसमें परिणमन कुछ न माने तो चीजकी हालत क्या रही, चीज ज्ञात ही क्या होगी? उसका अर्थ ही क्या रहेगा? तो द्रव्यत्वगुण यह व्यवस्था बनाता है कि प्रत्येक पदार्थ प्रतिसमय प्रतिक्षण निरन्तर परिणमता रहता है। लो चलो—वस्तु है, अपने स्वरूपसे है निरन्तर परिणमती है इतनी बात कह देने के बाद भी अभी व्यवस्था ठीक नहीं बन सकती। क्योंकि परिणमती तो है, पर कोई वस्तु आज अपने रूप परिणम रही, कल दूसरे रूप परिणम जाय, तो फिर व्यवस्था बन जायगी। तो अगुरुलघुत्व गुण इस अव्यवस्थाको बनाता है कि प्रत्येक पदार्थ परिणमता तो है पर अपने ही स्वरूपसे परिणमता है, परके स्वरूपसे नहीं परिणमता। आप लोग घरमें रहते हो, परस्परमें प्रेम भी हे, एक दूसरेका आदर भी करते हैं, एक दूसरेकी सज्जनता जानकर उनपर प्रसन्न होते हैं, इतना सब कुछ होनेपर भी कोई एक दूसरेका कुछ नहीं कर रहा। सभी अपनी अपनी कल्पनासे अपने आपका परिणमन कर रहे हैं। कोई भी परिस्थिति हो, हर स्थितियोंमें प्रत्येक जीव अपने आपमें अपना ही परिणमन करता है दूसरेमें नहीं। इससे अधिक और घटना क्या हो सकती कि मिट्टीको सानकर कुम्हार घड़ा बना रहा है, चाकपर रखकर जिस प्रकारसे वह अपने हाथ चला रहा है उस निमित्तको पाकर मिट्टी उस उस प्रकारका अपना आकार बना रही है, ऐसी जबरदस्तीके परिस्थितिमें भी आप सत्यार्थ दृष्टिसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

निहारें तो कुम्हार मिट्टी में कुछ कर रहा है क्या ? जितना कि कुम्हार माना गया है शरीर मात्र, वह अपने हाथ चला रहा है तो हाथकी क्रिया भी हाथमें ही समाप्त होकर रहती है। हाथके प्रदेशोंसे बाहर हाथकी कोई क्रिया, कोई गुण कोई बात नहीं पहुँचती, पर वहाँ निमित्त-नैमित्तिक भाव है कि ऐसी परिस्थितिको प्राप्त हुई वह मिट्टी अपने ये नाना रूप अङ्गीकार कर लेती है। सब स्थितियोंमें प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपसे परिणमता है, दूसरेके स्वरूपसे नहीं परिणमता। इतना सब मान लेनेपर भी यदि पदार्थके प्रदेश, पदार्थका आकार, पदार्थका विस्तार नहीं समझमें आया तो पदार्थके बारेमें हम जानकारी क्या करें ? ये सब होकर भी पदार्थमें अगर ज्ञेय हो जानेकी बात न हो, प्रमेयत्व शक्ति न हो, गुण न हो तो रहे जावो पदार्थ. कोई पदार्थ, जाने ही न जा सकेंगे तो व्यवस्था क्या बने ! यों ये ६ साधारण गुण प्रत्येक पदार्थमें हुआ करते हैं, और उससे ही व्यवस्था बनती है। तो चूँकि प्रमेयत्व है सब पदार्थोंमें अतएव सभी पदार्थ किसी न किसीके द्वारा प्रत्यक्ष हैं, और जिसमें प्रत्यक्ष है वही सर्वज्ञ कहलाता है।

सर्वज्ञत्वसाधक अनुमानमें प्रमेयत्व हेतुकी सामान्यरूपताका समर्थन—कोई पवित्र पुरुष सर्वज्ञ होता है. अर्थात् उसके ज्ञानमें सूक्ष्म आदिक पदार्थ ज्ञेय हुआ करते हैं क्योंकि सभी पदार्थ ज्ञेय हैं। इस अनुमानमें प्रमेयत्व हेतुमें शङ्काकारने दोष दिया था क्या सर्वज्ञके प्रमाणसे जो प्रमेय होता है उस ही प्रमेयको हेतु बना रहे हो या छद्मस्थके प्रमाणमें जो प्रमेय होता है उसे हेतु बना रहे हो ? उसके उत्तरमें स्याद्वादीने बताया था कि ऐसा तर्क करनेसे तो कोई भी अनुमान नहीं बनाया जा सकता। इस पर्वतमें अग्नि है धुवाँ होनेसे—जैसे रसोई घर ! तो वह हेतुरूप धुवाँ क्या पर्वतकी अग्निसे सम्बन्ध रखने वाला है या रसोई घरकी अग्निसे सम्बन्ध रखने वाले धुवाँको हेतु बनाया ? यदि पर्वतीय अग्निसे सम्बद्ध धूमको हेतु कहोगे तो अग्नि तो पहिले ही मान ली, फिर अनुमान बनानेकी क्या जरूरत ? और. रसोई घरकी अग्नि के धुवाँको हेतु बनावोगे तो उससे पर्वतकी अग्नि नहीं सिद्ध होगी, रसोई घरकी अग्नि सिद्ध होगी। इसपर शङ्काकार कहता है कि नहीं हम धुवाँ सामान्यको हेतु बनाते हैं। जो धुवाँ कण्ठ और आँखोंमें लग जाता है, विक्षेप उत्पन्न करता है ऐसे पर्वत और रसोई घर दोनोंमें व्यापने वाले सामान्य धुवाँको हम हेतु बना रहे हैं और वह रसोई घरके प्रदेशमें भी है और पर्वतके प्रदेशमें भी है। धूम सामान्यको हम हेतु बनाते हैं और वह धूम सामान्य इन दोनों जगहोंमें धूमसे कुछ विलक्षण नहीं है बल्कि दोनों जगह घटित होजाय ऐसे सामान्य धुवाँको हेतु बनाया है। तो यही उत्तर स्याद्वादीका है। प्रमाणका लक्षण किया गया है जो खुदका और परका निर्णायक हो—उस ज्ञानको प्रमाण कहते हैं। तो चाहे वह प्रमाण सर्वज्ञदेवका हो और चाहे छद्मस्थों का हो—प्रमाणका रूप दोनोंका समान है। तो दोनों जगह प्रमाणमें व्यापकर रहने वाला जो प्रमेयत्व धर्म है उस प्रमेयत्व धर्मको हम हेतु बनाते हैं और वह दोनोंसे

http://www.jainkosh.org
Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

विलक्षण नही है, दोनोंमें रहने वाला है, इस कारणसे प्रमेयत्व हेतु असिद्ध नहीं होगा। तब यह सिद्ध हो गया कि किसी न किसीके प्रत्यक्षमें सारा विश्व आता है क्योंकि प्रमेय होनेसे। यों सर्वज्ञकी सिद्धि होती है।

प्रसङ्ग और विपर्यय दिखाकर शङ्काकार द्वारा सर्वज्ञत्वकी सिद्धिमें बाधाका प्रदर्शन अब शङ्काकार पुन: शङ्का करता है कि प्रसङ्ग और विपर्यय होने के कारण सर्वज्ञतामें बाधा आती है। प्रसङ्ग और विपर्ययका क्या अर्थ है? किसी व्याप्यका सद्भाव बताकर किसी व्यापकका सद्भाव बताना वह तो प्रसङ्ग है और व्यापकका अभाव बताकर व्याप्यका भाव बतावे उसको विपर्यय कहते हैं। जैसे किसीने अनुमान बताया कि यह जो सामने खड़ा है यह वृक्ष है क्योंकि शीसम होनेसे। तो शीसम तो है व्याप्य और वृक्ष है व्यापक अर्थात् वृक्ष तो रहता है बहुत जगह और शीसम रहता है कुछ जगहमें शीसमके पेड़ थोड़े होते हैं और वृक्षके पेड़ सारे होते हैं। तो जहाँ व्याप्य मान लिया गया, शीसम जान लिया गया वहाँ व्याप्य मान लिया गया, शीसम जान लिया गया वहां व्यापक तो अपने आप सिद्ध हो गया। इसको कहते हैं प्रसङ्ग और व्यापक न रहे तो व्याप्य भी न रहे, इसे कहते हैं विपर्यय। जैसे भींटको ही कोई कहे कि यह शीसम नहीं है वृक्ष न होनेसे। जब पेड़ ही नहीं है तो शीसम कहाँ से होगा? यों प्रसङ्ग और विपर्यय ये दो साधन होते हैं किसी चीजको पहिचाननेके। तो प्रसङ्ग और विपर्ययके द्वारा सर्वज्ञता है किसीमें, समस्त पदार्थोंको जानता है इसमें बाधा आती है। वह कैसे? देखो शङ्काकार कह रहा है सब कि यदि सर्वज्ञका ज्ञान प्रत्यक्ष मानते हो तो वह ज्ञान पुण्य पापका ग्रहण करने वाला नहीं हो सकता, क्योंकि प्रत्यक्ष जो है वह विद्यमान चीजको ही ग्रहण किया करता है। पुण्य पाप धर्म अधर्म ये विद्यमान नहीं है, तो किसीके भी प्रत्यक्ष नहीं हो सकते, चाहे वह प्रत्यक्ष हमारा और चाहे आपके द्वारा कल्पित सर्वज्ञका हो, प्रत्यक्षका विषय ही नहीं है कि वह विद्यमानको ग्रहण करले। है कोई ऐसा पुरुष? जो प्रत्यक्षको, अविद्यमान अर्थको ग्रहण करता हो। सर्वज्ञके ज्ञानको यदि प्रत्यक्ष मानते हो तो वह धर्म अधर्म आदिकका ग्रहण करने वाला नहीं हो सकता क्योंकि, प्रत्यक्ष सत्-सम्प्रयोजक है अर्थात् जो पदार्थ वर्तमानमें मौजूद है उसका सम्बन्ध बने तब ज्ञान होता है प्रत्यक्षसे, इससे प्रत्यक्ष वर्तमानको ही ग्रहण करता है, धर्म आदिकको ग्रहण नहीं कर सकता। जब धर्म आदिकका ग्रहण न किया तो सर्वज्ञतामें यही तो खास बात थी, बाकी दुनियाभरके पदार्थोंको कोई अनेक प्रमाणोंसे जान जाय तब भी वह सर्वज्ञ न कहलायेगा। सर्वज्ञ तब होगा जब धर्म अधर्म अदृष्ट इनके भी जानने वाले हों, और कोई भी पुरुष धर्मादिकका जानने वाला होता ही नहीं है, धर्म अधर्म आदिकका परिज्ञान तो वेदसे हुआ करता है। यदि प्रत्यक्ष अविद्यमानको ग्रहण करने लगे अथवा असत् पदार्थोंका सम्बन्ध बनाने लगे तो वह प्रत्यक्ष नहीं कहला सकता। जैसे हम लोगोंको प्रत्यक्ष है। क्यों प्रत्यक्ष नाम पड़ा कि यह सद्भावको जानता है और विद्य-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मान पदार्थसे सम्बन्ध होता है तब जानते हैं, ऐसा शङ्काकार सर्वज्ञके बाधा डालने की बात पुष्ट कर रहा है कि लोकमें सर्वज्ञ कोई भी नहीं है, क्योंकि यह पुरुषके पते की बात नहीं है कि वह धर्म अधर्म पुण्य पाप अदृष्ट कार्य ऐसे सूक्ष्म तत्त्वोंका ज्ञान कर सके। उसका ज्ञान तो वेदसे आगमसे प्रारम्भ होता है।

प्रसङ्ग विपर्यय द्वारा सर्वज्ञत्वसाधक अनुमानमें बाधाका अभाव अब इस शङ्काका समाधान दिया जा रहा है कि जो यह कहा कि प्रसङ्ग और विपर्ययोंके द्वारा समस्त पदार्थोंका विषय होना बाधा जाता है अर्थात् कोई पुरुष सर्वज्ञ नहीं है यह कथन तुम्हारा मनोरथमात्र है, अर्थात् अपने ही मनमें अपनी ही कल्पनाका रथ बना लिया तुमने। और, उस रथपर बैठ करके तुम कोरी गप्पोंकी हवायें खा रहे हो, इस तुम्हारे कथनमें कोई बल नहीं है, क्योंकि उन बातोंमें प्रसङ्ग नहीं बनता अर्थात् ये चार बातें जो कही हैं तुमने कि प्रत्यक्षपना और विद्यमान पदार्थोंसे सम्बन्ध होना और विद्यमानको ही ग्रहण करना और धर्म आदिक अदृष्ट सत्त्वोंका ग्राहक न होना इन चार बातोंमें व्याप्य व्यापक सम्बन्ध नहीं पाया जाता। अच्छा बताओं कहाँ पाया जाता? यदि कहो कि अपने आपमें पाया जाता तो यह बात गलत है। अपने आपमें अर्थात् छद्मस्थ जीवोंमें तो चक्षु आदिक इन्द्रियोंसे जो प्रत्यक्ष ज्ञान उत्पन्न होता है उसका विषय तो थोड़ा माना गया है, जहाँ व्यवधान न आये, जो दूर देश कालका न हो, जो सूक्ष्म स्वभावका न हो ऐसे प्रतिनियत रूप, रस, गंध, स्पर्श इनका ही ज्ञान करता है आपका प्रत्यक्ष, तब नियम तो न रहा यह कि जो प्रत्यक्ष स्वभावके द्वारा वाच्य हो वह व्यवहित देश काल अर्थका ग्राहक नहीं होता। वह प्रत्यक्ष शब्दसे नहीं कहा जा सकता। कैसे? सो सुनो। देखो—तुम्हारे भी ग्रन्थोंमें बताया है कि गरुड़ने, वैनतेयने हजारों योजन की चीजको जान लिया, यह रामायण आदिकमें बताया भी गया है, तो इससे यह सिद्ध हुआ ना, कि प्रत्यक्षके द्वारा बहुत दूरकी बात जो सामने न हो उसे भी जान लिया जाता है। तब फिर तुमने जो यह कहा कि जिसका नाम प्रत्यक्ष ज्ञान है वह समस्त ज्ञान पासकी चीजको ही जानेगा, विद्यमानको ही जानेगा, यह बात तुम्हारी अब युक्त नहीं रही। किसी वैनतेयने हजारों योजन दूरकी चीजको जाना है ऐसी आगममें प्रसिद्धि है और लोकमें अत्यन्त दूरके पदार्थको गृद्ध—आदिक जान लेते हैं अथवा जब प्रत्यभिज्ञान उत्पन्न होता है, सामने आयी हुई चीजको निरखकर उसके ही बारे में जब अतीतकालकी परिणतिका स्मरण होता है तो बतलावो अतीतकालकी बातसे सम्बद्ध प्रत्यक्षीभूत बातका ग्रहण करनेका स्वभाव हो गया या नहीं? जैसे किसी पुरुषको देख कर यह सोचना कि यह तो वही है जिसे हमने एक वर्ष पहिले अमुक जगह देखा था। तो इस ज्ञानमें एक साल पहिलेकी बातसे सम्बन्ध रखने वाले इस पुरुषका प्रत्यक्ष कर रहे कि नहीं कर रहे? तो इससे सिद्ध है कि प्रत्यक्ष ज्ञान अतीतकी भी बातको जानता है, यह नियम नहीं बना कि जो जो प्रत्यक्ष ज्ञान हो वह वर्तमानको ही जाने, यह नियम नहीं बनता।

Version 1

ज्ञानमें सर्वसत्को जाननेका स्वभाव—ज्ञानमें ऐसा स्वभाव पड़ा है कि वह सत्को जानता है। अभी आप १० वर्ष पहिलेकी घटनाका स्मरण करलें तो कर सकते ना? जो बात गुजर चुकी है, अनेक वर्ष हो चुके हैं उसका भी ज्ञान आप आज करते हैं। ज्ञानमें अतीत-भविष्यकालकी चीजोंको जाननेका स्वभाव पडा है। जैसे कल कौन सा दिन होगा? शनीवार। लोकलकी होने वाली बात आपने आज ही जान लिया। तो स्वभाव पड़ा है चाहे हम किसी रूपसे जानें, पर स्वभाव तो है कि हम आगे होने वाली बातको भी समझ सकते हैं और अतीत कालकी भी बात जान सकते हैं। अगर भविष्य कालकी बातके जाननेका स्वभाव न पड़ा हो तो कोई काम ही नहीं कर सकते आप। अब सगाई हुई, चार माह बाद शादी है अमुक दिन लोग आवेंगे, निमन्त्रण पत्र अभीसे छपा लिया। यह जान रहे है कि अमुक दिन काम होना है, तो भविष्यकी बातोंका जाननेका स्वभाव यदि ज्ञानमें न होता तो तद् विषयक कल्पनायें भी न हो सकती थीं। तो ज्ञानका स्वभाव है कि वह भूत वर्तमान और भविष्यकी सभी बातोंको जान सके। यह नहीं कह सकते कि जिस जिस ज्ञानका नाम प्रत्यक्ष ज्ञान रखोगे वह केवल वर्तमानका ही ग्रहण कर सकेगा। इसके अतिरिक्त और भी वह केवल वर्तमानका ही ग्रहण कर सकेगा। इसके अतिरिक्त और भी देखिये कुछ प्रातिभज्ञान भी होते हैं अर्थात् अपने विशिष्ट विचारसे हम उसका ज्ञान किया करते हैं। जैसे कल मेरा भाई आने वाला है तो कलके सम्बन्धमें कलकी परिणतिका ज्ञान वह अभी प्रतिभज्ञानसे कर रहा है। देखो न तो शब्दके व्यापारसे यह ज्ञान उत्पन्न हुआ, न किसी हेतुसे और न इन्द्रियके व्यापारसे उत्पन्न हुआ, पर उसने एक अपनी प्रतिभासे जागृत दशामें कुछ विशिष्ट अनुभव किया है। प्रयोजन यह है कि ज्ञानका ऐसा स्वभाव है कि वह अतीतको भी जाने, भविष्यको भी जाने, जो सामने न हो उसे भी जाने। यह तो हम आपकी एक विवशता है, पराधीनता है—इन्द्रिय और मनके आधीन ज्ञान बन रहा है, पर ज्ञानमें ऐसा स्वभाव नहीं पड़ा कि वह इन्द्रियकी अपेक्षा लेकर ही उत्पन्न हो। ज्ञानमें जाननेका स्वभाव है।

ज्ञानस्वभावकी प्रतीतिके बिना बेदशास्त्र गुरुके निर्णयका अभाव--देखिये! यह बात जब तक प्रतीतिमें न आयगी कि ज्ञानका तो मात्र जाननेका स्वभाव है, वह वर्तमानको जाने ऐसी सीमा नहीं रखता। वह सामनेकी वस्तुको ही जाने ऐसी उसमें आड़ नहीं रहती है, किन्तु ज्ञानमें तो जाननेका स्वभाव होता है इसका जब तक विश्वास न होगा तब तक आपने न अरहंत को पहिचाना न सिद्ध को पहिचाना। जब आदर्श को ही न जान पाया तो फिर आपका गुरु ही कौन रहा, फिर आपके शास्त्र ही क्या रहे? यों तो अपना मन बहलाने के लिए आप उपन्यास पढ़ते हैं या अखबार पढ़ते हैं, और नई नई बाहरी बातोंकी जानकारी करके उसका मौज भी लेते हैं तो यह तो एक लौकिक वैभवमें सामिल हो गया। मोक्षमार्गकी बात अभी नहीं आयी। जब तक इस बातका विश्वास न हो कि ज्ञानमें जाननेका ऐसा स्वभाव पड़ा रहता है

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उसमें क्या यह कैद कर सकते हैं कि यह इतने समयकी ही जानेगा ? अगर कैद करते हैं तो उनसे प्रश्न किया जा सकता है कि इससे पहलेकी बातको ज्ञान नहीं जान सके, ऐसा इसपर क्या कोई आवरण पड़ा हुआ है ? इस ज्ञानपर कौन सी उपाधि पड़ी हुई है जो ज्ञानमें यह सीमा हो जाय कि यह १० वर्षकी बात तो जानेगा आगेकी न जानेगा। आप यदि कहें कि हम लोगोंके ज्ञानमें तो ये सीमायें नजर आती हैं, हम ४०–५० वर्ष पहलेकी बातको बता सकते हैं, इससे पहिलेकी बात नहीं बता पाते, तो भाई ठीक है। आपके ज्ञानपर आवरण पड़ा हुआ है, ज्ञानावरणका उदय है, इन्द्रिय और मनकी अपेक्षासे ज्ञान उत्पन्न होता है तो यहाँ तो विवशता हुई, यहां तो सीमा आ गई, किन्तु जहाँ कोई भी आवरण न रहा वहाँ ज्ञानमें सीमा कौन करे, कहाँ तक का जाने, कितना सूक्ष्म जाने, कितनी दूरकी जाने। ज्ञानका काम है कि जो भी सत् हो वह समस्त ज्ञानमें ज्ञेय हो जाता है।

आन्तरिक वैभवके परिचयसे ही प्रभुका यथार्थ परिचय भैया ! यह प्रकरण चाहे कुछ सुनने समझनेमें कठिन लगता हो, लेकिन इसमें जो भाव पड़ा हुआ है, जहाँ लक्ष्य कराया जाता है, मुख्य प्रत्यक्षका सामर्थ्य जो बताया गया है उस उस सामर्थ्यका जब तक परिचय न हो तब तक समझना कि मैंने वास्तवमें अरहंत और सिद्धको भी नहीं जाना। क्या है अरहंत ? कुछ पता ही नहीं। जैसे यहां लोकमें यह मामा है, यह फूफा है, यह अमुक है, यह धनी हैं, यह योगीश्वर हैं, ऐसा मान लिया जाता है। ऐसे ही यह अरहंत हैं। इस प्रकार मान लिया। इस प्रकार की केवल बाहरी प्रतीति है, अरहंत कहते किसे हैं ? अरहंतके स्वरूपमें चमत्कार क्या है ? उसका ज्ञान जब तक नहीं है तब तक अरहंतकी क्या परख की ? जैसे कोइ पुरुष किसी सज्जन पुरुषके बारेमें तारीफ करने खड़ा हो और तारीफ करे ऊपरी-ऊपरी, तो दूसरे लोग कहते हैं कि अभी आपने इस सज्जनको पहिचाना ही नहीं। आप ऊपरी-ऊपरी बातें करते हैं तो उसके भीतरी गुणोंको समता, क्षमा, विशुद्ध आशय सबमें समान बर्ताव करनेकी प्रकृति, ऐसे जो भीतरी गुण हैं उन भीतरी गुणोंपर प्रकाश डाले तो लोग मानेंगे कि हाँ, तुमने इस सज्जनको पहिचाना है और उसका मर्म न जाने तो जैसे कुछ ऊपरी बातें बोली जाती हैं उनसे ही मान लिया कि यह अरहंत हैं। पर, उससे उनकी श्रद्धा विकसित नहीं होती और न अपने लिए कोई शिक्षा मिली।

प्रभु-पूजाका प्रयोजन – हम भगवानको क्यों मानें ? भगवानकी उपासना क्यों करने जायें ? जैसे कि बहुतसे लोग ऐसी शङ्का करते हैं कि मन्दिरमें क्यों जायें, वहाँ जानेसे कुछ मिलता नहीं है न वहाँ कोई बताने वाला न कोई कुछ सुनने वाला। तो भाई ठीक है, कुछ भी नहीं मिलता। अरे मिलेगा उनको जिन्होंने परिचय पाया है कि भगवान तो उस विश्वज्ञताके स्वभाव रखने वाले हैं। उनका नाम है वह ज्ञान-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पुञ्ज, वह ज्ञान ज्योति जो एक अद्भुत चमत्कारमें है वह है प्रभु ! और, उस प्रभुका परिचय होनेसे अपने आपमें भी यह बोध बनेगा कि यही स्वभाव तो मेरा है जब इस जीवको इन बाहरी विडम्बनाओंसे वैराग्य होगा तब खुद अनुभव करेगा कि मैंने प्रभु-दर्शनसे क्या पाया ? इन बाहरी विषयोंमें लगा रहनेसे आत्माको क्या हाथ आयगा ? लगे रहो खूब इस वैभवके उपार्जनमें, सब जगह डटे रहो, पर क्या होगा अन्तमें मरण तो अवश्यंभावी है, उसके बाद फिर कहाँ जन्म होगा, क्या होगा वह सब इस जन्मकी करतूत पर निर्भर है। तो क्या मिला यहांके स्नेहसे, मोहसे, आसक्तिसे ? कदाचित् चार लोगोंने कह दिया कि यह बहुत बड़ा है, बहुत धनी है, बहुत समझदार है, बहुत चतुर है, यों कुछ भी कह दिया तो उनके कहनेसे यहां कहीं हम पेटेन्ट तो नहीं हो गए किसी अपने सुखकी प्राप्तिके लिये। मोहीजन हैं, अपनी कषायके अनुसार, अपने स्वार्थभावके अनुसार कहा करते हैं। तो प्रभुके स्वरूपको पहिचाने और प्रभु स्वरूपको जानकर ऐसा निर्णय बनाना कि यह मैं आत्मा जो केवल ज्ञानमात्र है वह मात्र ज्ञाता द्रष्टा रहे यह तो है मेरा उत्थान, यही है मेरा सर्वस्व, यही है परमार्थ उत्कृष्ट आनन्द। इसके अतिरिक्त जगतमें मेरा कहीं कुछ नहीं है। यही भाव बनानेके लिए मंदिर आना चाहिए। यही भावना रोज भाते रहेंगे, वैसी ही भावना बनाये रहेंगे तो आत्मबल प्रकट होगा। ज्ञानबल जिस बलके प्रकट होनेपर फिर लोकमें आकुलता न ठहर सकेगी। यह प्रयोजन है प्रभु स्वरूपके जाननेका।

कथनके आन्तरिक भावके ज्ञानसे स्पष्ट विज्ञप्ति—जो केवल ऊपरी ऊपरी बातें ही समझलें और ऊपरी शब्दका ऊपरी ही अर्थ लगालें तो वह तो धोखा खायगा। एक मास्टर स्कूलमें पढ़ा रहे थे, उन लड़कोंको डाट भी रहे थे। जिनके सवाल गलत निकले थे - देखो हमने कितना पढ़ाया, किस ढंगसे पढ़ाया, कितने ही गधोंको मनुष्य बनाया, फिर भी तुम लोगोंने सवाल गलत कर दिया ? इस बातको सुन लिया किसी मुसाफिर ने, वह मुसाफिर था कुम्हार। उसके घर कई गधे थे। सोचा कि हमारे घर कोई बच्चा नहीं है, चलो हम भी अपने एक गधेका एक लड़का बनवालें ! सो उस मास्टर से कहा—भैया ! हमारे एक गधेका एक लड़का बना दो, मास्टरने समझ लिया कि यह बेवकूफ है। कहा—अच्छा, ले आना गधा, हम उसका लड़का बना देंगे। वह ले आया गधा, मास्टरने कहा देखो ७ दिनके बाद अमुक दिन ठीक १० बजे आ जाना, लड़का तुम्हें तैयार मिल जायगा। मास्टरने उस गधेको ५०-६० रुपयेमें बेचकर अपना काम चलाया। अब वह बेचारा देहाती आदमी पहिले तो ठीक-ठीक उस तारीखको भी न जान सका, फिर पहुँचा वह करीब चार बजे। और कहा कि हमारा लड़का दे दो। मास्टरने कहा—ओह ! तुम इतनी देर करके आये, इतनी देरमें तो वह लड़का बन गया, आदमी हो गया और अब तो मजिस्ट्रेट बन गया। हमारे बशका तो अब बात रही नहीं, तुम अगर ला सकते हो उसे तो लेआवो, वह कुम्हार उस गधेका टोकना, फट्टा, लगाम आदि जो कुछ था लेकर उस अदालत

Report any errors at vikasnd@gmail.com

पहुँचा जहाँ कि मजिस्ट्रेट बैठा था। वे सब चीजें इसलिए वह ले गया था कि इनको देखकर वह पहिचान जाय कि हाँ, हमको इन्हींके यहाँ जाना है। सो वह कुम्हार बार बार कहे – ओह, ओह, आजा, आजा, अरे तुम तो ३ घण्टेमें ही हमसे नाराज हो गए, चलो घर ! इतनी बातें सुनकर चपरासीने उसे वहाँसे निकाल बाहर किया। तो वहाँ गधोंको आदमी बनानेका अर्थ था मूर्खोंको बुद्धिमान बनाना। तो भाई ! किसी भी बातका पहिले मर्म तो समझना चाहिए। जब तक हम अपने इस ज्ञानस्वभावका प्रभुस्वरूपका मर्म न समझेंगे कि इसका अन्तः चमत्कार क्या है ? तब तक हम इस देवको क्या जानें, गुरुको क्या जानें ? और फिर शास्त्रमें भी हम क्या पढ़ेंगे ? यह ज्ञानस्वभावका और सर्वज्ञकी सिद्धिका वर्णन चल रहा है। ज्ञानस्वभावका परिचय होनेसे सर्वज्ञका परिचय हो जायगा।

शङ्काकार द्वारा अभिमत धर्माद्यनभ्युपगममें ३ विकल्पोंकी संभावना– असर्वज्ञवादीका यह सिद्धान्त है कि समस्त तत्त्वोंको जानने वाला कोई पुरुष विशेष नहीं हो सकता। तत्त्वोंकी जानकारी अपौरुषेय आगमसे ही प्रकट होती है। भले ही कोई पुरुष अनेक प्रमाणोंसे धीरे–धीरे ज्ञानोंका संचय कर करके सबको जान ले तो भले ही जान ले, किन्तु धर्म आदिक जो अदृष्ट तत्त्व हैं उनकी जानकारी किसी पुरुषको नहीं हो सकती है, यों कह कर सर्वज्ञत्वको निषेध करने वालेके प्रति पूछा जा रहा है कि धर्म आदिकका जो अनभ्युपगम है, न जानकारी है वह किस कारणसे है, क्या धर्म आदिक अतीन्द्रिय हैं इस कारणसे चक्षु आदिकके द्वारा उनकी उपलब्धि नहीं होती, अथवा धर्मादिक अविद्यमान हैं, इस कारणसे उनका ज्ञान नहीं होता अथवा धर्मादिक के साथ कोई विशेषण ही नहीं लग सकता है, धर्म है तत्त्व है जो है सो है, उसके साथ कोई विशेषण नहीं हैं इस कारण धर्मादिककी अजानकारी होती है।

अतीन्द्रिय और अविद्यमान होनेसे धर्मादिकके अनभ्युपगम माननेका निराकरण– धर्मादिकके अनभ्युपगमके सम्बन्धमें कहे गये तीन विकल्पोंमेंसे पहिली बात तो यों ठीक नहीं बैठती कि अतीन्द्रिय बहुत सी बातें हैं और उनका परिज्ञान पुरुषसे हुआ करता है। जैसे अतीतकालका ज्ञान हम आपको है कि नहीं ? है, और, अतीतकाल अतीन्द्रिय है, इन्द्रियके अगोचर है, इन्द्रियसे रहित है इसलिये जो समय गुजर गया वह कितना समय गुजर गया ? तो कोई बतावेगा इतना काल व्यतीत हो गया और कोई कहेगा कि अनादिकाल व्यतीत हो गया। तो उस अतीन्द्रियज्ञानका भी परिज्ञान हो गया। यदि यह कहो कि धर्म पुण्य पाप आदिक अदृष्ट हैं अविद्यमान हैं इस कारणसे हमारी जानकारी नहीं होती तो यह भी कोई नियम नहीं है कि जो जो अविद्यमान हो उसकी जानकारी नहीं होती। जैसे अतीतकाल तो अविद्यमान है फिर भी जानकारी उसकी है अथवा होने वाला जो एक कुछ विकास है योगियोंको जो कुछ प्राप्ति हो सकती है योग द्वारा वह यद्यपि वर्तमानमें अविद्यमान है फिर भी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/
उसकी जानकारी रहती है। तो यह भी बात तुम्हारी सही बैठो कि धर्मादिक अविद्यमान होनेसे पुरुषके द्वारा अज्ञात रहते हैं।

अविशेषणता होनेसे धर्मादिकका अनभ्युपगम माननेका निराकरण - यदि कहो कि पुण्य पाप धर्म इनमें कोई विशेषण नहीं लगते इस कारण इनकी जानकारी नहीं बनती। तो सुनो। विशेषण कैसे न लगेगा ? समस्त पुरुषोंके द्वारा भोगने में आने वाले विषयभूत पदार्थोंका जनक है पुण्य, धर्म। पुण्यके उदयसे विषयोंकी सामग्री रहती है, और वे सब विषय मनुष्योंके द्वारा भोगनेमें आते हैं तो धर्म किसे कहते हैं। धर्मका अभिप्राय है यह कि धर्म समस्त मनुष्योंके उपभोगमें आने वाली वैभव सामग्रीका जनक है। इतना बड़ा विशेषण लग गया। तुम कहते कि कोई विशेषण ही नहीं, और फिर यह धर्म द्रव्यसे, गुणसे, कर्मसे उत्पन्न होता है तो इसमें तो समस्त पदार्थोंकी विशेषणता सम्भव है। तो इस प्रकार कोई कारण नहीं है कि धर्म आदिक न जाने जायें, अविद्यमान पदार्थ न जाने जायें। इसकी जब सिद्धि नहीं है तो प्रसंग और विपर्ययसे सर्वज्ञमें बाधा नहीं दी जा सकती है। फिर यों कहना कि जितने प्रत्यक्ष होते हैं वे सब अव्यवहितको ही जानते हैं, वे सब व्यवधानरहितको ही जानते हैं ये सब बातें तुम्हारी युक्त नहीं बैठी। तब प्रसंग और विपर्ययके साधनोंसे भी सर्वज्ञ सिद्ध करनेमें बाधा नहीं आती।

संस्कृत साधनसे अविद्यमान व व्यवहित अर्थोंका परिचय - और, भी देखो - जैसे तंत्र मंत्रादिकसे जो संस्कृत चक्षु हैं, संस्कार किए हुए नेत्र हैं वे बहुत दूर की बातको जान जाते हैं। एक घटना देखिये चाहे उसमें कुछ सार हो या न हो। अनेक लोग किसी बच्चे के अंगूठेमें कुछ काला मसाला-सा लगा देते हैं और उससे पूछते हैं कि देखो इसमें कौन खड़ा है ? वह कुछ कल्पनाएँ करता है या न जाने क्या होता है कि उसे देखकर वह कहता है कि हाँ, कोई खड़ा तो है। फिर उससे इष्टोंको बुलवाया जाता है आदि। तो वह जंत्र-मंत्र औषधिसे संस्कृत करणसे अविद्यमानको बतानेका उपाय है और उन उपायोंसे अविद्यमान अर्थकी भी जानकारी करायी जाती है। अथवा जैसे नाव खेने वाले कर्णधार पुरुषोंकी आँखोंमें कोई ऐसी चीज लगाकर संस्कार बना देते हैं कि उन पुरुषोंको समुद्रमें बहुत गहराईकी चीजें भी दिखने लगती हैं। तो जो दूरकी चीज है, व्यवधान वाली चीज है उसका भी ज्ञान कराया जाता है, और आजकल तो कुछ लोग ऐसा कहने लगे हैं कि कुछ ऐसे यंत्र हैं जो जमीनके अंदर क्या चीज पड़ी है ? इसकी भी जानकारी कर लेते हैं। तो यह कहना कि जो चीज सामने हो उसकी ही जानकारी सम्भव है यह बात युक्त न रही। इससे सिद्ध है कि सूक्ष्म आदिक जो अशेष पदार्थ हैं, अतीत कालकी जो घटनायें हैं उन सबका भी जाननहार कोई पुरुष होता है। तो यह कोई सीमाका उल्लङ्घन नहीं है कि जो विद्यमान है उस ही पदार्थका ज्ञान होता है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ज्ञानमें अशेषज्ञताके स्वभावका दिग्दर्शन भैया ! ज्ञानमें तो सत्को जाननेका स्वभाव पड़ा हुआ है। यह बात कहीं दूसरेकी नहीं कही जा रही है जिससे कि अपने उपयोगको अपनेसे बाहर निकालकर बहुत दूर ले जाकर वहाँ कुछ निरखनेकी कोशिश करें। यह सब अपने आपकी सबकी अन्तःस्वरूपकी बात चल रही है। हम आपमें सबमें जो स्वरूप है, तत्त्व है जिससे हमारी निष्पन्नता है वह स्वभाव सबको जाननेकी सामर्थ्य रखता है। कुछ ये इन्द्रियां मिलीं, शरीर मिला यह तो जेलखाना है, बन्धन है, विवशता है इस कारण थोड़ा जान पाते हैं, पराधीनतासे जान पाते हैं, स्थूल जान पाते हैं, पर ऐसा जानना ज्ञानके स्वभावकी ओरकी बात नहीं है। ये तो उस स्वभावकी ओर भी विशदताको प्रकट करते हैं। जैसे कि सूर्यके नीचे बादल आ जायें और किसी समय एक मील तक ही धूप निकली हुई है तो एक मील तक जो धूप निकली है वह एक आवरणके कारण ऐसी परिस्थिति बनी है। सूर्यका स्वभाव एक मील तकका ही प्रकाश करनेका है। साथ ही यह भी निरखिये कि यह एक दो मीलका प्रकाश सूर्यकी कमजोरीका ज्ञान नहीं करा रहा किन्तु सूर्यके स्वभावका ज्ञान करा रहा है। सूर्यमें कितना महान तेज है कि इतना बादलोंका आवरण होनेपर भी, सूर्यके नीचे पूरे बादल आ गए हों न भी एक मील की धूप हो, पूरे बादल आ चुकनेपर भी वह सूर्य सर्वत्र प्रकाश करनेका स्वभाव रखता है। तो वह एक दो मीलका प्रकाश उस सूर्यके तेजकी याद दिलाता है न कि सूर्यका तिरस्कार करता है, इसी प्रकारसे हमारे ये छुट पुट ज्ञान जो इन्द्रियके द्वारा जाने जाते हैं, जो कि हमारे सब कुछ जाननेमें बाधक बन रहे हैं, ये सब छुट पुट जानन इस आत्माकी कमजोरीका ज्ञान नहीं करा रहे किन्तु आत्माके अनन्त सामर्थ्यकी याद दिलाते हैं। हैं यद्यपि छुटपुट ज्ञान, पर देखो तो सही कि आत्मापर कितनी आपदायें ढाई हुई हैं, विषय कषाय मोह रागद्वेषसे इसका उपयोग कितना बदल गया है फिर भी ये छुटपुट ज्ञान इस आत्माके सामर्थ्यकी याद दिलाते हैं। तो ज्ञानमें समस्त सत् पदार्थोंके जाननेका स्वभाव पड़ा हुआ है। तो जिसपर कोई आवरण नहीं रहा वह सर्व सतोंको जानले तो इसमें कोई बाधा नहीं आती।

अल्पज्ञके प्रत्यक्षत्वसे सर्वज्ञके प्रत्यक्षकी तुलना करनेका व्यामोह—शङ्काकारने जो यह कहा था कि इन्द्रियमें कितना भी अतिशय आ जाय अथवा प्रत्यक्ष ज्ञान चाहे कितना भी महान बन जाय पर महान बनकर भी अपने स्वभावको न छोड़ सकेगा क्योंकि वह प्रत्यक्ष माननेकी चीजको ही जाने स्थूलको ही जाने, गा, सबको जाननेकी बात प्रत्यक्षसे नहीं बन सकती। तो इसपर उनसे पूछा गया था कि तुमने यह कैसे निर्णय किया कि ज्ञान सामनेकी ओर प्रत्यक्ष चीजोंको ही जाननेमें समर्थ है ? इसपर शङ्काकारने उत्तर दिया कि हमने अपने आत्मासे जाना, सो चाहे जिस जगहके लोग हों, विदेह क्षेत्रके हों या अन्य कहींके भी हों योगीश्वर हों, प्रत्यक्ष तो वैसा ही ज्ञान करेगा जैसा कि हम जानते हैं। तो इसपर उनसे पूछा जा रहा है कि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

यह तो बतावो कि तुम्हारे स्वात्मामें जितने कारणोंसे उत्पन्न हुआ ज्ञान जिस पदार्थ को ग्रहण करता हुआ प्रत्यक्ष तुमने माना है क्या उतने ही कारणोंसे उस ही प्रकारसे सब जगह सब समय सभी प्राणियोंको प्रत्यक्ष होता है क्या तुम्हारा यह मंतव्य है ? शङ्काकार कहता है हाँ तुमने तो और खुलासा करके बता दिया । हमारा यह मतव्य है कि जिस प्रकार जिस ढङ्गसे जितने कारणोंसे जैसा प्रत्यक्ष हमारा होता है ऐसा ही प्रत्यक्ष सब प्राणियोंको हुआ करता है । तब समाधान कीजिये कि यह नियम तुम्हारा ठीक नहीं है । तुम यदि प्रकाशके बिना कुछ जान नहीं सकते तो ये बिल्ली उल्लू आदि अनेक जीव तो बिना प्रकाशके सब चीजें रात्रिमें ही देख लेते हैं । तब तो फिर तुम्हारे ज्ञानसे इनके ज्ञानमें विशदता देखी जा रही है । तो तुम्हारे स्वात्माकी बात तो यहीं नहीं मिल रही, फिर सारी दुनियामें सारे पदार्थोंकी बात तुम कैसे जान सकोगे ?

अक्षज ज्ञानको ही प्रत्यक्ष मानकर अभिमत प्रसङ्ग विपर्ययसे सर्वज्ञत्व की असिद्धिका निराकरण तुम्हारे प्रतीत्याभासकी दूसरी बात यह है कि क्या तुमने खूब परख लिया यह कि सब जगहके लोग सब समयोंमें किस किस प्रकारसे प्रत्यक्षको जानते हैं । अगर तुमने परख लिया तो तुम्हीं बन गए बड़े सर्वज्ञ और प्रभु, सो तो हो नहीं ! तुम्हारे स्वात्माकी प्रतीतिसे मेल नहीं खाता है इन सब प्रत्यक्षोंमें । तुम्हारी यह खुदकी कल्पना है, जो चाहे कल्पना करो, पर यह नियम नहीं बन गया कि जो जो प्रत्यक्ष ज्ञान होते हैं वे सब इस ही प्रकार स्थूल और विद्यमान और सम्बन्धित पदार्थोंको ही जाना करते हैं जब यह नियम नहीं बना तो तुम्हारे प्रसङ्ग और विपर्यय ये दोनों असिद्ध हो गए । सर्वज्ञमें फिर कोई बाधा नहीं है । तुम्हारी इन दोनों समानताओंकी बात तो यहीं ही खण्डित हो जाती है तब समझिये कि सूक्ष्म पदार्थका जानना, अतीतकालका जानना ये बातें भी कहीं पायी जाती हैं । तुम्हारे प्रत्यक्ष ज्ञानसे यह भी मेल नहीं होता क्योंकि किसी न किसीके सब पदार्थ प्रत्यक्ष होते हैं ।

घातिकर्मक्षयज प्रभुज्ञानकी अशेषज्ञतामें अबाधा प्रत्यक्षसे सर्वके अनभ्युपगमके सम्बन्धमें तीसरी बात यह है कि हम सर्वज्ञके ज्ञानको इन्द्रियजन्य नहीं मानते । इन्द्रियजन्य प्रत्यक्ष मानकर यदि हम यह सिद्ध कर रहे हों कि सर्वज्ञका ज्ञान परमाणु आदिक सूक्ष्म पदार्थोंको जानता है तो तुम इसमे बाधा दो, पर वास्तविकता तो यह है कि प्रभुका ज्ञान ज्ञानको घातने वाले कर्मोंके क्षयसे उत्पन्न होता है । घातियाँ कर्म हैं चार ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय । ज्ञानावरण कर्म जीवके ज्ञानका विकास न होने देनेमें निमित्त है, दर्शनावरण कर्म ज्ञानस्वरूप बर्तने वाले अपने आपको अपने अवलोकनमें न लाने देनेके लिये निमित्त है । मोहनीय कर्म आत्माकी दृष्टि न करानेमें आत्माका रमण हटानेमें निमित्त है, और अन्तराय कर्म अपनी शक्तिका विकास न होने देनेके लिए निमित्त है । जहाँ ये चारों कर्म दूर हो गए ऐसे सर्वज्ञदेव लोकालोकके जानने वाले हो जाते हैं ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

धर्मादिकके अभ्युपगममें शङ्काकार द्वारा प्रस्तावित चार विकल्पोमें आद्य विकल्पद्वय – अब शङ्काकार फिर सर्वज्ञवादीके प्रति कह रहा है कि फिरसे शुरू करो अपना वाद विवाद। यह बतलावो कि सर्वज्ञका ज्ञान जो धर्मादिक पदार्थों का ग्रहण करता है तो वह ज्ञान है कैसा ? क्या वह ज्ञान चक्षु आदिक कारणोसे उत्पन्न होता है या अभ्यास करनेसे बन गया है या शब्दसे, शास्त्रसे, आगमसे उसका ज्ञान बना है या अनुमानसे उसका ज्ञान बना है ? इन चार प्रकारके विकल्पोंमेंसे पहिले विकल्पकी बात तो यों ठीक नहीं बैठती कि चक्षु आदिक इन्द्रियसे उत्पन्न हुए प्रत्यक्ष ज्ञानसे सर्वज्ञ भगवान सबको जान लें यह बात संभव नहीं है क्योंकि इन इन्द्रियोंके प्रवृत्तिरूप, रस, गंध स्पर्श और शब्दोंमें ही पाई जाती है। इन्द्रियसे उत्पन्न हुआ ज्ञान धर्म आदिकको ग्रहण करले, यह बात असम्भव है। तो तुम्हारे सर्वज्ञका ज्ञान चक्षु आदिक इन्द्रियोंसे उत्पन्न होकर फिर सारे विश्वको जाने यह बात तो बनती नहीं है। यदि कहो कि अभ्यास कर करके सर्वज्ञने अपना उतना ज्ञान बढ़ा लिया सारे विश्वका ज्ञान अभ्यास कर करके कर लिया (यह असर्वज्ञवादी सर्वज्ञ मानने वालेसे कह रहा है) तो यह कहना तुम्हारा केवल मनोरथ मात्र है, क्योंकि ऐसा हो ही नहीं सकता कि कोई ज्ञानका अभ्यास कर करके सारे विश्वका ज्ञान कर सके। यहींपर किसीका भी अभ्यास देख लो, प्रतिनियत विषयमें तो उसकी कुशलता होती है। जैसे कोई लुहार है तो वह लोहेके काम कर सकनेमें ही सफल हो पाता है, उससे यदि कोई बिजलीका सामान बनवाना चाहे तो वह न बना सकेगा। अथवा कोई जुलाहा कपड़े बुननेका काम करता है, उससे कोई बहुत बड़ा ग्रंथनिर्माणका कार्य करवाना चाहे तो वह नहीं कर सकता है। हाँ, जिस कामको वह कर रहा है उसको तो बड़ी कुशलतासे वह कर लेगा। तो इस तरह अभ्यास करने से तो दो एक बातें ही बन पायेंगी, अभ्यास कर करके कोई त्रिलोक त्रिकालवर्ती बातोंको जान जाय यह बात कोई मान सकता है क्या ? नहीं मानेगा !

अभ्यास द्वारा सर्वके ज्ञानकी असंभवता—एक कोई बी० ए० पढ़कर ताजा निकला हुआ बाबू एक समुद्रकी सैर करने चला, नाविकसे कहा कि तू मुझे अपनी नौकामें बैठालकर इस समुद्रकी लहरोंमें ले चल !···अच्छा बाबू जी, एक रुपया पड़ेगा।···अच्छा साहब ! जब थोडी दूर नाव खे ले गया तो वह बाबू पूछता है क्यों बे नाविक ! तू कुछ पढ़ा–लिखा है या नहीं ?···नहीं साहब !···तेरा बाप पढ़ा है या नहीं ?···नहीं साहब !···तो क्या तू ए० बी० सी० डी० भी नहीं जानता ?··· नहीं साहब !···तो क्या तू अ आ इ ई भी नहीं जानता ?···नहीं साहब ! तो उन बाबूजीने उसे कई गालियाँ सुनाई नालायक, बत्तमीज आदि। और कहा कि ऐसे ही लोगोंने तो इस हिन्दुस्तानको बरवाद कर दिया है। उस बेचारेने सुन लिया। जब नाव करीब १ मील पहुँच गयी तो एक जगह भँवरमें नाव कुछ डगमगाने लगी। तो वह बाबू कहता है—अच्छी तरह नाव खेना, कहीं डूब न जाय ! तो वह नाविक

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बोला—क्या तुमने तैरना सीखा है बाबू साहब ? नहीं ! तो क्या तैरना बिल्कुल ही नहीं सीखा ?···नहीं नाविक ! तो उस नाविकने उन बाबूजीको उतनी ही गालियाँ सुनाई जितनी कि बाबूजीने सुनाई थी। और कहा कि ऐसे ही लोगों ने तो हिन्दुस्तान को बरबाद कर दिया है। तो प्रयोजन यह है कि अभ्यास बना बनाकर कोई सारे विषयोंमें प्रवीण हो जाय यह बात तो नहीं हो सकती। शङ्काकार कह रहा है सर्वज्ञ-वादियोंसे कि अभ्यास कर करके भी कोई सारे विश्वका ज्ञाता हो जाय, यह बात असम्भव है।

अभ्याससे सर्वज्ञता माननेमें अन्योन्याश्रय दोषकी आशङ्का—अभ्याससे सर्वज्ञता पानेके सम्बन्धमें एक अन्य यह बात है कि समस्त पदार्थोंका उपदेश अथवा समस्त पदार्थोंका ज्ञान सम्भव ही नहीं है। अगर समस्त पदार्थोंका ज्ञान सम्भव हो जाय तो फिर अभ्यास करनेके उद्यमसे क्या फायदा है ? समस्त पदार्थोंका ज्ञान तो उसे सिद्ध हो ही गया, और फिर देखो तो इसमें अन्योन्याश्रय दोष है। कैसे ? यदि यह कहो कि अभ्यास कर करके प्रभु सर्वज्ञ बन जाते हैं तो किसका अभ्यास कर करके बने सर्वज्ञ ? समस्त पदार्थोंकी जानकारीका अभ्यास कर करके वे सर्वज्ञ बने। अरे तो पहिले सबको जानलें तब तो उसका अभ्यास करें और जब अभ्यास हो तब सर्वको जाने। तो इसमें तो अन्योन्याश्रय दोष है। जैसे ताली रख दिया बकसके भीतर और यों ही हाथसे दाब देने वाला ताला बंद कर दिया तो अब वह ताला कैसे खुले ? चाबी हो तो ताला खुले, और ताला खुले तो चाभी निकले। तो वहाँ विवशता आ गई कि नहीं ? इसी प्रकार सर्व पदार्थोंके ज्ञानका अभ्यास करके सर्वज्ञता बने और जब अभ्यास बने तब सबका ज्ञान हो। तो यह विकल्प भी युक्त नहीं है कि अभ्यास कर करके प्रभु सर्वज्ञ बने। शङ्काकार ही कह रहा है कि सर्वज्ञकी सिद्धि किसी प्रकार नहीं होती।

आगमसे सर्वज्ञके ज्ञानकी उत्पत्ति माननेपर अन्योन्याश्रय दोष—सर्वज्ञत्वकी बात जिसके हृदयमें नहीं समा पा रही है ऐसा सिद्धान्तवादी यह पूछ रहा है सर्वज्ञ वादियोंसे कि क्या सर्वज्ञका ज्ञान चक्षु आदिकसे उत्पन्न होकर धर्मादिक अदृष्ट तत्त्वोंका ग्रहण करने वाला है अथवा अभ्यास कर करके वह ज्ञान सबका ज्ञाता बना है अथवा शब्दोंसे उसका ज्ञान उत्पन्न हुआ है फिर वह धर्मादिकका जानने वाला है अथवा अनुमानसे उसका ज्ञान उत्पन्न हुआ है। इन चार विकल्पोंमेसे दो विकल्पोंकी बात तो कह दी गई थी। अब तीसरे विकल्पके सम्बन्धमें सुनो शङ्काकार कह रहा है कि यदि सर्वज्ञका ज्ञान आगमसे उत्पन्न हुआ होकर फिर धर्मादिक तत्त्वोंका ग्रहण करने वाला है ऐसा यदि मानते हो तो इसमे अन्योन्याश्रय दोष होगा। जिस आगमसे भगवानका ज्ञान उत्पन्न हुआ है वह आगम क्या प्रमाणरूप है ? कैसे प्रमाणभूत है ? जब सर्वज्ञके द्वारा यह आगम प्रणीत है यह सिद्ध हो तब तो आगममें प्रमाणता

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आयगी और जब आगममें प्रमाणता आये तो आगमसे ज्ञान उत्पन्न होकर वह धर्मादिक का ग्राहक बनेगा। तो इसमें यह कठिनाई आई कि सर्वज्ञ द्वारा प्रणीत होनेसे आगम की प्रमाणता आनेपर तो सर्वज्ञका ज्ञान सम्भव हो सकता है और जब सर्वज्ञको जानने वाला ज्ञान सिद्ध हो तो उसके द्वारा यह आगम प्रणीत है यह कहा जा सकता है। तो आगमसे भी सर्वज्ञका ज्ञान उत्पन्न नहीं हुआ जो समस्त विश्वको, धर्मादिक तत्त्वको जान सके।

सर्वज्ञज्ञानकी अनुमानप्रभवताकी असिद्धि—यदि यह कहो कि सर्वज्ञका ज्ञान अनुमानसे उत्पन्न हुआ है तो यह बात बिल्कुल अयुक्त है। शङ्काकार कह रहा है कि धर्मादिक पदार्थ तो अतीन्द्रिय हैं, उनकी सिद्धिके लिए जो भी तुम साधन बनाओगे उन साधनोंका धर्मादिक अतीन्द्रिय पदार्थोंके साथ सम्बन्ध नहीं बैठ सकता। और, जब तक साध्य साधनका सम्बन्ध न विदित हो तब तक वह हेतु, अनुमानज्ञापक नहीं बन सकता। जैसे इस पर्वतमें अग्नि है धुवां होने से तो अग्नि और धुवांका सम्बन्ध निश्चित् है तब तो धुवाँसे अग्निका ज्ञान किया जाता है। तो जिस हेतुसे तुम सर्वज्ञको ज्ञाता मानोगे उस हेतुका सब पदार्थोंकी ज्ञप्तिसे सम्बन्ध तो विदित नहीं होता, क्योंकि सब पहिले ज्ञानमें आये तब हेतुका सम्बन्ध जान सके। और, यदि सब ज्ञानमें आ गया तो लो यहीं सर्वज्ञ बन बैठा। आगे क्या ढूंढना! दूसरी बात यह है कि अनुमानसे अगर सर्वज्ञता मानते हो तो हम लोगोंमें भी सर्वज्ञताका प्रसङ्ग होगा, हम आप सभी सर्वज्ञ कहलाने लगेंगे। क्योंकि थोड़े अनुमान तो ऐसे भी हैं कि जिनसे सब पदार्थोंका ज्ञान हो जाता है। जैसे अनुमान किया कि सारे पदार्थ, समस्त जगत भावाभावोमय रूप है अर्थात् हैं भी और है नहीं व दोनों रूप हैं, क्योंकि प्रमेय होनेसे। तो इस अनुमानसे सब जान लिया गया ना, और अनुमान आपके होता है। तब फिर आप भी सर्वज्ञ बन गये।

आगम और अनुमानसे सर्वज्ञज्ञानकी उत्पत्ति माननेपर ज्ञानमें विशदताकी असम्भवता—और भी देखिये! आगमसे सर्वज्ञके ज्ञानकी उत्पत्ति माननेमें यह दोष है कि चूंकि अनुमानज्ञान और आगमज्ञान दोनों ही ज्ञान अस्पष्ट हैं और दोनोंसे सर्वज्ञका ज्ञान उत्पन्न हो तो सर्वज्ञका ज्ञान भी अस्पष्ट बन गया। तब वह आपका अभिमत ज्ञानवान न रह सका, सर्वज्ञ न बन सका, वह तो अनुमान और आगमसे सीखकर सर्वज्ञ बना है, इस प्रकार किसी भी तरह सर्वज्ञकी सिद्धि नहीं होती। शङ्काकार कह रहा है कि यदि कोई अन्य सर्वज्ञवादी पुरुष ऐसा कहे कि बारबार जब उस ज्ञानकी भावना की जाती है तो भावनाका जब प्रकर्ष होता है उच्च भावना बन जाती है तो योगिज्ञान बन जाता है। हम आप लोग जब ज्ञानकी, धर्मोपदेशकी, तत्त्वकी भावना करते हैं तो भावना कर करके हम कभी योगीज्ञानको भी प्राप्त कर सकते हैं। तब निर्मल बन सकते हैं। अभी जो कुछ अनुमान ज्ञान, आगमज्ञान

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सीखा है वह अविशद है अस्पष्ट है लेकिन बारबार उसकी भावना करें। बारबार उसे समझें तो वह स्पष्ट ज्ञान बन जायगा। शङ्काकार कहता है कि यह भी बात तुम्हारी ठीक नहीं है, क्योंकि अभ्यासके बलसे तो ऐसे पुरुषके ज्ञानमें विशदता आ जाती है। जो कामसे विह्वल है, शोकसे विह्वल है तो अभ्यासके बलसे अगर ज्ञानमें ऐसी स्पष्टता आती है तो उस स्पष्टताका मूल्य कुछ नहीं है। जिसे इष्टका वियोग हुआ वह उस इष्टका बराबर ध्यान रखनेसे उसकी आंखोंके आगे वह इष्ट नजर आता रहता है। इतना स्पष्ट बोध हो रहा है, पर ऐसी स्पष्टताका कोई क्या करे ? इस तरहकी स्पष्टता मानोगे तो तुम्हारा सर्वज्ञ भी विह्वल बन गया। इस प्रकार किसी भी प्रमाण से, अनुमानसे, किसी भी प्रकारसे सर्वज्ञका ज्ञान बन ही नहीं सकता है, तब फिर कोई सर्वज्ञ है, ऐसा कहना प्रलापमात्र है।

अशेषज्ञताकी उत्पत्तिमें तत्त्वाभ्यासकी परम्परया साधकता अब शङ्काकारकी उक्त शङ्काओंके समाधानमें कहा जा रहा है - सर्व प्रथम तुमने चार विकल्प रखे कि सर्वज्ञका ज्ञान क्या चक्षु आदिकसे जनित है अथवा अभ्यासजनित है या आगमजनित है अथवा अनुमानजजनित है ? ये सब ही विकल्प तुम्हारी नासमझी से उठ खड़े हुए हैं। पहिले विकल्पके सम्बन्धमें तो अभी अभी कहा गया था कि चक्षु आदिकसे उत्पन्न होनेपर भी ज्ञान धर्मादिक तत्त्वोंका ग्राहक बन सकता है इसमें कोई विरोध नहीं। अभ्यासजनितकी बात यह है कि प्रथम तो सब अभ्यास करते ही हैं प्रभुताके मार्गमें अभ्यास किसका किया जाना चाहिए ? तत्त्वस्वरूपका। तत्त्व स्वरूप है उत्पादव्यय—ध्रौव्ययुक्तं सत। यह निरखना है। यह सूत्र बहुत बड़ा मर्म रख रहा है। इसके मर्मको जाने बिना न भेद विज्ञान होता और न हेय उपादेयका ग्रहण हो सकता, तब फिर आत्माकी दृष्टि न बनेगी, आत्ममग्नता न होगी, मुक्तिका लाभ न मिल सकेगा। इससे निर्णय यह अवश्य कर लेना चाहिए कि प्रत्येक पदार्थ उत्पादव्यय ध्रौव्ययुक्त हैं। यदि है कुछ तो नियमसे उसका कोई परिणमन है। और परिणमन है तो पूर्व परिणमनका व्यय है। किसी भी पदार्थमें पूर्वोत्तर पर्याय एक साथ रह नहीं सकती और पूर्व पर्यायका व्यय होता है, उत्तरका उत्पाद होता है, किन्तु सब पर्यायोंका आधारभूत जो एक तत्त्व है वह वहीका वही है। यही है समस्त पदार्थों का स्वरूप। इस स्वरूपसे ही आप जान सकते हैं कि मेरे आत्माका जो भी परिणमन है वह मुझमें ही होता है। मेरे लिए ही होता है। मेरेसे होता है, मेरेमें होता है। अन्य समस्त पदार्थोंकी भी यही बात है। उन सबका स्वयंमें स्वयंसे स्वयंके लिए, स्वयंकी हरिणतिरूप परिणमन होता है। इस तत्त्वका अभ्यास किया, देखो यह जो ज्ञान बनाया है कि समस्त सत् उत्पादव्यय ध्रौव्यसे युक्त हैं। इसमें समस्त पदार्थ आ गये ना, तो समस्त पदार्थोंके विषयमें जो यह उपदेश है, अविसम्वादी ज्ञान है। यह तो सामान्य रूपसे हुआ। अब ऐसा ज्ञान करने वालोंने तत्त्वका अभ्यास किया। हम यह नहीं कहते कि इतना ही मात्र कोई ज्ञान करले तो वह सर्वज्ञ बन गया पर यह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

भी एक ज्ञान है। इस ज्ञानका अभ्यास किया तो सामान्यरूपसे ये समस्त पदार्थ यों जाने गए, इसमें अभी अस्पष्टता है, स्पष्टरूपसे प्रत्यक्षमें जैसे आना चाहिए पदार्थ यों न कहेंगे, लेकिन इसका अभ्यास बनाये रहें और इससे शिक्षा लेते रहें तो समस्त पदार्थोंके विषय करने वाले स्पष्ट ज्ञानपर जो आवरण पड़ा हुआ है उस आवरणका विनाश होगा। तो उस आवरणके विनाशकी सहायता लेकर इस अभ्याससे स्पष्टज्ञान की उत्पत्ति हुई ना, अभ्यास व्यर्थ कहाँ रहा ? जिस ज्ञानका अभ्यास किया जा रहा है हम उस ज्ञानको सर्वज्ञ नहीं कहते, किन्तु तत्त्वके स्वरूपके अभ्याससे स्पष्ट ज्ञान उत्पन्न होता है।

विशदज्ञानावरणके विश्लेषकी अभ्यास साध्यता—अभ्यासके सम्बन्ध में जो शङ्काकारने कहा था कि अभ्याससे सर्वज्ञके ज्ञानकी उत्पत्ति माननेपर अन्योन्याश्रय दोष होगा सो बात सम्भव नहीं, क्योंकि हम यह नहीं कह रहे कि अभ्याससे ही समस्त पदार्थोंका स्पष्ट ज्ञान होता है, किन्तु अभ्यासकी सहायतासे तत्त्व दृष्टि जमती है और तत्त्वदृष्टि जमनेसे स्पष्टज्ञान पर जो आवरण पड़ा है उसका क्षय होता है। और तब स्पष्ट ज्ञान उत्पन्न हो जाता है। इसमें अन्योन्याश्रयकी क्या बात है ? लौकिक ज्ञानोंकी वृद्धिमें अभ्यास और किस्मका चलता है और सर्वज्ञताके लिए अभ्यास और तरहका चलता है। लौकिक ज्ञानोंकी वृद्धिके लिए पर पदार्थोंकी अपेक्षा की जाती है अनेक स्थानोंका आलम्बन लिया जाता है, किन्तु सर्वज्ञताके विकासके लिये केवल एक सहज अंतस्तत्त्वका आलम्बन लिया जाता है, और इस एक स्वरूप सहज कारण समयसारका आलम्बन जब अभ्यस्त हो जाता है तो निर्विकल्पता उत्पन्न होती है। उस समय समस्त आवरण कर्मोंका विनाश होता है। तत्काल ही अशेसज्ञता प्रकट होती है।

आगमसे ज्ञानविकासका प्रभव माननेमें अन्योन्याश्रय दोषकी असङ्गति—शङ्काकारने तीसरा यह विकल्प किया कि सर्वज्ञका ज्ञान आगमजन्य है क्या ? आगमजन्य माननेपर अनवस्था दोष होता है। वह बात भी असङ्गत है। ये दोष तो उनके लगे जो आगमको अकृतक अपौरुषेय माने, किन्तु आगम तो सर्वज्ञ द्वारा प्रणीत है। उस आगमका अभ्यास करके उससे उत्पन्न हुआ जो विशिष्ट बोध है उसकी मग्नतासे यथेष्टता बनती है। अन्योन्याश्रय दोष इस कारण न होगा कि जो भी सर्वज्ञ होता है उसने पूर्व सर्वज्ञ द्वारा प्रणीत आगमसे अभ्यास करके अपनी साधना बनाकर निर्विकल्प बनकर अशेषज्ञता प्राप्त की है तो यह सब बात अनादि सन्तानकी है, अन्योन्याश्रित नहीं है। जैसे बीज और अंकुरका अनादि संतान है, यह अंकुर पूर्व बीजसे उत्पन्न हुआ वह बीज पूर्ववृक्षसे उत्पन्न हुआ, वह वृक्ष पूर्व बीजसे उत्पन्न हुआ। इसमें कोई कहने लगे कि यह तो काम यों नहीं बन सकता कि जब बीज हो तो वृक्ष आये और जब वृक्ष हो तो बीज आये ! अरे, ऐसी शङ्का का क्या अवकाश ? सामने देख लो—यह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अनादि संतानसे इसी प्रकार चला आया है। तो इसी प्रकार आगम और सर्वज्ञ इनकी परम्परा भी अनादिसे चली आयी है।

सर्वज्ञत्व साध्य साधनके सम्बन्धका तर्कप्रमाणसे निर्विश्चय होनेसे अनुमानकी निर्दोषता—अब शङ्काकारने जो चौथा विकल्प किया था कि यदि सर्वज्ञके ज्ञानको अनुमानसे उत्पन्न हुआ मानोगे तो वह यों युक्त नहीं है कि साध्यमें और साधनमें सम्बन्ध सिद्ध नहीं है। यह विकल्प भी अयुक्त है। कारण यह है कि साध्य और साधनका सम्बन्ध हम प्रत्यक्षसे नहीं मानते, अनुमानसे नहीं मानते, किन्तु उसके सम्बन्धको सिद्ध करने वाला तर्क नामका अलग प्रमाण है। जैसे पर्वतमें अग्नि है, धुवाँ होनेसे। तो कोई पूछने लगे कि धुवाँ और अग्निका सम्बन्ध क्या तुम प्रत्यक्षसे जानते हो या अनुमानसे ? अरे, जहाँ जहाँ धुवां होता है वहाँ वहाँ अग्नि होती है, जहाँ अग्नि नहीं होती वहाँ धुवां नहीं होता। यह सम्बन्ध हम प्रत्यक्षसे नहीं, अनुमानसे नहीं किन्तु तर्कप्रमाणसे जानते हैं। इसी प्रकार सर्वज्ञकी सिद्धिमें जो अनुमान देंगे, हेतु देंगे उसकी सिद्धि तर्कप्रमाणसे करनी चाहिए। कुछ भी पदार्थ सर्वज्ञके अगोचर नहीं है अथवा कोई भी व्याप्ति प्रमाणके अगोचर नहीं है। ठीक न होगा तो तर्कप्रमाण कहेगा यह गलत है। युक्ति बैठे तो कह देगा कि यह बात यथार्थ है। तो सर्वज्ञकी सिद्धिमें किसी प्रकार बाधा नहीं आ सकती।

आगमाभ्याससे उत्पन्न अविशद ज्ञानसे कालान्तरमें विशद ज्ञानकी उत्पत्तिकी संभवता एक बात शङ्काकारने यह कही कि अनुमानज्ञान और आगम ज्ञान अस्पष्ट ज्ञान हैं और अस्पष्ट ज्ञानसे स्पष्ट ज्ञानकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। यह बात सही नहीं है, कारण यह है कि सर्वथा यह नियम नहीं बनाया जा सकता कि कारणके समान ही कार्य होगा। कुछ सीमामें, कुछ जातिमें तो यह बात कह सकते हैं मगर सर्व दृष्टियोंसे यह बात नहीं कह सकते कि जितने भी कार्य होते हैं वे सब कारण के सर्वथा समान ही होते हैं। यद्यपि यह बात बहुत कुछ अंशोंमे कुछ दृष्टियोंमें यथार्थ है कि कार्य कारणके समान होंगे, लेकिन सर्वप्रकारसे समानता आ जाय कार्यमें यह बात नियमसे सिद्ध नहीं है। जैसे बीजसे अंकुरकी उत्पत्ति होती है। अंकुरसे बीज आदिककी उत्पत्ति होती है—कहाँ तो पेड़का एक ऐसा आकार और उससे उत्पन्न हो गया बीज, हां कुछ दृष्टियोंमें कुछ जातियोंमें समानताओंकी सदृशता कह लो मगर सर्वप्रकारसे सदृशता नहीं बनी। अनुमान, आगमज्ञानसे भी ज्ञान किया और सर्वज्ञज्ञान होनेपर भी ज्ञान हुआ पर वहाँ पूर्ण सदृशता आप लगाना चाहें कि यदि आगमज्ञान अनुमानज्ञान अस्पष्ट ज्ञान हैं तो उनकी भावना, उनकी उपासना कर करके जो जो भी ज्ञान बनेगा वह अस्पष्ट ही बनेगा, यह नियम सदृशतामें नहीं किया जा सकता। सामग्रीके भेदसे सब जगह कार्योंमें भेद पाया जाता है और फिर देखिये—आगम आदिक का ज्ञान बनाया, शिक्षा लेते ही है, शास्त्रोंको जाननेका अभ्यास बनाते ही हैं तो आगम

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ज्ञानसे और अभ्यासका प्रतिबंध करने वाले कर्मके विनाशसे, उपासनाके प्रतापसे विकल्पता मिटकर निर्विकल्प होकर जब अशेषज्ञता प्रकट होती है तो विशदता उत्पन्न हो जाती है, तो मुक्तिका जो साधन है, संसारके संकटोंसे मुक्त होनेका जो उपाय है वह उपाय तो यही है कि प्रथम तो आगमसे अनुमानसे अविशद ज्ञान बनाया जाता है, फिर तत्त्वस्वरूपका अभ्यास किया जाता है, और कोई यह ही डर रखे कि अभ्यास में जो हम ज्ञान सीख रहे हैं यह ज्ञान तो हमारा अस्पष्ट है, मलिन है तो हम इससे निर्मल और स्पष्ट ज्ञानकी क्या आशा करें, और, डरसे इस भावना उपासनाको जोड़ दें तब फिर यह बताओ कि आत्म विकासका और क्या साधन है ? यही हमारा अविशदज्ञान कभी विशद हो जाता है।

विशदज्ञानकी उत्पत्तिमें तत्त्वभावनाका सहयोग—शङ्काकारने यह भी कहा था कि यदि सर्वज्ञवादी यह कहें कि बारबार भावना करनेसे उसमें स्पष्टता आ जाती है तो बारबार भावना करनेसे तो कामी शोकवानक जीवोंके चिन्तन किए हुए पदार्थमें भी स्पष्टता आ जाती है। तो यों सर्वज्ञ भी विह्वल बन जायगा। उसका ज्ञान व्याहत हो जायगा। कभी स्पष्टता आयी कभी खतम हुई, कभी विह्वलता हुई, फिर कभी उस स्पष्ट ज्ञानके लिये ललचाने लगा, ये सब प्रसंग हो जायेंगे, यह कहना भी शंकाकारका अयुक्त है। इस दृष्टान्तमें भी या किसी भी दृष्टान्तमें भी बात एक देश देखी जाती है। भावनाके बलसे ज्ञान विशद हो जाता है इतने मात्रमें ज्ञानके दृष्टान्तकी बात सोचियेगा ! जितने दृष्टान्त दिये जाते हैं उनके जितने धर्म हैं वे सारे धर्मप्रमेयमें, साध्यमें, धर्मीमें पटक दिये जायें यह बात तो युक्त नहीं है, अन्यथा न कोई किसीसे दृष्टान्त मिलेगा न कोई अनुमान बन सकेगा। जैसे कोई कहे—देखो मेरी चादर कितनी बढ़िया सफेद है, जैसे कि बगुला ! तो कोई कहने लगे कि बगुला तो टेढ़ा-मेढ़ा होता है, उसके पैर-पङ्ख आदि होते हैं और तुम दे रहे हो बुगलेका दृष्टान्त, यह तो ठीक नहीं बैठता। तो भाई किस दृष्टिसे, कितनी बातके लिए दृष्टान्त दिया है उतनी ही बात तो पकड़ो ! नहीं तो वह अंधेकी टेढी खीर बन जायेगी। सर्वज्ञके ज्ञानको हम क्रमसे समस्त पदार्थोंको जानने वाला नहीं मानते, जो उस पक्षमें बताये गए तुम्हारे दोष आ सकें। किन्तु होता क्या है कि जब समस्त आवरणोंका क्षय हो जाता है तो उसका ज्ञान एकदम एक साथ पूर्ण स्पष्ट प्रकट होता है और वहाँ इन्द्रियके क्रमका अडङ्गा और व्यवधान भी नहीं रहता। प्रभुका वह ज्ञान इन्द्रियज है ही नहीं। जैसे सूर्यके नीचे बादल आया हो तो बादलका क्षय होते ही सूर्यका एकदम प्रकाश हो जाता है। इसी प्रकार सकल ज्ञानावरणके क्षय होनेपर प्रभुके ऐसा सकल ज्ञान उत्पन्न होता है कि समस्त विश्व एक साथ स्पष्ट ज्ञात हो जाता है। तो ज्ञानस्वभावकी प्रतीति बनावें हम अपने अन्तरमें दृष्टि देकर तो यह बात समझमें आयगी कि होते हैं महापुरुष सर्वज्ञ जो समस्त विश्वके जाननहार होते हैं।

अखिलार्थज्ञताके सम्बन्धमें एक आशङ्का—सर्वज्ञत्वके निराकरणमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

असर्वज्ञवादी यह प्रश्न कर रहा है कि क्या सर्वज्ञपनेका यह अर्थ लगाते हो कि संसार में जितने भी पदार्थ हैं समस्त पदार्थोंका ग्रहण कर लेना ? अर्थात् क्या समस्त पदार्थों के जाननेके मायने सर्वज्ञता है अथवा कुछ मुख्य पदार्थोंको जाननेके मायने सर्वज्ञता है. यदि समस्त पदार्थोंके जाननेको ही सर्वज्ञपना कहते हो तो यह बतलावो कि उन समस्त पदार्थोंका ग्रहण क्रमसे होता है या एक साथ होता है ? यदि सर्वज्ञक्रमसे समस्त पदार्थोंके जानने वाले हैं, यह माना जाय तो भूत भविष्य वर्तमानके जो पदार्थ हैं उनकी कभी समाप्ति ही न होगी। क्रम क्रमसे जानें तो ये जानते ही जायेंगे वहां गुजरते जायेंगे, आगे बढ़ते जायेंगे तो समस्त पदार्थोंके जाननेका सही गुण भी सम्भव नहीं है। यदि कहो कि समस्त पदार्थोंका ज्ञान सर्वज्ञदेव एक साथ करते हैं। तो यह बात यों ठीक नहीं बैठती कि परस्पर जो विरुद्ध पदार्थ हैं – कोई गरम है कोई ठण्डा तो ऐसे परस्पर विरुद्ध पदार्थ एक ज्ञानमें कैसे प्रतिभासित होंगे ? और अगर ठण्डा-गरम दोनों ज्ञान एक साथ आ गए तो फिर उनमें यह निर्णय न बन सकेगा कि यह ठंढा है यह गरम, इस कारण सर्वज्ञपना सम्भव नहीं है।

युगपत् अखिल अर्थका जाननेमें विरोधका अभाव—अब समाधान सुनो – शङ्काकारने यह कहा कि क्रमसे यदि समस्त अर्थोंका ग्रहण माना जाय तो जो अतीत आदिक पदार्थ हैं भूत भविष्य, एक तो उसका स्वरूप ही सम्भव नहीं, क्योंकि क्रमसे जाननेपर न पदार्थोंका अन्त आयगा और न पूरी जानकारी बनेगी। यह बात इसलिए अयुक्त है कि हमने क्रमसे सर्वज्ञके द्वारा जानना माना ही नहीं। प्रभु समस्त पदार्थोंको एक साथ जानते हैं क्रमसे नहीं जानते, और एक साथ जाननेमें जो दोष दिया था कि परस्पर जो विरोधी हैं, ठण्डे गरम हैं उन पदार्थोंका ज्ञानमें प्रतिभास कैसे हो सकता है। तो यह बात तुम्हारी असंगत है। क्यों नहीं हो सकता प्रतिभास क्या पदार्थोंका अभाव है इस कारण न हो सकेगा ? या ज्ञानमें सामर्थ्य नहीं है कि वह परस्पर विरुद्ध समस्त पदार्थोंका प्रतिभास कर सके ? यह तो कह नहीं सकते कि परस्पर विरुद्ध शीत उष्ण पदार्थ है नहीं। वे तो सब एक साथ मौजूद हैं, और यह कहना भी ठीक नहीं कि ज्ञानकी सामर्थ्य नहीं है ऐसी कि परस्पर विरुद्ध शीत उष्ण पदार्थोंको एक साथ जान जाय, क्योंकि यहां भी देख लो ये अन्धकार और प्रकाश परस्पर विरोधी हैं, पर दोनों एक साथ नजर आते हैं। दृष्टि पसारकर यहीं निरखलो जहाँ अंधेरा ज्ञात हो रहा वहाँ अंधेरा है और जितनी जगहमें उजेला है वहां उजेला ज्ञात हो रहा है। तो परस्पर विरोधी पदार्थ ज्ञानमें एक साथ प्रतिभासमें आयें इसमें कोई विरोध नहीं है। साथ ही यह दोष आयगा यदि ज्ञानमें परस्पर विरोधी पदार्थों का प्रतिभास न माना जाय तो फिर कोई अनुमान सिद्ध नहीं हो सकता, क्योंकि अनुमान सिद्ध करोगे तो उसमें साध्य-साधन तो बताओगे ही कि हम यह सिद्ध करना चाहते हैं और इस हेतुसे सिद्ध करना चाहते हैं। तो साध्य अलग चीज है और साधन अलग चीज है। साध्यका ही नाम तो साधन नहीं और साधनका ही नाम तो साध्य

Report any errors at vikasnd@gmail.com

नहीं। तो आखिर ये दोनों भी तो परस्पर विरोधी हो गए। और साध्य साधन दोनों एक साथ ज्ञानमें न आयें तो व्याप्ति क्या बनाओगे ? जहाँ-जहाँ साधन होता है वहाँ वहाँ साध्य है, जहाँ साध्य नहीं है वहाँ साधन नहीं है। यह व्याप्ति तब बनेगी जब दोनोंका एक साथ प्रतिभास हो। और तुम परस्पर विरोधी पदार्थोंका एक ज्ञानमें एक साथ प्रतिभास मानते हो नहीं, तो व्याप्ति बन ही नहीं सकती। जब व्याप्ति न बनी तो अनुमान क्या बनेगा ?

http://www.jainkosh.org

परस्पर विरुद्ध पदार्थोंके ज्ञानमें निर्बाधता व प्रतिनियतार्थग्राहित्वमें अविरोध – शङ्काकारने यह कहा था कि ज्ञानमें एक साथ परस्पर विरोधी पदार्थ जाननेमें आ जायें तो उनका स्वरूप न रहेगा कि यह ठंढा है और यह गरम है। यह बात भी ठीक नहीं है क्योंकि एक ज्ञानमें परस्पर विरोधी पदार्थोंका प्रतिभास होनेपर प्रतिनियत अर्थका बोध न मिट सकेगा। यहाँ भी तो अपन लोग अंधेरा उजेला दोनों एक साथ जान रहे हैं। और उस ही एक ज्ञानमें यह निर्णय भी बना है कि यह अंधेरा है और यह यह उजेला है। तो समस्त पदार्थोंके जाननेका नाम तो सर्वज्ञता और एक साथ ही सबका ग्रहण होता इसका कारण यह है कि ज्ञानमें तो जाननेका स्वभाव पड़ा है और जाननेका स्वभाव होनेपर फिर रोकने वाली कोई चीज है नहीं। आवरण रहे नहीं, तो वह सबको जानेगा। जैसे एक छाता ऐसा आता था कि बटन दाब देनेसे ही खुल जाता था। तो उसमें खुलनेकी प्रकृति पड़ी है, क्योंकि उसमें ऐसी रचना की गई है। केवल उसे एक बटनसे रोक दिया गया इस कारणसे वह छाता बंद पड़ा है। तो खुलनेका उसमें स्वभाव पड़ा है। यदि बटनका उसमें आवरण न रहे तो वह तो तुरन्त खुलेगा। ऐसे ही कोई किवाड़ भी इस तरहके होते हैं कि वे लगे ही रहते हैं, उनपर एक हाथ भरका स्प्रिंगदार पेंच ठुका होता है जिससे वह किवाड़ सदा लगा रहता है। जब तक कोई उसे पकड़ रहे तब तक ही वह खुला रहता है नहीं तो वह झट बन्द हो जाता है। उसमें बन्द रहनेका स्वभाव पड़ा है क्योंकि उसमें उस तरहकी रचना है। इसी तरह ज्ञानमें सबको जाननेका स्वभाव पड़ा है, इसपर ये राग-द्वेष विषय कषाय आदिकके आवरण न रहें तो यह ज्ञान समस्त अर्थोंको जान जायगा। यदि ज्ञान कुछको ही जाने तो उसमें प्रश्न किया जा सकता है कि इतना तक ही क्यों जाना ? सबको जाननेमें प्रश्न नहीं उठता, किन्तु थोड़ा जाननेमें प्रश्न उठता कि प्रभु थोड़ा क्यों जाने ?

सर्वज्ञकी प्रतिक्षण जानन परिणति—अब शङ्काकार कहता है कि चलो मान लिया कि प्रभु सबके जानकार है, लेकिन यह तो बतलावो कि प्रभुने जब एक ही समयमें समस्त पदार्थोंको जान लिया तो दूसरे क्षणमें तो कुछ जाननेको नहीं रहा, तो फिर वे दूसरे क्षणमें अजानकार बन गए ? उत्तर—यह बात तुम्हारी बिल्कुल असम्बद्ध है कि एक क्षणमें ही समस्त पदार्थोंको ग्रहण कर लेनेसे आगे अजानकार न बन

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जायेंगे। अगली तो तब बने जब दूसरे क्षणमें न तो पदार्थ रहे और न ज्ञान रहे। पदार्थ भी सदा रहेंगे और ज्ञान भी सदा रहेगा, फिर अज्ञ कहां रहेगा? जानता रहेगा सदा। दोनों ही अनन्त हैं। न पदार्थका कभी अन्त आयगा और न ज्ञानका। जो जाना है वह आगे भी जानते रहेंगे। जैसे कोई बिजली १५ मिनट तक जल तो क्या कोई वहां शङ्का कर सकता है कि इस बिजलीने पहिले ही सेकेण्डमें सबको प्रकाशित कर दिया अब उसे कुछ भी प्रकाशित करनेको नहीं रहा, तो अब तो बिजली बेकार हो गयी? अरे प्रकाश न रहेगा यह बात तो तब सम्भव है जब यहाँ की सब चीजें उठाकर बाहर फेंक दी जाय या बिजली बुझा दी जाय। पर चीजें भी सब रखी हैं जायेंगी कहां, और बिजली भी जल रही है। तो एक सेकेण्डमें प्रकाश किया आगे भी प्रकाश बना रहता है, इसी प्रकार एक क्षणमें जाना सो ठीक है. पदार्थ भी रहेगा, ज्ञान भी चलेगा, सो सदाकाल जानते रहेंगे।

सर्वज्ञके ज्ञानमें गृहीतग्राहित्वकी आशङ्का—इस प्रसंगमें शङ्काकार एक प्रमाणके स्वरूपसे सम्बन्ध रखने वाली शङ्का कर रहा है कि देखो प्रमाणका स्वरूप तुमने बताया है—जो स्व और अपूर्व अर्थका निर्णय कराये उसका ज्ञान कराये उस का नाम प्रमाण है अर्थात् ज्ञान अपने स्वरूपको जानता है और पर पदार्थोंको जानता है सो भी अपूर्व पर पदार्थोंको, जिसका कि ज्ञान न बनाया हो, ज्ञानमें भी जिसमें कुछ विशेषताको लेकर ज्ञान बन रहा हो ऐसे पदार्थका जो ग्रहण करे उसे प्रमाण कहते हैं, यह अपूर्व शब्द इसलिए डाला था कि कहीं गृहीतग्राही ज्ञान पदार्थ न मान लिया जाय धारावाही ज्ञानको प्रमाण न कबूल किया जाय। अर्थात् जैसे यह चौकी है और १० मिनट तक बराबर कहते रहें कि यह चौकी है यह चौकी है, जो जाना है बस उसे ही जानते रहें तो आगेके ज्ञान कोई प्रमाणभूत नहीं हैं, क्योंकि गृहीतको ग्रहण किया। तो गृहीतग्राही प्रमाण बन जाय इसलिए अपूर्व शब्द डाला था, लेकिन सर्वज्ञके ज्ञानमें गृहीतका दोष आता है। कैसे? सर्वज्ञने सारा विश्व जान लिया फिर दूसरे समयमें वही जानेगा वही जानेगा, नया क्या जानेगा? जब सारा लोक जान लिया गया और उसीको बराबर जानेगा, तो गृहीतग्राही हो गया। गृहीतग्राही ज्ञान प्रमाण नहीं माना गया। तो सर्वज्ञका ज्ञान उन्मत्तोंकी तरहका हो गया। जैसे कोई १० मिनट तक रटे कि चौकी है, चौकी है तो उसे तो लोग पागल कहेंगे, यों ही सर्वज्ञ भी जब सारे लोक को पहिले क्षणमें जान लिया और उसीको जानते रहे तो प्रभु भी उन्मत्त हो गए, प्रभु क्या रहे?

सर्वज्ञके ज्ञानमें गृहीतग्राहित्व दोषका निराकरण—प्रभुज्ञानके गृहीतग्राहित्वकी आशङ्कापर समाधान करते हैं अब कि सूक्ष्मतासे विचार करो, भगवान प्रतिसमय जानते रहते हैं, गृहीतग्राहीपनेका वहाँ दोष नहीं है। वह किस तरह कि भविष्यमें होने वाले पदार्थोंको, परिणमनोंको भविष्यरूपसे जाना था, उत्पत्स्यमानरूप

Report any errors at vikasnd@gmail.com

से उन परिणमनोंको, पदार्थोंको जाना था, वर्तमानरूपसे तो न जाना था, उत्पन्न हो चुके इस ढङ्गसे तो न जाना था और अब उत्तरकालमें कुछ समय गुजरनेपर वही पदार्थ वर्तमानरूपसे जाना गया, न अतीतरूपसे न भविष्यरूपसे और समय गुजरनेके बाद वही भूतरूपसे जाना गया। तो उत्पत्स्यमानरूपसे आकर उत्पन्नरूपमें पदार्थ जाना जाता है तो वह अपूर्व अर्थ है। जिस समय जिस धर्मसे सहित पदार्थ जाना जाता है उस समय, उस ज्ञानमें उस धर्मसे सहित ही पदार्थ प्रतिभासमें आया करता है अन्य प्रकार नहीं। अगर अन्य प्रकारसे प्रतिभास हो तो उसका नाम विपर्ययज्ञान है। भविष्यमें होने वाले पदार्थको वर्तमानरूपसे जानना यह तो मिथ्याज्ञान है। तो सर्वज्ञके ज्ञानमें गृहीतग्राहीपनेका दोष नहीं आता। तो आप पूछ सकते कि अगर किसी पागलने दसों बार यह चौकी है यह चौकी है ऐसा कहा तो उसे अप्रमाण क्यों कहते? इसमें फर्क है। उसके ज्ञानमें कोई नई बात नहीं आती। छद्मस्थके ज्ञानमें किसी बात को लगातार बार बार वही वही कहनेसे कोई नई बात नहीं आती है। इसमें भूत, भविष्य वर्तमानकी इतनी सूक्ष्मदृष्टि नहीं है कि वह तो ठीक इतनेको ही जानता है। यदि कदाचित् उसमें कोई नई बात जाने, तो चौकी है चौकी है यों दसों बार भी जाने तो भी गृहीतग्राही नहीं, क्योंकि हर बारमें कोई उसने नया तत्त्व जान लिया। सर्वज्ञान सर्वथा गृहीतग्राही नहीं है। अतः सर्वज्ञका ज्ञान प्रमाणभूत है।

रागादिकके ज्ञानसे रागादिमत्ताके भावकी आशङ्का—प्रश्न जैसे संसारी लोगोंमें छद्मस्थ जीवोंमें अथवा संसारी अल्पज्ञोंमें रागद्वेषादि बसे हुए हैं तो उन्हें भी तो वे ज्ञानमें लेते होंगे, तब तो फिर वह सर्वज्ञ भी रागी द्वेषी विकारी हो गया। जैसे हमारे ज्ञानमें चौकी आ गयी तो यह ज्ञान चौकीके आकाररूप हुआ, ऐसे ही वे रागद्वेष जब सर्वज्ञके ज्ञानमें आ गए तो वह सर्वज्ञ भी रागद्वेषरूप हो गया। किसी भी तरह समझलो। कोई सिद्धान्त आकाररूप मानते, तो कोई विकल्परूपसे आकारग्रहण मानते, जब दूसरेमें रहनेवाले रागादिक भावोंका साक्षात्कार कर लिया तो फिर प्रभु रागादिक वाला हो गया। यदि वह रागादिक वाला न बने तो समस्त अर्थोंके साक्षात्कार करनेका विरोध आयगा। यह भी नहीं बनता कि विकाररूप परिणमनका तो ज्ञान छोड़ दे याने सर्वज्ञ न जाने, शुद्ध शुद्ध जाने, यह भी नहीं है, क्योंकि ऐसा जाननेपर सर्वज्ञता क्या रही?

रागादिकके ज्ञानमात्रसे रागादिमत्ताके भावका निषेध—उत्तर प्रत्येक आत्माओंमें बसने वाले रागादिक विकारोंका साक्षात्कार कर लेनेसे, जान लेनेसे प्रभु रागादिमान् नहीं बनते, क्योंकि रागादिमान् बननेका कारण तो रागादिकरूप परिणमना है। उसका सम्वेदन करने मात्रसे प्रभु रागादिक वाले नहीं बन जाते, नहीं तो यहाँ भी बड़ी आफत आ जायगी। किसीका अगर थर्मामीटरसे बुखार देख लिया कि १०३ डिग्री बुखार है तो उस बुखारकी जानकारी करने वालेमें भी बुखार आ जाना

http://www.jainkosh.org
Version 1

चाहिए, पर बुखार जान लेनेसे कहीं उसमें बुखार तो नहीं आ जाता। अगर जान
http://sahjanandvarnishastra.org/
लेनेसे बात बीतने लगे तब तो फिर जिस त्यागीके कानोंमें ये शब्द आ गए कि शराब में यह रस है, उस त्यागीका तो त्यागीपन खतम हो जाना चाहिए क्योंकि उसने उस शराबकी बातको सुनकर ज्ञान किया। अथवा किसीने साग भाजी काटनेके लिए चाकू या हसिया मगाया तो उस हसियाका ज्ञान हो जानेसे उसकी जीभ वगैरह भी कट जाना चाहिए। पर भाई ऐसा नहीं है। ऐसे ही समझो कि रागादकका ज्ञान अगर प्रभुने कर लिया तो वे रागादिक रूप न बन जायेंगे। रागादिक रूप बननेका कारण रागादिक रूपसे परिणमना है। रागादिकका परिणमन नहीं बनता। यदि यह कहो कि अगर दूसरे पुरुषने कह दिया कि मदिरामें ऐसा रस होता है और वहीं से सुन लिया तो यह जो ज्ञान किया कहीं रसना इन्द्रियसे ज्ञान नहीं किया। कर्ण इन्द्रियसे ज्ञान किया है और स्वाद आता है रसना इन्द्रियसे। तो कहीं सुन लेनेसे उस में वह दोष नहीं आ गया। ऐसे ही सर्वज्ञका ज्ञान इन्द्रिय और मनसे होता ही नहीं है, और ये सुख, ये रागादिक इन्द्रिय और मनसे सम्बन्ध रखते हैं इस कारण किसी पुरुषका रागादिक विकार जान लेने मात्रसे प्रभु रागादिक वालेने हो जायेंगे। रागादिक तो उन जीवोंमें उत्पन्न होते हैं जो इन्द्रियके विषयोंके सेवनकी इच्छा रखते हैं और इन्द्रियोंमें मद चढ़ता है जब उनमें रागादिक होते हैं, पर भगवानमें मोह भी नहीं, इच्छा भी नहीं, इन्द्रिय भी नहीं, तो उनमें रागादिक भावोंकी तो आशङ्का रंच भी नहीं हो सकती।

ज्ञानका अन्यमें अकर्तृत्व व अभोक्तृत्व—प्रभु सर्वज्ञ हैं, समस्त पदार्थों को एक साथ जानते हैं और फिर भी अविकार रहते हैं न वे कर्ता हैं और न भोक्ता हैं। जैसे अपनी आँखें दूरकी चीज देखती हैं पर किसीका कुछ न ये आंखें करती हैं और न भोगती हैं। आँखोंका काम तो देख लेना मात्र है, बस देख लिया। यदि ये आँखें कुछ करने लगें तो फिर क्या है। सामने यदि कोई खम्भा खड़ा है, आपको सूर्यकी धूप नहीं मिल रही है तो आप आँखें खूब फैला दें तो खम्भा हट जाना चाहिए, अथवा बरसातके दिनोंमें जब रसोई बनाती हैं तो लड़कियां गीली होनेसे चूल्हा नहीं जलता, तो वे महिलायें व्यर्थ ही मुखसे फूकनेका व पंखा आदि चलानेका परिश्रम करतीं और वह आग तो आँखोंके देखनेसे ही जल जाना चाहिए, क्योंकि तुम ने आँखोंको कर्ता मान लिया। पर ऐसा नहीं होता है। और, ये आँखें भोगने वाली भी नहीं हैं। अगर आंख भोगे तो आगको देखने पर आंखें ही खतम हो जाना चाहिए जल जाना चाहिए पर ऐसा नहीं है। तो जैसे आँखें परपदार्थको न करती हैं और न भोगती हैं इसी प्रकारसे विज्ञान न किसी परको करता है और न किसी परको भोगता है। मात्र जाननहार है। प्रभु समस्त लोकको जानकर भी केवल ज्ञाता रहता है। उनमें रागद्वेष आकुलता आदिक किसी भी प्रकारका विकार नहीं होता।

प्रधानभूत कतिपय पदार्थके परिज्ञानसे सर्वज्ञत्वका अनभ्युपगम—

Report any errors at vikasnd@gmail.com

अपने ही ज्ञानके मापसे समस्त प्राणियोंके ज्ञानका माप करने वाला पुरुष सर्वज्ञकी कैसे श्रद्धा कर सकता है। उसके विकल्पमें आया कि शायद ये सर्वज्ञवादी लोग संसारके कुछ प्रधानभूत पदार्थोंके जान लेनेके कारण सर्वज्ञ मानते होंगे, सो यह भी विकल्प उनके सामने रख रहा है कि क्या इस कारणसे तुम किसीको सर्वज्ञ मानते हो कि कुछ प्रधानभूत पदार्थोंको वह ग्रहण कर लेता है। जैसे कि सम्यक्त्वके लक्षणमें बताया है कि मोक्ष मार्गके प्रयोजनभूत जीवादिक ७ तत्त्वोंका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। समस्त पदार्थ न जाननेमें आयें तो न आयें, उनकी श्रद्धासे क्या करना, लेकिन जो प्रयोजनभूत तत्त्व हैं उन तत्त्वोंकी श्रद्धा होनेसे सम्यक्त्व होता है। जैसे यहां कहा है इसी तरहसे यह भी कहते होंगे कि संसारके समस्त पदार्थोंको जान लेने की आवश्यकता नहीं है। सर्वज्ञ होनेके कारण प्रधानभूत कुछ पदार्थोंके जान लेनेसे सर्वज्ञ हो जाता होगा। यदि ऐसा विकल्प करें तो शङ्काकार कह रहा है कि यह भी बात बन नहीं सकती, क्योंकि पहिले वह समस्त पदार्थोंका ज्ञान करे, फिर उसमेंसे छाँट करे कि ये तो हमारे प्रयोजनके पदार्थ हैं और ये हमारे गैर प्रयोजनके हैं तब तो प्रयोजनभूत पदार्थोंकी श्रद्धा कर सकेगा। यह पदार्थ प्रधान है ऐसा निश्चय समस्त पदार्थोंके ज्ञान होनेपर ही बन सकता है अन्य प्रकारसे नहीं। तो यह बात भी ठीक नहीं बैठती। जब सबको जान नहीं सकता तो सबमें ये प्रधान पदार्थ हैं ऐसी छटनी भी नहीं कर सकते। इस आशङ्काका समाधान तो इतना है कि कुछ पदार्थोंका ज्ञान करके सर्वज्ञता बनती है ऐसा मानता कौन है? सर्वज्ञ लोकालोकके समस्त पदार्थोंको एक साथ एक ही समयमें स्पष्ट जानता है और इसकी सिद्धि बहुत विस्तार पूर्वककी है और की जा रही है। प्रभु सर्वज्ञ है तो त्रिकाल त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थोंके जान लेनेसे सर्वज्ञ है और यह बात सुगम पद्धतिमें आ सकती है कि जब आत्माका ज्ञान स्वभाव है और ज्ञानका काम जानन है. और उस जाननमें यह कैद नहीं है कि सामने की ही बात जाने, इतनी ही बात जाने। उसका तो जाननेका काम है। यह ज्ञान बाहरमें जानकर नहीं जानता किन्तु अपने ही प्रदेश महलमें विराजा हुआ वह ज्ञान महाराज सारी व्यवस्था बनाता रहता है, जानता रहता है। तो जब ज्ञानमें जानने का स्वभाव है और उस ज्ञानपर आवरण कोई रहे नहीं तो इसका सीधा अर्थ है कि जब निरावरण ज्ञान होता है तो यह ज्ञान समस्त विश्वका जाननहार हो जाता है।

सर्वज्ञ द्वारा अतीत अनागत पदार्थोंकी अज्ञेयताकी आशङ्का - अब शङ्काकार एक शङ्का और कर रहा है कि यह समझमें नहीं आता कि कोई पुरुष जिसे आपने सर्वज्ञ मान लिया वह भूत और भविष्यकी चीजोंको जाने, यह सम्भव ही नहीं है। क्यों सम्भव नहीं कि उसका स्वरूप ही सम्भव नहीं। जो गुजर गया, वह अब है क्या कुछ? असत् हो गया। जो होगा कभी वह है क्या अभी? वह तो असत् है। जब अतीतके पदार्थ और भविष्यके पदार्थ असत् हैं, हैं ही नहीं तो असत्को अगर ग्रहण करना ही मान लिया जाय तो जिसकी आँखोंमें एक तिमिर रोग हो जाता, कि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ीज नहीं है. पर दिखती है अथवा चीज छोटी है, पर बड़ी दिखती है, तो उसके ज्ञान को भी प्रमाण मानो, क्योंकि अब तो यह माना जाने लगा कि जो नहीं है उसे भी जान लिया जाता है। जैसे तुम्हारा सर्वज्ञ अतीतकी बात जान लेता है और अतीत कुछ है नहीं ? कोई कहे कि हमारे दादा थे ? थे तो थे, पर वे अब हैं क्या ? तो जो चीज है नहीं उसका ग्रहण सर्वज्ञ कैसे कर लेगा ? स्वरूप ही नहीं है । और, यदि असत्को ग्रहण करने लगे, जो नहीं है उसकी भी जानकारी बनने लगे तो फिर अटपट बहुतोंका ज्ञान करलें। यदि कहो कि नहीं, उस अतीत और भविष्यकी चीजको सत्व रूपसे प्रभु जानते हैं, जो गुजर गया उसे भी सत्रूपसे जानते हैं और जो होगा उसे भी सत्रूपसे जानते हैं, तो इसके मायने हैं कि अतीत और भविष्य कुछ नहीं रहा, सब खतम हो गया, जब गुजरे और अनागतको सत्रूपसे जाना तो इसका अर्थ यही है कि वर्तमान बन गया। और, अब है तो अतीतकी बात और जान रहे हैं वर्तमानरूप से तो वह मिथ्याज्ञान है। यदि ऐसा है तो सर्वज्ञ तो महा झूठा कहलाया।

सर्वज्ञद्वारा अतीतअनागत वर्तमान समस्तकालवर्ती पदार्थोंकी ज्ञेयता— अब अतीतके स्वरूपत्वकी आशङ्काका समाधान हो रहा है। यह कहना तुम्हारा युक्त नहीं है कि अतीत भविष्यका ग्रहण कैसे हो ?क्योंकि उनका स्वरूप ही सम्भव नहीं। यह बात इसलिए गलत है कि अतीतकी चीज वर्तमान सम्बन्धसे तो असत् है, पर अतीतकालके सम्बन्धरूपसे तो अभाव नहीं है, वह था तो। जो चीज गुजर गई उसमें था तो लगा ही है,है न लगा तो क्या हुआ, था रूपसे 'है" तो लगा और जो भविष्य की चीज है वह भविष्यसे सम्बन्धित सत् हो गया अर्थात् होगा। जैसे वर्तमान कालके सम्बन्धमें वर्तमानको वर्तमान सत् कहते हैं इसी प्रकार अतीतकालमें हुए परिणमनमें अतीतकालके सम्बन्धरूपसे ही सत् है, हम अतीतकालकी बातको वर्तमानकालके सम्बन्ध रूपसे सत् नहीं कह रहे हैं क्योंकि वर्तमानकाल विषयक सत् और अतीतकाल विषयक सत् इन दोनोंमें परस्पर भेद है, यह नहीं कहा जा सकता कि अतीतकी बात व भविष्य में होने वाली बात यदि वर्तमानरूपसे सत् है स्वरूप तो बन गया । और, दूर क्यों जाते हो, ? अपनेपर जो बातें गुजरी हैं १०–२० साल पहिले वे सब ज्ञानमें आ रही हैं कि नहीं ? तो उसका क्या स्वरूप बना ? दादी, नानी हो गई और आज नहीं हैं तो उनका भी कभी कभी ख्याल आता है। लोग ऐसा कहते भी हैं कि जब कोई संकट आता है तब नानीका ख्याल आता है तब नानीका ख्याल आता है, तो वह सब दादी नानी आदिक सबका स्वरूप ज्ञानमें आया कि नही। अतीत भी अतीतरूपसे सत् है और वह इस समय ज्ञानमें जो आ रहा है वह ज्ञानमें तो वर्तमान सत् है । उसका जो जानन हो रहा है वह जानन इस आत्माका परिणमन है और वह आत्म परिणमन रूपसे वर्तमान सत् हैं , पर उसमें जो गुजरी बात ज्ञानमें आयी वह अतीत रूपसे ही सत् है यदि कहो कि अतीतकालकी बात वर्तमानकालसे सम्बन्धित होकर सत् नहीं है अतएव कुछ नहीं है तो हम कहेंगे कि वर्तमानकालकी बात अतीतकालसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

सम्बन्धित सत् नहीं है, वर्तमानकालकी भी बात कुछ नहीं है । यह भी बात नहीं कि अगर अतीतकालकी बातको हमने जान लिया तो वह वर्तमान बन गई, जानन वर्तमान है, विषयभूत पदार्थ वर्तमान नहीं है, वह तो अपने ही कालमें नियत सत्त्वरूपसे ही है ।

स्वभावश्रद्धासे आत्मविकासके अवबोधक सम्बन्ध – इस स्थलका प्रयोजन यहाँ इतना है कि कल्याणके अर्थं तो ये सब सिद्धान्त बनाये गए—घर छोड़कर जङ्गलमें निवास करना, ये सब एक आत्म शान्तिके लिए ही रचे गए और वहाँ भी जाकर यथार्थ बोध प्राप्त न हुआ तो मनुष्यभवका लाभ क्या मिला ? इस कारण आत्महितकी वाञ्छा तो है एक समताभावसे तत्त्वकी खोज करनी चाहिए कि वास्तविकता क्या है । जो जिस मजहबमें उत्पन्न हुआ उस ही के रङ्गमें रङ्गकर निरीक्षण करें यह प्रकृति न बनना चाहिए, किन्तु वास्तविकता क्या है, आत्महित किसमें है, इस खोज सहित तत्त्वस्वरूपको जानना चाहिए । सर्वज्ञ हम मानें चाहे न मानें, उससे आत्महितमें अन्तर नहीं पड़ता, लेकिन सर्वज्ञका निषेधकर ऐसी दृष्टि रखें तो उससे आत्महितमें अन्तर इतना आता है कि अपने आत्मस्वभावका परिचय नहीं बनता है, और आत्मस्वभावके परिचय बिना आत्महित सम्भव नहीं है । जो पुरुष आत्मस्वभाव को परखेगा, आत्मा ज्ञानस्वरूप है, उसका कार्य जानन है, जाननेमें क्या आता है ? जो है सो आता है । बस इस हीका अर्थ है कि आत्मामें सकल सत्को जाननेका स्वभाव पड़ा है । और, स्वभाव पड़ा है यह मानते रहें और यह श्रद्धा न करें कि कोई पुरुष ऐसा भी होता है कि जिसके यह स्वभाव पूर्ण विकसित होता है अर्थात् समस्त पदार्थोंको जानता है । यदि यह श्रद्धा न बनी तो स्वभावकी परख भी क्या हुई ? पानीका स्वभाव ठंढा है जैसा कि लोकमें कहा करते हैं और किसीको गरम गरम ही पानी मिलता रहे और श्रद्धामें वह यह बात रखे कि जल कोई ठंढा रहा नहीं करता तो फिर उसका स्वभाव माननेका अर्थ क्या रहा ? तो जो आत्मस्वभावसे अपरिचित है उसका यह श्रद्धान होगा ही कि कोई निरावरण निर्मल ज्ञानी पुरुष समस्त सत्को जाने ।

अतीत और अनागत पदार्थोंके जाननेका स्वभाव—शङ्काकारकी ओर से फिर प्रश्न होता है कि जो अतीतकी बात है, गुजरी बात है वह वर्तमान ज्ञानके कालमें तो है ही नहीं तो उसका ज्ञान कैसे हो जायगा, और यदि सन्निधान मानते हो कि अतीत की चीज भी निकट है तो वह वर्तमान बन जायगा । जैसे कि ये सभी वर्तमान पदार्थ निकट हैं ना, तो वर्तमान है इसी प्रकार गुजरी बात यदि निकट है तो उनका ज्ञान नहीं हो सकता । उत्तर देते हैं कि यह नियम नहीं बनाया जा सकता कि जो सन्निधानमें हो उस हीका ज्ञान हो । जब कोई अनुमानज्ञान बनाता है और उसमें साध्य–साधनकी व्याप्ति करता है, जहाँ जहाँ धुवाँ होता है वहाँ वहाँ अग्नि होती है ।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तो लो, इस ज्ञानमें कितनी जगहके धुवां और आग जान लिये ? क्या इस ही नगरके या इस ही देश के ? अरे जहाँ जहाँ भी सम्भव है सारे धुवां जान लिये । जाना सामान्यरूपसे । उनको स्पष्ट आकाररूपसे ग्रहण नहीं किया कि यह धुवाँ इस आकारमें फैला हुआ है, वहाँका धुवां इस गहरे रङ्गमें है. किन्तु व्याप्ति ज्ञानमें जहाँ व्याप्ति जानी है वहाँ सब जगहकी तो अग्नि और सब जगहके धुवाँका ज्ञान कर ही तो लिया जो सन्निधानमें भी नहीं है । तो ज्ञानमें ऐसी प्रकृति पड़ी हुई है कि सन्निधान में हो तो न सन्निधानमें हो तो उसे भी जान लेता है । वर्तमानकी परिस्थिति हमारी एक आधीनताकी है, आवरण सहित होनेसे । तो यहाँ लगता है ऐसा कि थोडा जानें, सामनेकी जानें, पर ज्ञानकी ओरसे ज्ञानमें यह कैद नहीं पड़ी है । इस ज्ञानके द्वारा निकटकी बात तो क्या, बहुत व्यवहित दूरकी भी बात जान लेते हैं । तो अतीतकाल में कोई बात थी वह आज नहीं है फिर भी वह ज्ञानमें तो आता है । हम लोगोंके थोड़े ही अतीतकी बात ज्ञानमें आती है । और निरावरण सर्वज्ञ प्रभुमें अनन्त अतीत की बात ज्ञानमें आती है । इससे अतीतकालकी बातका अतीतकालके रूपमें सत्व है और वह उस ही रूपमें ज्ञानमें जाना जा रहा है । तो ज्ञान तो वर्तमान है पर उसका विषय अतीत है जो अतीतका है, और विषय भविष्यका है तो भविष्यका है ।

सर्वज्ञत्वकी क्वचित् विश्रान्ति विषयक आशङ्का - अब शङ्काकार एक नई शङ्का और रख रहा है कि यह तो बतावो कि सर्वज्ञ जानता तो है पर उसका यह जानना पहिले या पीछे किस जगह किसी समय कहीं विश्रान्त भी होता है, समाप्त भी होता है, कहीं आराम भी लेता है कि नहीं ? या एकदम जाननेकी कवायत हो करता रहा है । अगर यह कहीं विश्राम करने लगता है तो इसका अर्थ है कि अखिल पदार्थका ज्ञाता कुछ नहीं रहा । संसार इतना ही रहा, ज्ञान इतना ही रहा । तो फिर अनादि अनन्तपना कैसे रहा संसारमें और कैसे जाना इतना सब अगर कहो कि वह विश्राम नहीं लेता, निरन्तर ज्ञान चलता ही रहता है, कहीं ठहरता ही नहीं है तो अनेक युग भी बीत जायें तो भी सारे ससारका साक्षात्कार हो ही नहीं सकता । क्योंकि ज्ञान भी चल रहा और पदार्थ भी आगे भागते रहे अतीतकालमें भविष्यमें, यह ज्ञान कहां तक पकड़ लेगा किसीको । यह कहना भी प्रलापमात्र है ।

विश्रान्तिके तीन विकल्पोंमें प्रथम विकल्पका निराकरण अब ज्ञान की विश्रान्ति विषयक समाधान सुनो यह जो आशङ्का है कि सर्वज्ञका ज्ञान कहीं विश्राम लेता है या नहीं, तो उस विश्राम लेनेका अर्थ तुमने क्या लगाया । क्या विश्रामका यह अर्थ है कि कुछ पदार्थ जानकर फिर अन्य पदार्थका ज्ञान न करना ? अथवा तुमने यह अर्थ लगाया है कि समस्त विषयोंमें समस्त देशमें समस्त कालमें ज्ञानके गमन करनेकी सामर्थ्य नहीं है सो थक करके बीचमें ही ठहर गया अथवा यह अर्थ लगाते हो कि किसी विषयमें ज्ञान उत्पन्न हो करके विनष्ट हो गया ? इन ३

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रकारके अर्थोंमेंसे तुम्हारा क्या भाव है ? यदि यह कहो कि हम तो विश्रामका यह अर्थ मानते हैं कि कुछ चीजको जाना और बाकीको न जाना ? जैसे कि यहो बालक जवान कोई पढ़ते - पढ़ते थक जाता है तो किताबको बंद कर देना है लो विश्राम करने लगा। जहां तक पन्ने पर अंगुली फेंकते रहे वहाँ तक तो जाना और अब आगे न जाना। इस तरहका विश्राम प्रभुके नहीं है कि कुछ पदार्थोंको जानकर अन्यको न जानें। इसका कारण यह है कि सर्वज्ञदेव पदार्थोंको क्रमसे नहीं जानते। जो क्रमसे जाना करे उसमें तो यह विकल्प किया जा सकता है कि लो कुछ तो जाना था अब विश्राम कर लिया आगेका जानना बद कर दिया। पर प्रभु समस्त पदार्थोंको क्रमसे नहीं जानते। उनका ज्ञान एक साथ होता है, उनका ज्ञान समस्त पदार्थोंका एक साथ ही प्रकाश करता है।

ज्ञानविश्रान्तिविषयक द्वितीय विकल्पका निराकरण—यदि कहो कि हम तो विश्रामका यह अर्थ लगायेंगे कि पदार्थ बहुत दूर तक है, क्षेत्र बहुत लम्बा है, काल बहुत लम्बा हैं तो वहाँ तक ज्ञान जा नहीं सकता। उसके सामर्थ्य नही है इस लिए बीचमें ही रुक गया। तो यह बात यो बिल्कुल ही असम्भव है क्या ज्ञान आदमियोंकी तरह दौड़ लगाकर गमन करके पदार्थोंको जाना करता है, अरे ज्ञान इस तरहसे नहीं जाना करता है, ज्ञान तो आत्माके प्रदेशोंमें ही रहकर यहाँ ही बिराजा हुआ ज्ञानमय प्रभु समस्त विश्वको जान जाता है। ज्ञानका किसी भी जगह गमन नहीं है केवल जैसे कि अनादि अनन्तरूपसे पदार्थ स्थित हैं उस ही रूपसे वे जान लेते हैं। इससे यह कहना भी ठीक नहीं है कि ज्ञान बहुत लम्बे देश-कालमें जान जान कर थक जाता है जिससे आगे जाननेकी सामर्थ्य नहीं रहती है, इस वहीं रुक जाता है ऐसा विश्राम लिया करता है ज्ञान, यह बात ठीक नहीं है।

सर्वज्ञत्वविश्रान्तिविषयक तृतीय विकल्पका निराकरण—तीसरा विकल्प भी अयुक्त है। यों कहना कि ज्ञान किसी विषयमें उत्पन्न होकर फिर नष्ट हो जाता है। ज्ञान कहीं नष्ट हुआ करता है? किसी भी विषयमें उत्पन्न हुआ ज्ञान क्या आत्मस्वभावरूप न रहेगा ? आत्माके स्वभावरूपसे ज्ञानका विनाश असम्भव है। किसी भी पदार्थका स्वभाव नष्ट नहीं हुआ करता। जैसे स्फटिकका स्वभाव है स्वच्छता तो वह उसमें रहती ही है। यदि स्वभाव नष्ट होने लगे तो स्फटिककी स्वच्छता भी नष्ट हो जाय। सभी पदार्थोंमें गड़बड़ी हो जायगी। नीम कड़वी होती है और मिश्री मीठी लगती है। ये दोनों अपने स्वभावको नहीं छोड़ते। क्या कोई मिश्रीको इस तरहसे चख कर खाता है कि कहीं यह कडुवी न हो, अथवा क्या कोई नीमकी पत्तीको क्या मिश्री जैसी मीठी समझकर खा लेता है? नहीं खाता ना, तो जिस वस्तु का जो स्वभाव है नहीं छोड़ता। तो आत्माका स्वभाव ज्ञान है, वह ज्ञान किसी भी विषयमें कुछ जान लें तो जान करके फिर वह ज्ञान नष्ट हो जाय ऐसा नहीं है। जैसे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आग जलकर राख हो जाती है, राख जाती है। इस तरहसे यह ज्ञान जानकर नष्ट हो जाय ऐसी बात नहीं है। वह आग भी नष्ट नहीं होती। आग न रही, राख रहा, जो भिन्न तत्त्व है, पदार्थ है आकार है, मूल है वह नष्ट नहीं हो सकता। जो रूप औपाधिक हो, जैसे स्फटिकमें हरे पीले आदिक रङ्गका कोई आवरण लगा हो तो आवरणके हटते ही वह औपाधिक रङ्ग मिट जायगा, परन्तु स्फटिककी जो स्वच्छता है वह कैसे मिट जायगी ? ऐसे ही आत्मामें जो रागादिक भाव हैं, औपाधिक हैं वे तो मिटाये जा सकते हैं, पर आत्माका ज्ञानस्वभाव किस तरह मिटाया जाय ? ज्ञान स्वभाव है सबको जाननेका स्वभाव है फिर हो गया निरावरण तो निश्चयसे वह सर्वज्ञ ही होता है।

सर्वज्ञके ज्ञानकी कहीं विश्रान्तिका अभाव—सर्वज्ञ न मानने वाले सिद्धान्तने यह प्रश्न रखा था कि सर्वज्ञका ज्ञान पहिले या बादमें कभी विश्रान्त होता है या नहीं ? समाप्त होता है या नहीं ? यदि समाप्त होता है तो सर्वज्ञता न रही। यदि नहीं समाप्त होता है तो अनेक युग बीत जायें तो भी सर्वज्ञता न रह सकेगी। उस सम्बन्धमें विश्रामके अर्थमें सर्वज्ञवादियोंकी ओरसे प्रश्न किया जा रहा था कि विश्रान्त हो गया इसका अर्थ क्या ? न तो इसका यह अर्थ ठीक रह सकता कि कुछ जानकर अन्यको न जानना न यह ठीक रह सकता कि सब विषयोंमें, सब देशोंमें, सब कालोंमें ज्ञान जा न सकता था सो बीचमें ही ठहर गया और न यह भी विकल्प ठीक है कि किसी पदार्थमें ज्ञान उत्पन्न होकर फिर समाप्त हो गया, क्योंकि ज्ञान कभी समाप्त नहीं होता। वह तो स्वाभाविक चीज है, जो औपाधिक चीज हो वही नष्ट हो सकती है। जैसे स्फटिक मणिके ऊपर लगे हुए जो रङ्ग हैं वे तो नष्ट हो जायेंगे, पर स्फटिककी स्वच्छता नष्ट न होगी।

सर्वज्ञत्वकी विश्रान्ति माननेपर अपौरुषेय आगमकी अनाद्यनन्तताकी असिद्धि—ज्ञानविश्रान्तिके विषयमें एक उलहनारूपमें भी समाधान किया जा रहा है कि यदि शङ्काकार यह कहे कि सर्वज्ञका ज्ञान कहीं विश्रान्त हो जाता है। इसलिये सर्वज्ञपना कुछ नहीं है तो ऐसा कहनेवालोंसे यह प्रश्न कर सकते हैं कि फिर तुम्हारे अपौरुषेय आगममें अनादि अनन्तताका ज्ञान कैसे हो सकता है ? क्योंकि वहाँपर भी ये सारे विकल्प रखे जा सकते हैं कि वेद अनादि अनन्त हैं। इस प्रकारका बोध जिन्होंने किया उनका ज्ञान कहीं विश्रान्त होता या नहीं ? अगर विश्रान्त बना तो कबसे, कहाँ विश्रान्त बना ? आगमकी अनाद्यनन्तता जानते समय यदि कहीं ज्ञान विश्रान्त हो गया तब तो अनाद्यनन्त रहा नहीं। यदि विश्रान्त नहीं होता है तो काल भी भाज रहा, और यह ज्ञान भी विश्राम नहीं ले रहा है, चला जा रहा है पीछे, तो भी उसके अनादि अनन्तताकी थाह न रह सकेगी।

सर्वज्ञत्वकी विश्रान्ति माननेपर व्याप्तिज्ञानकी असिद्धिका प्रसङ्ग—

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ज्ञानविश्रान्तिविषयक व्यर्थ विकल्प करनेमें तो जहाँ चाहे आपत्ति दी जा सकती है, और फिर यह तो बतलावो कि साध्य और साधनका जो समस्तरूपसे व्याप्तिका ज्ञान होता है वह कैसे होगा ? जैसे यहाँ अग्नि होना चाहिए, धुवां होनेसे ? इस अनुमानमें जो यह व्याप्ति बनाई गई कि जहाँ जहाँ धुवां होता है वहाँ वहाँ अग्नि होती है, तो तुम्हारा ज्ञान उन सब जगहोंमें जायगा जितनी जगहोंमें धुआँ और अग्नि मिलेगी। तुम्हारा ज्ञान विश्रान्त होगा कि नहीं। अगर विश्रान्त हो गया तो तुमने समस्त साधनोंका कहां ज्ञान पाया ? व्याप्ति न बनी। और विश्रान्त नहीं होता तो साध्य साधन भी बहुत क्षेत्रोंमें पाये जा रहे। यह अग्नि है, यह धुवां हो रहा और तुम्हारा ज्ञान भी उनके जाननेके लिये पीछा कर रहा तो तभी भी तुम सारे धुवां और अग्नि को जान ही नहीं सकते। तो व्याप्तिज्ञान भी न बनेगा। यदि कहो कि सामान्यरूपसे व्याप्तिका ज्ञान किया जाता है। वहां उस अग्निके पीछे दौड़ना नहीं पड़ता। तो सामान्यसे भी माननेपर अनादि अनन्त सामान्यके जाननेमें भी तो यही विकल्प उठ बैठेगा कि वह अनादि अनन्त सामान्यका ग्राहक व्याप्तिज्ञान कहीं थमता है या नहीं ? यह प्रश्न वहाँ भी किया जा सकता है इसलिए व्यर्थके विकल्प उठाकर उलझनमें डालकर जो यथार्थ तत्त्व है उसका निराकरण करना यह तो विवेककी बात नहीं है।

अपनी परखके बलसे सर्वज्ञत्वका निश्चय—भैया ! अपने आपके आत्मापर कुछ बल दें, यहां कुछ परिचय पावें कि मैं क्या हूँ, क्या मेरा सहज स्वरूप है, उसका अवलोकन करते ही स्वयं समझ जावेंगे कि आत्मामें जाननेका स्वभाव है या नहीं। लोग इसको ही जानन समझते हैं जैसे कि हम इन चीजोंके आकारको पकड़ कर रहते कि यह दुष्ट है, भला है, मेरे हितरूप है आदिक रूपसे विकल्पोंमें उलझा हुआ जो ज्ञान बना लोग उसको ही ज्ञान समझते, पर इसमें ज्ञानांश तो इतना ही है जितना कि मात्र प्रतिभास है और जितने ख्याल हैं, विकल्प हैं उलझनें हैं परिग्रहण हैं, याददास्त हैं, ये सब ज्ञानके सहीरूप नहीं है। ये रागादिक भाव रहनेसे इस प्रकार के बखेड़े वाले ज्ञान बनते हैं। तो ज्ञानका विशुद्ध स्वरूप क्या है इसकी समझ होने पर फिर सब समस्यायें सुलझ जायेंगी कि सर्वज्ञ होता है अथवा नहीं।

असर्वज्ञों द्वारा सर्वज्ञत्वके निर्णयकी अशक्यता विषयक एक आशङ्का—अब शङ्काकार अपनी एक शङ्का और रख रहा है हम कैसे जानें कि यह सर्वज्ञ हैं हम हैं असर्वज्ञ ? और सर्वज्ञ कहते उसे हैं जो सबको जान जाय। तो पहिले हम सबको जानें तब ही तो यह निर्णय कर सकेंगे कि देखो यों जो सबको जानता है उसे सर्वज्ञ द्वारा ग्राह्य जो अखिल पदार्थ हैं उनका ज्ञान तब तक नहीं हो पाता है जब तक हम असर्वज्ञजन हैं। हम आप असर्वज्ञ जब जानते ही नहीं कि सर्वज्ञने क्या ज्ञान किया और उसके ज्ञेयमें क्या आया है तो हम कैसे कह सकते हैं कि सर्वज्ञ है। हम लोग स्वयं अल्पज्ञ रहकर यदि सर्वज्ञकी बात कहने लगें तो फिर जिस चाहेगे हम सर्वज्ञ

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कह दें। ये जो बच्चे खेल रहे हैं ये भी तो सर्वज्ञ हैं ऐसा भी हम कह दें, या जो चाहे कह दें। इससे सर्वज्ञकी हठ करना ठीक नहीं है। क्यों दिमागको परेशान करते हो ? सीधी बात है कि जैसे दुनियाके लोग दिखते हैं बस ये ही हैं असली। कोई प्रभु है, सबका जानने वाला है, ऐसी अदृष्ट चीजकी कल्पना करके दिमागमें परेशानी क्यों डाल रहे हो ?

असर्वज्ञ पुरुषों द्वारा सर्वज्ञत्वके निर्णयका समाधान— अब इस आशङ्का का समाधान करते हैं। "सर्वज्ञ है ऐसी कल्पना भी करलो तो भी सर्वज्ञके कालमें भी असर्वज्ञजनोंके द्वारा यह जाना नहीं जा सकता है कि यह सर्वज्ञ है" शङ्काकारका कहना व्यर्थ है। यदि यह नियम बनाकर कि जिसने जो जाना है उसका उतना ज्ञान किए बिना हम उस ज्ञानको नहीं कह सकते कि इसने यह जाना है। तो बतलावो कि वेद आगमका सबका ज्ञान था अमुक ऋषिको यह भी निश्चय आपने कैसे किया ? जब तक आप भी उस ऋषिके ज्ञान बराबर अपना ज्ञान न बनायें तब तक आप ऋषि के ज्ञानको भी नहीं कह सकते। जब सर्वज्ञके बराबर ज्ञान पैदा किए बिना सर्वज्ञको नहीं जान सकते तो किसी साधुके बराबर ज्ञान किए बिना साधुके बारेमें भी कुछ जीभ नहीं हिला सकते। लेकिन ऐसी बात नहीं है। हम अधिक नहीं भी जानते हैं फिर भी यह भाप ही लिया जाता है कि यह बहुत विद्वान है, इसका ज्ञान बड़ा विशिष्ट है। ऐसी भाप कर लेते हैं। और मान लो न हो सके ऐसा तो फिर व्यवहार धर्ममें प्रवृत्ति नहीं रह सकती। कुछ भी हुकम दे भगवान। आंखोंसे नहीं दिखता तो यह मना कर देगा। उपदेश है—भाई हिंसा मत करो, नरकमें जाना पड़ेगा। तो कोई कह दे कि नरक हमें मालूम ही नहीं, हमें चलकर दिखावो तो हम तुम्हारी बात मानेंगे। तब तक तो मानेंगे नहीं। यदि स्वयं ही अपनी पायी हुई बुद्धिकी माप तौल पर सारा निर्णय बनायें तो इससे तो व्यवस्था न बनेगी। यह तो रागमें होता है। २

सर्वांश ज्ञानके बिना ज्ञानीके निर्णयका विरोध माननेमें व्यवहार व्यवस्थाका भी लोप—अच्छा और भी बात करिये कुछ ! बस आप चुप बैठो, बोलो मत,···नहीं, हम तो बोलेंगे।···अच्छा बोलो ! जो भी बोले, जितने शब्द बोले उससे पूछ लो कि इस शब्दकी सिद्धि कैसे हुई ? वह बता न सके तो कहो कि तुम्हें, जब शब्दका ज्ञान ही नहीं तो उसका वाच्य अर्थ क्या जानते होगे ? किसीने कहा कि चौकी उठा लावो।···साहब क्या कहा आपने ?···चौकी !···चौकीका क्या अर्थ है, किस शब्दसे बना, कैसा प्रत्यय लग गया, आप नहीं बता सकते, तो आपने चौकी शब्दका अर्थ ही नहीं जाना। चौकी शब्दसे क्या कहा गया, वह पदार्थ तो आपके ज्ञानमें आ ही गया होगा। जब यह नियम बना रखा कि दूसरेके ज्ञानमें कौन बात कितनी आयी है पूरी तौरसे उतनी न जान सकेंगे तो हम उसके ज्ञानका निर्णय नहीं कर सकते। तो जब सर्वांशसे तुम शब्दकी बात नहीं किया जा सकता। फिर व्य-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वहारकी प्रवृत्ति क्या होगी ? कुछ चालाक लोग होते भी ऐसे हैं कि जिन्हें जो बात पसंद नहीं है या जिस बातको सुनना नहीं चाहते हैं वे उस बातको किसी न किसी तरह बदलकर कोई नई बात छेड़ देंगे ताकि वह बात खतम हो जाय। तो यों कोई कुछ बोल भी नहीं सकता, व्यवहारप्रवृत्ति भी नहीं हो सकती। इस कारण यह माना कि युक्तिसे, तर्कसे जो बात सिद्ध हो जाय वह प्रमाणभूत है। किसीको कोई नकशा बनवाना है तो कहता है कि वह बढ़िया नकशा बनाता है। कोई पूछे कि अच्छा तुम भी नकशा बनाना जानते कि नहीं ? नहीं जानते।...अगर नहीं जानते तो तुमने कैसे समझा कि यह बड़ा अच्छा नकशा बनाना है ? कहीं भी कोई बात थम ही नहीं सकती है। इससे यह बात कहना असङ्गत है कि सर्वज्ञदेवने जितने पदार्थ जाने हैं उतने सारे पदार्थोंका हम ज्ञान नहीं कर पा रहे तो कैसे कहदें कि वह सर्वज्ञ है। यह बात तुम्हारी अयुक्त है, अनेक प्रमाणोंसे और युक्तियोंसे और कुछ अनुभव भी मिला कर यह निर्णय किया गया है कि कोई निरावरण निष्कलङ्क आत्मा ऐसा होता है जो समस्त सत् पदार्थोंको ज्ञान लेता है।

प्रत्यक्षसे सर्वज्ञके अभावकी असिद्धि—अब सर्वज्ञवादी कह रहे हैं कि तुम ही बताओ सर्वज्ञके अभावकी सिद्धि किस प्रमाणसे करोगे, क्योंकि सर्वज्ञकी सत्तामें बाधा देने वाला प्रमाण कोई मिलता ही नहीं, बतलाओ, प्रमाण बनाओ कोई कि सर्वज्ञ नहीं है। तो शङ्काकार प्रमाण बना रहा है कि सर्वज्ञका अभाव है। प्रत्यक्षसे हम जान रहे हैं कि सर्वज्ञ नहीं है और अन्य प्रमाणोंसे भी जान रहे हैं कि सर्वज्ञ नहीं हैं। तो इसपर पूछा जा रहा है शङ्काकारसे कि सर्वज्ञका अभाव जो तुम प्रत्यक्षसे बतला रहे हो बिल्कुल साफ सामने तो है। प्रत्यक्षसे सर्वज्ञ कहीं नहीं है, यों कह रहे हो तो यह बतलाओ कि यह भी प्रत्यक्ष जो कि यह जान रहा है कि सर्वज्ञ नहीं है, सो सब जगह, सब समय, सब जीवोंका प्रत्यक्ष करके निषेध कर रहा है कि सर्वज्ञ नहीं है या किसी जगह, किसी समय, किसी पुरुषके लिए कह रहा है कि सर्वज्ञ नहीं है। यदि कहो कि हम तो सदाके लिए सब जीवोंके लिए सब जगहके लिए कह रहे हैं कि सर्वज्ञ कहीं नहीं है, तो सुनो ! अच्छा, तुमने खूब अच्छी तरहसे निर्णय कर लिया, सब जगह सर्वज्ञ नहीं है। सब जगह देख आये ? सब समय नहीं है सर्वज्ञ ! तो सब समयोंको तुमने देखकर कहा होगा ? जैसे कोई कहे कि इस कमरेमें घड़ी नहीं है, तो जब पूरा कमरा देखले तभी तो कह सकेगा कि घड़ी नहीं है, यों ही यदि तुमने सब जगह, सब समय सबका ज्ञान कर लिया तो तुम ही सर्वज्ञ हो गए। सर्वज्ञका क्या निषेध करते हो ? क्योंकि समस्त देश, समस्त काल, समस्त आत्माका साक्षात्कार किए बिना प्रत्यक्षसे यह निषेध नहीं कर सकते कि सर्वज्ञ नहीं है, और यदि कहो कि नहीं, हम तो किसी जगहके लिए, किसी समयसे, किसीके लिए कह रहे हैं कि सर्वज्ञ नहीं है तो ठीक है, इससे सर्वथा तो सर्वज्ञका अभाव नहीं हो गया। तुम्हें सामने नहीं नजर आता सो यहाँ नहीं है कि सब जगह नहीं है ?

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अभावसाधक प्रत्यक्षके निवर्तमानत्वका शङ्काकार द्वारा प्रस्ताव – यहां शङ्काकार प्रत्यक्षसे सर्वज्ञका अभाव सिद्ध करना चाहता है। तो इस प्रसंगमें शङ्काकार यह कह रहा है कि प्रत्यक्ष जो है वह प्रवृत्ति करके अभाव नहीं जानता, किन्तु निवृत्त होकर अभाव जानता है। प्रत्यक्षकी दो तरहकी गतियां होती हैं। सद्भावको तो प्रवर्तमान होकर जानता है और अभावको निवर्तमान होकर जानता है। कैसे ? कहा कि कमरेमेंसे घड़ा उठा लावो। घड़ी रखी थी। तो उसने घड़ीको जो जाना प्रत्यक्षसे वह प्रवर्तमान होकर जाना है, यह है घड़ा। और कहा कि उस कमरे मेंसे चटाई उठा लावो, चटाई थी नहीं। कमरा देखा तो अब प्रत्यक्षसे जो यह निर्णय किया कि चटाई नहीं है सो प्रवर्तमान होकर नहीं किया, किन्तु अलग हटकर कि है ही नहीं। तो प्रत्यक्षके सद्भावसे जाननेमें तो प्रवर्तमान गति होती है और अभाव जाननेमें निवर्तमान गति होती है। कितनी कलासे बात रखी है। कोई चीज हो और उसे प्रत्यक्षसे जाने तो हम कहाँ लगकर जानते हैं ? यह है अभाव। चलो, कुछ हटकर निवृत्त होकर उसके अभावको जानते हैं। तो यह कहना तुम्हारा कि क्या तुम किसी जगह सब जगह देख आये कि सर्वज्ञ है ? तो कहा कि हमारा प्रत्यक्ष प्रवर्तमान होकर जाननेके लिए नहीं है वह तो निवर्तमान होकर जान रहा है।

प्रवृत्ति निवृत्तिका युक्तिसंगत सम्बन्ध अब निवर्तमान प्रत्यक्ष इसका समाधन दिया जा रहा है कि देखो प्रवृत्ति और निवृत्तिकी बात सर्वथा इस प्रकार नहीं हैं। सम्बन्ध हुआ करता है दो पदार्थोंका। कारण कार्यका, व्यापक व्याप्यका। जैसे अग्नि तो कारण है और धुवां कार्य है, सब लोग जानते है। धुवां किससे उत्पन्न होता है······अग्निसे। तो धुवांका कारण आग है या आगका कारण धुवा है ? आगका कारण धुवां धुवांसे आग उत्पन्न हुआ करती। अब देखिये—कारण हट जायगा तो कार्य हट जायगा या नहीं ? हट जायगा। तो कारणके हटनेसे कार्य हटता है, ऐसी निवृत्ति तो युक्तिसंगत है। ऐसे ही व्यापक और व्याप्य। जैसे नीमका पेड़ और पेड़। पेड़ शब्द तो व्यापक है और नीम व्याप्य है। पेड़ नीमका भी होता है और भी होते हैं। जो अधिक जगह रहे उसे व्यापक कहते हैं और जो कम जगह रहे उसे व्याप्य कहते है। तो व्यापक है पेड़ और व्याप्य है नीम। अगर पेड़ नहीं है तो नीमका भी तुम अभाव कह दोगे। जब पेड़ ही नहीं है तो नीम क्या। किन्तु उल्टी बात न कह सकेंगे कि नीम नहीं है तो पेड़ नहीं है। व्याप्यकी निवृत्ति करके व्यापकको नहीं हटा सकते। इसी कारण कार्य नहीं है तो कारण भी नहीं है यह भी नहीं हटा सकते। अगर धुवाँ नहीं है तो वहां आग भी नहीं है। यह भी निर्णय नहीं बनता। खूब धधकती हुई आग, लोहेके गोलेमें बसी हुई आग, लोहा भी तो ईन्धन है, वहां धुवा नहीं नजर आता। इस कारण व्यापक और कारणकी निवृत्ति होवेपर व्याप्ति और कार्यकी निवृत्ति तो प्रसिद्ध है, पर उल्टा काम न चलेगा कि व्याप्यका अभाव है तो व्यापकका अभाव है। इस तरह अटपट अगर एकके अभावसे दूसरेका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अभाव मानोगे तो कहीं घट नहीं है तो सभी वस्तुवें न रहें।

हमारे निवर्तमान प्रत्यक्षसे सर्वज्ञत्वके निषेधकी असङ्गतता — देखिये ! शङ्काकारकी युक्ति कि चूँकि प्रत्यक्ष प्रवर्तमान होकरके जानता है और निवर्तमान हो करके भी जानता है तो जो निवर्तमान होकर प्रत्यक्ष है वह सर्वज्ञका अभाव जान रहा। इस शङ्कापर यह व्यवस्था बतायी जा रही है कि देखो सर्वज्ञका प्रत्यक्ष न तो हम लोगोंके प्रत्यक्षका कारण है, देखते जाना, और सर्वज्ञका प्रत्यक्ष न हम लोगोंके ज्ञानका व्यापक है। सो सर्वज्ञत्वमें और हमारे ज्ञानमें व्यापक-व्याप्य कारणकार्यका कोई सम्बन्ध ही नहीं। जैसे घड़ा और कपड़ा इन दोनोंमें कुछ सम्बन्ध है क्या ? सम्बन्ध तो नहीं है, फिर यह कहा कि घड़ा नहीं है तो कपड़ा भी नहीं है, कोई युक्ति ठीक है क्या ? तो इस प्रकार हमारा ज्ञान और सर्वज्ञका ज्ञान इन दोनोंमें न व्याप्य व्यापक सम्बन्ध है, न कार्य कारण सम्बन्ध है। हम स्वतन्त्र द्रव्य हैं, सर्वज्ञ स्वतन्त्र द्रव्य हैं, फिर यह कैसे कहा कि हमारे ज्ञानकी निवृत्ति होनेपर सर्वज्ञकी भी निवृत्ति हो गयी, सर्वज्ञका भी अभाव हो गया, यह कैसे कह सकते ? सर्वज्ञ एक निर्दोष निरावरण आदर्श आत्मा है। हम आप कलङ्कित विषय व्यामुग्ध कषायवान आत्मा हैं। हमको अगर प्रभुता नजर नहीं आती है यहाँ तो हम सब जगहके लिए प्रभुका निषेध करदें कि प्रभु कहीं नहीं है यह बात तो सङ्गत नहीं हो सकती है। सर्वज्ञता जाननेके लिये देखो युक्तियां भी निर्बाध हैं और अधिक उलझनमें नहीं पड़ना चाहते हो तो शान्त होकर बाह्य सब पदार्थोंका उपयोग छोड़कर बड़े विश्रामसे अपने आपमें ठहर तो जावें, उस ही क्षण हमें ज्ञानका सही स्वरूप नजर आयगा। फिर उससे सर्वज्ञत्वकी प्रतीतिमें विलम्ब न होगा।

प्रत्यक्षसे सर्वज्ञका अभाव माननेपर आपत्ति — सर्वज्ञका अभाव बतानेके लिये शङ्काकार कह रहा था कि प्रवर्तमान प्रत्यक्ष तो सर्वज्ञका अभाव नहीं बताता किन्तु निवर्तमान प्रत्यक्ष सर्वज्ञका अभाव बताता है, अर्थात् है यह, यों लग करके प्रत्यक्ष नहीं जानता कि सर्वज्ञका अभाव है, किन्तु कहीं कुछ नहीं है, यों अभावरूपसे प्रत्यक्ष जानता है कि सर्वज्ञ नहीं है। इस विषयमें अभी अभी बहुत कुछ कहा गया था। अब यह कह रहे हैं कि इस प्रकारकी यदि हठ करते कि निवर्तमान प्रत्यक्ष अभावको जानता है तो घट आदिकके अभावकी भी सिद्धि न हो सकेगी। घट नहीं है यह भी सिद्ध नहीं किया जा सकता। क्योंकि, उसमें भी हम यह कहेंगे कि घटके अभावको प्रवर्तमान प्रत्यक्ष ग्रहण नहीं करता किन्तु निवर्तमान करता तो वहाँ भी कारण कार्य व्याप्य व्यापककी कोई वृत्ति नहीं बनती है, और घटका अभाव तो इस तरह सिद्ध होता है कि एक ही ज्ञानमें वह जमीन जहां नहीं है यह जाना जा रहा है तो घटका अभाव जिस आधारमें सिद्ध करना है उस एक ज्ञानमें उस जमीनका उस पदार्थान्तरका तो ग्रहण है तब तो कह सकते हैं कि निवर्तमान प्रत्यक्षसे घटका अभाव

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बता दिया। जैसे कहो कि उस अलमारीमें घड़ी रखी है ले आवो, और थी नहीं वहाँ घड़ी, तो जिस ज्ञानमें यह बात समायी है कि घड़ी नहीं है उस ज्ञानमें घड़ी रहित वह समस्त अलमारीका ज्ञान है तब जान सकते हैं कि घड़ी नहीं है। पर यहाँ तो यह बात नहीं बन सकती, क्योंकि एक ज्ञानमें संसग करें ऐसे सवज्ञके अभावका आधार कुछ है नहीं, अर्थात् सब क्षेत्र कहां जाना। जहां निवर्तमान प्रत्यक्षसे सर्वज्ञका अभाव सिद्ध कर सकें ? दूसरे अनेक बार घट सहित जमीन देखी और अब कहीं नहीं दिखनेमें आता तो वहाँ कह सकते कि घटका अभाव है। इस प्रकार सर्वज्ञ सहित कुछ स्थल देखनेके बाद सर्वज्ञ न मिले तो कह सकते कि निवर्तमान प्रत्यक्षसे यह हमने जाना कि सर्वज्ञ नहीं है। इससे प्रत्यक्षसे तो यह सिद्ध नहीं किया जा सकता कि सर्वज्ञका अभाव है।

अनुमानसे सर्वज्ञका अभाव सिद्ध करनेके हेतुमें तीन विकल्पोंका प्रश्न- यदि कहो कि हम अनुमानसे सिद्ध कर लेंगे कि दुनियामें सर्वज्ञ कोई नहीं है और यह अनुमान देंगे—कि कोई पुरुष सवज्ञ नहीं हो सकता, क्योंकि वक्ता होनेसे। जैसे गली के मुसाफिर लोग वक्ता हैं, बोलते रहते हैं तो ये सर्वज्ञ हैं क्या ? जो बोले सो सर्वज्ञ नहीं। जो उपदेश दे, वह सर्वज्ञ नहीं, उदाहरण भी कह दिया शङ्काकारने कि गली चलने वाले मुसाफिर, वे कभी चुपचाप नहीं चल सकते, मौनसे नहीं चल सकते कुछ न कुछ बोलते चलते हैं, तो जैसे ये बोलने वाले मुसाफिर सवज्ञ नहीं हैं इसी तरह बोलने वाले जो तुम्हारे उपदेष्टा हैं ऊँचेसे ऊँचे चाहे उनका नाम अरहत रख लो तुम्हारी बात है, पर वे अरहंत भी बोलते हैं इसलिए सर्वज्ञ नहीं हैं, इस अनुमानसे सिद्ध करेंगे कि सवज्ञ है ही नहीं। समाधानमें पूछते हैं उनसे कि इस अनुमानमें जो तुमने वक्तृत्व हेतु दिया है चूँकि वक्ता हैं प्रभु, इस कारण सर्वज्ञ नहीं हो सकते। तो वक्तापनका अर्थ तुमने क्या लगाया ? क्या प्रमाणान्तरोंसे, जिसमें कोई विवाद नहीं होता, ऐसे यथार्थ पदार्थका व्याख्यान करनेका नाम वक्तापन है या जिसमें बाधा आती है ऐसे बाहरी पदार्थोंके भाषण करनेका नाम वक्तापन माना है या खाली वक्ता सामान्य माना है ? जो वक्तृत्व हेतु देकर सर्वज्ञका अभाव सिद्ध कर रहे हो उस वक्तृत्वका भाव क्या रखा तुमने ?

वक्तृत्वविषयक तीनों विकल्पोंका समाधान यदि यह कहो कि अन्य प्रमाणसे जिसमें बाधा न आवे, सही-सही उतरे ऐसे यथार्थ पदार्थोंका उपदेश करते हैं तुम्हारे प्रभु, इसलिए सर्वज्ञ नहीं हैं। तो यह तो विरुद्ध बात कह रहे हो। यदि कोई सही-सही बातको प्रमाणान्तरोंसे जो सम्मत है, किसीको बाधा नहीं आती जिसमें, ऐसे सूक्ष्म पदार्थोंका कोई व्याख्यान दे, उपदेश करे ऐसे ही वक्तापनेका तो सवज्ञमें हम सद्भाव मानते हैं। जो समस्त सूक्ष्म आदिक पदार्थोंका यथार्थ उपदेश करे वही तो सर्वज्ञ है, यदि कहो कि नहीं, जो झूठी बातोंका उपदेश करे ऐसा जो वक्ता है वह सर्वज्ञ नहीं हो सकता। कहते हैं कि यह बात तो हम मानते हैं, विपरीत

Report any errors at vikasnd@gmail.com

बातका भाषण करने वाला सर्वज्ञ कैसे हो सकता है ? यदि कहो कि वक्तृत्व सामान्यको हम हेतु बनाते हैं तो वक्तृत्व सामान्य तो सर्वज्ञको भी सिद्ध कर सकता है और असर्वज्ञको, अल्पज्ञको, बेवकूफको भी सिद्ध कर सकता है । तो उस हेतुसे तुम्हारी सिद्धि नहीं हो सकती । सर्वज्ञ नहीं है वक्ता होनेसे, इसमें अनैकान्तिक दोष है, क्योंकि वक्ता सर्वज्ञ भी होता है अल्पज्ञ भी । तो उस हेतुका अपने साध्यके साथ नियतपना न रहा कि जो जो वक्ता होता है वह सर्वज्ञ नहीं होता नियतपना होता ही नहीं है । जिस हेतुसे तुम सर्वज्ञका अभाव बताते, वक्ता सामान्यकी बात कहते कि यह सर्वज्ञ चूँकि वक्ता है इस लिये वह सर्वज्ञता नहीं है, यों हेतुका कोई गड़ाव न हो सका । अपने साध्यके साथ भी नियत न बन सका ।

निरभिलाष दिव्यध्वनिके रूपमें वक्ताकी साधारण वक्तावोंसे असमानता - यदि यह कहो कि सर्वज्ञ जो होगा वह वक्ता हो ही नहीं सकता, इसलिये जो जो वक्ता है वह सर्वज्ञ नहीं है । हमारा यह अनुमान सही बैठेगा क्योंकि जो सर्वज्ञ है वह वक्ता क्या हो सकता है । जो कहे, बके, बोले वह सर्वज्ञ कैसे ? कहते हैं कि यह बात ठीक नहीं है क्योंकि कर्तृत्व मात्रसे सर्वज्ञताका निषेध नहीं हो सकता । कारण यह है कि हम लोग जैसे वक्ता हैं उस ढङ्गके वे वक्ता नहीं है, उनकी दिव्यध्वनि बिना इच्छाके भव्य जीवोंके पुण्य विपाकके निमित्तसे उत्पन्न होता है । जैसे मेघ गरजते हैं तो क्या जानकर गरजते हैं ? क्या रागद्वेष करके बरषते हैं या निर्दयतासे बरषते हैं ? अरे जिन जीवोंका पुण्योदय है वहाँ सही बरषते हैं और जिन जीवोंका पुण्योदय नहीं है ऐसे क्षेत्रोंमें ऐसे ही निमित्त मिल जाते हैं । तो प्रभुका जो उपदेश होता है वह निरीह होता है, जानकर इच्छा करके, मुझे इनके प्रश्नका समाधान देना है ऐसा भाव करके उनका उपदेश नहीं होता । प्रभुसे कोई बोले, कुछ प्रभुसे पूछे तो प्रभुका कोई उत्तर न मिलेगा । उनमें राग नहीं है । प्रभुका तो अपना समय आनेपर अथवा किसी विशेष पुण्यवानके आनेपर उस निमित्तसे उनकी दिव्य ध्वनि खिर जाती है । देखो कोई चक्री आदिक महान पुण्यवान आ जाय तो भी भगवानकी दिव्यध्वनि खिरे तो उसमें रागका रंच भी दोष नहीं है । यहाँ तो दोष लगा सकते कि कोई वक्ता किसीसे कहे—भाई यहाँ आवो यहाँ बैठो, हमारी बात सुनो, पर किसी पुण्यवान पुरुषके आनेपर दिव्य ध्वनि भी खिरे तो यों समझिये - जैसे अचेतनमें अचेतन निमित्त होता है ऐसे ही उसका पुण्य विपाक था और यहाँ दिव्य ध्वनि खिर गई निमित्तकी बात हुई । जानकर मानकर दिव्य ध्वनि नहीं खिरती प्रभुके । जो ग्रन्थोंमें वर्णन आता है कि महावीर भगवानसे श्रेणिकने प्रश्न किया और भगवानने फिर समाधान किया तो यह एक भुलपायकका सम्मान है । श्रेणिकने प्रश्न किया तो गौतम गणधरसे, उत्तर दिया गणधरने । जब दिव्यध्वनि खिरी तो सबके लिये एक समान रूपसे खिरी । तो वक्ता मात्र कहनेसे भी सर्वज्ञका अभाव सिद्ध नहीं किया जा सकता ।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आत्मस्वभावके परिचयका महत्त्व देखिये - हमारी समस्त धर्मवारणावोंमें यह मूल कारण पड़ेगा कि हम समझ सकें कि आत्माका स्वभाव क्या है, और यह स्वभाव जहां पूर्ण निर्दोष हो जाता है, उसका विकास किस प्रकारका है, यह ज्ञान होनेपर एक हितकारी प्रकाश मिलता है कि यह जगत क्या है, यहाँ रहकर क्या करना है ये सारी समस्यायें सुलझ जाती हैं एक आत्मस्वभावका ज्ञान होनेपर आत्मविकासका परिचय होनेपर। क्या करना है ? झट उत्तर आयगा, यह करना है। यहां मग्न होना है। यह उपयोग जो अपने ज्ञान समुद्रसे बाहर चोंच निकालकर अर्थात् उपयोगको बाहर निकालकर, भ्रमकर व्यर्थ अनेक उपद्रवोंका शिकार बन रहा है, यदि यह उपयोग अपने आपके ज्ञानस्वरूपमें मग्न हो जाय तो फिर उसे क्या क्लेश कि अमुकने मेरी पोजीशन न रखी। अमुकने विरोध किया यदि ये विकल्प दुःख दे रहे हैं, इन दुःखोंको दूर करना है तो बाहरमें कुछ नहीं करना है, किसीका निग्रह विग्रह कुछ नहीं करना है किन्तु अपने आपकी यह भ्रम करने वाली बुद्धिको निर्भ्रान्त बनाकर अपने ज्ञान स्वभावमें मग्न करना है। विद्या पढ़कर, ज्ञानी बनकर, कुछ ज्ञान सीखकर। भैया ! सबसे बड़ी आपत्ति यह आती है कि लोगोंको यह जाहिर करना कि जो मैं जानता हूँ वह ठीक है। उसके खिलाफ किसीकी बात मिले तो उसे अपना जन्मजात शत्रु मान लेते, चैन नहीं पड़ती, अपनी बातको बलिष्ठ करनेके लिए मायाचार करना पड़े, झूठ बोलना पड़े कुछ भी करना पड़े सब कर लिया जाय, पर अपनी ही बात रहना चाहिए, इस प्रकारकी परिणति, परिस्थिति जो आती है, यह सबसे बड़ी भारी विपदा है ज्ञानमें ठहरनेकी यदि उत्सुकता हो, तो यह अपना निर्णय बनाइये कि जब तक ज्ञान मग्नता नहीं होती तब तक आत्माका उद्धार नहीं है। सकट समाप्त नहीं हो सकता।

ध्यानमें एकमात्र अनुभवनीय तत्त्व भैया ! ध्यानमें और क्या करना है ? सामायिक करें, ध्यान करें, तो ध्यानमें कोई दसों बातें लाना है क्या ? क्या पचासों तरहके ध्यान बनाना है ? केवल एक ध्यान बनाना है, एक अनुभव बनाना है। मैं मात्र ज्ञानस्वरूप हूँ, सो ज्ञानके स्वरूपको अपने अनुभवमें लेनेपर जो बर्तना बनती है बस ऐसा प्रवर्तन करना, उस तरहका अनुभवन बनाना, मैं ज्ञानमात्र हूं, यह ज्ञान जिसमें रूप आदिक नहीं है, है कोई अलौकिक प्रकाश, एक सामान्य प्रकाश जिसमें रहकर हम मग्न हो जाते हैं, हम तरंगित नहीं रहते, ऐसे ज्ञानमात्र स्वरूपका अनुभवन करना यह ही तो मात्र अपना करनेका काम है धर्म पालनके लिए, ये जो दसों काम दीख रहे हैं — पूजन करना, शास्त्र पढ़ना, चर्चा करना या और भी अनेक प्रकारके कार्य करने पड़ते हैं वे सब काम इस कारण करने पड़ते हैं कि जो वास्तवमें करने लायक काम है उस कामकी पात्रता मेरेमें बनी रहे। कहीं वह काम तो हो नहीं रहा और उसके राजमें कोई और भूत सवार हो जाय। विषय कषायोंके विकल्प बन जायें तो हम अपने कल्याणसे गए। इस कारण और फिर ऐसा अवलम्बन लो, ऐसा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कार्य करो कि जिस बीच रहकर हमें ज्ञानमात्र आत्मस्वरूपकी सुध आती रहे। इस प्रयोजनसे पूजन, जाप, स्वाध्याय आदिक अनेक प्रकारके धर्म कार्य किए जाते हैं पर वस्तुत: करनेके लिये काम मात्र एक यह ही है कि ऐसी प्रतीति बने कि मैं ज्ञानमात्र हूँ। यही एक वास्तविक धर्मपालन है, जिसके प्रतापसे कर्म ध्वस्त होते हैं और संसार के संकट समाप्त होते हैं।

अन्तर्ज्ञानका परिणाम अहा, जिसने अपनी कल्याण मुक्तिकी यह कुञ्जी प्राप्त की घरमें रहते हुए भी वह समस्त वैभवके बीच रहकर वैभवसे निराला है। अलिप्त है। इस वैभवको संचित कर करके कितना वैभवशाली बना जा सकता है? कुछ भी नहीं भरत चक्रवर्तीका दृष्टान्त देखिये—केवल शरीरमात्र था, वस्त्रादिक थोड़ेसे लिपटे थे, जहां कहीं बैठे हों अपने आनन्दरसमें तृप्त रहा करते थे। और, समाज व्यवहार व ३२ हजार राजावोंकी बातें वे भी अनायास चलती थीं पर उनका विकल्प करके वे क्या करते? उनसे अलिप्त ही रहे। और, अपने आपके स्वरूपकी दृष्टि रखकर वैरागी रहे। उस वैराग्यमय जीवनका वह प्रभाव पड़ा कि जिस कालमें वे निर्ग्रन्थ हुए, दीक्षित हुए तो अन्तर्मुहूर्तमें ही केवलज्ञान प्राप्त कर लिया। जिसके पिताने हजारों वर्ष तप किया तब केवलज्ञान हुआ, जिसके भाई बाहुबलिने एक वर्ष तक अद्भुत तप किया तब केवलज्ञान हुआ किन्तु, इस अन्तर्विरागी भरतको दीक्षा लेते ही अन्तर्मुहूर्तमें ही कैवल्यकी प्राप्ति हुई। यहां कितना सुगम धर्मपालन है। कितना स्वाधीन कितना निर्विघ्न और स्पष्ट धर्म पालन। कहीं भी बैठे हों—सबसे निराला केवल यह ज्ञान मात्र मैं हूँ, ऐसी दृष्टि करिये उस कालमें रहे सहे रागके कारण तीव्र पुण्यबंध होगा। जब तक संसारमें रहना पड़ेगा तब तक भी इस ज्ञानीको बड़ी वैभव समृद्धियां प्राप्त होंगी फिर भी उनसे अलिप्त रहेगा। वैभव मिलनेपर वह उनमें लीन नहीं होता और वैभव न मिलनेपर वह वैभवके लिये तरसता नहीं है।

ज्ञानी पुरुषको सम्प्रसारणसमृद्धिमें भी आत्मसमृद्धिके कारण ही आनन्दानुभवन—भैया! इस संसारमें रहकर क्या फायदा? जब तक लक्ष्मीकी चाह है तब तक लक्ष्मीसे भेंट नहीं होती और जब लक्ष्मी टूटकर आती है तो उसकी चाह नहीं है। तो फिर इस संसारमें सुख क्या रहा? संसारके नातेसे यहां न ज्ञानीको सुख है न अज्ञानीको। अज्ञानीके संतान न हो तो वह संतानको तरसता रहता है, पर ज्ञानी पुरुष जिसके आज्ञाकारी बालक, जिसके दो दो वर्षके बच्चे भी बड़ा बुद्धिमानी की बातें करें, जिनका बड़ा सुन्दर रूप, जिनकी बड़ी आकर्षक वाणी, ऐसे पुत्रोंको गोदमें खिलाकर भी रागमें आपत्ति मानता रहता है। यह राग, यह सम्बन्ध, ये सारे विकल्प मेरे कब छूटें? तो बताओ ज्ञानी पुरुषने वैभव पाकर उस वैभवका क्या मजा लिया? कुछ भी नहीं! उसका आनन्द तो अपने वैभवके आलम्बनका अद्भुत आनंद है। जिस आनन्दके अनुभवनके कारण उसे सारे राग-रङ्ग ये सब वैभव समृद्धियां,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

परिजन सब राग-रङ्ग फीके दिखते हैं।

विषयविषरसके परिहार बिना ज्ञानमृतास्वादकी असंभवता एक कथा है कि एक शकरकी दुकानमें रहने वाली चींटी नमककी दुकानमें रहने वाली चींटी से बोली—बहिन! तुम क्यों रोज रोज वहाँपर खारी खाना खाती हो, तुम तो हमारे पास चलो, खूब मीठी मीठी चीज खावो। पहिले तो उसे विश्वास न हुआ पर बहुत बहुत कहनेपर वह चलनेको तैयार हुई, किन्तु चलते समय सोचा कि कहीं ऐसा न हो कि वहाँ भूखे रहना पड़े सो कमसे कम एक बारका नास्ता साथमें लेते जाना चाहिए। तो वह अपनी चोंचमें एक नमककी डली दबाकर चली। जब वहाँ पहुंची कुछ शकरके दानोंपर तो शकरकी दुकानमें रहने वाली चींटी पूछती है—क्यों बहिन, मीठा स्वाद आया ना, तो वह बोली—नहीं आया! यों कई बार पूछा, पर उत्तरमें यही मिला कि मीठा स्वाद तो अभी नहीं मिला! तो शक्करकी दूकान वाली चींटी पूछती है—बहिन, तुमने अपनी चोंचमें कोई चीज दबा तो नहीं रखी है?...हाँ, एक बारके नास्ताके लिए नमककी एक डली ले आयी हूँ वह हमारी चोंचमें है।... अरे, इस नमककी डलीको अपनी चोंचसे निकाल दे फिर देख मीठा स्वाद आता है कि नहीं! जब उसने उस नमककी डलीको अपनी चोंचसे निकाल दिया औ स्वाद लिया तो बड़ा ही मीठा स्वाद मिला। फिर वह नमककी दूकानमें रहने वाली चींटी पूछती है क्यों बहिन, तुम कबसे ऐसा मीठा खाना खा रही हो? इसमें तो बड़ा मीठा रस है! तो जैसे नमककी दुकानमें रहने वाली चींटीने नमककी डलीको अपनी चोंचसे बाहर निकाल दिया तब मीठा स्वाद पाया। इसी तरह हम इन असार अपवित्र विषय रसोंका त्याग करके अपने आत्माके सहज ज्ञानस्वरूपका रस पियें तब ऐसा आनन्द आयगा कि है कोई मुझमें वैभव! उस वैभवका जिन्हें परिचय है उन्हें सर्वज्ञ माननेमें फिर देर नहीं लगती।

विपक्षव्यावृत्ति न होनेसे वक्तृत्वसामान्य हेतुसे असर्वज्ञत्वकी असिद्धि—सर्वज्ञका अभाव मानने वाले सिद्धान्तवादी एक यह युक्ति रख रहे हैं कि चूंकि तुम्हारा माना हुआ सर्वज्ञ वक्ता है, बोलता है, उनका उपदेश होता है, दिव्यध्वनि खिरती है। जो वक्ता होता है वह सर्वज्ञ नहीं हो सकता। जैसे कि गलियोंमें चलने फिरने वाले मुसाफिर लोग बोलते रहते हैं तो ये सर्वज्ञ कहाँ हैं? तो इस सम्बन्धमें वक्तृत्व हेतुके तीन विकल्प किए थे, उनमेंसे तृतीय विकल्पके सम्बन्धमें बात चल रही है। क्या वक्ताका अर्थ सामान्यरूपसे किया गया है।? यथार्थ वक्ता, अयथार्थ वक्ता इन विकल्पोंको न रखकर बोलना मात्र यह वक्तृत्वका भाव है। इस सम्बन्धमें भी बहुत कुछ प्रकाश डाल दिया गया। कुछ और भी सुनो! यह व्याप्ति कि जो जो वक्ता होता है वह सर्वज्ञ नहीं होता। यहाँ अनैकान्तिक दोष है, क्योंकि अर्थात् वक्तापन सर्वज्ञके साथ भी रह सकता और असर्वज्ञके साथ भी रह सकता है। इस कारणसे विपक्षसे हेतु हट

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जाय इसकी गुञ्जायश नहीं है। जैसे वक्ता सर्वज्ञ भी हो सकता, असर्वज्ञ भी हो सकता। तो वक्ता कह करके इस सर्वज्ञको ही सिद्ध करनेकी युक्ति सङ्गत न होगी। इसका अभी और वर्णन चलेगा। सर्वज्ञ होकर भी, विशेषज्ञ होकर भी, वीतराग होकर भी प्रभुकी दिव्यध्वनि होती है, देशना होती है इस बातको भी बताया जायगा।

सर्वज्ञत्वके अनुपलम्भसे वक्तृत्वसामान्यकी विपक्षव्यावृत्ति माननेका शङ्का–समाधान —वक्तृत्वके अनैकान्तिक दोष दूर करनेके यत्नमें शङ्काकार कहता है कि सर्वज्ञमें वक्तृत्व नहीं पाया जाता इस कारण विपक्षसे व्यावृत्ति बन जायगी अर्थात् जो बोलता है वह सर्वज्ञ नहीं है, यह बात सिद्ध हो जायगी। तो समाधान देते हैं कि सर्वज्ञमें वक्तापन नहीं है यह तुमने जाना तो कैसे जाना ? क्या तुमने सब जीवों को देख डाला कि ये सब जीव बोलते हैं और सर्वज्ञ नहीं हैं। यदि देख डाला तो तुम ही सर्वज्ञ हुए। और ऐसा देखना तो केवल सर्वज्ञके द्वारा ही सम्भव है। सब जीवोंको कोई सर्वज्ञ नहीं है यदि कोई ऐसा देखे तो वही सर्वज्ञ है। सर्वज्ञके द्वारा ही सबकी सर्वज्ञता या असर्वज्ञताका निर्णय किया जा सकता है। यदि कहो कि सर्वज्ञ कोई है ही नहीं, इसलिए सर्व सम्बन्धी अनुपलम्भ सिद्ध है अर्थात् कोई भी सर्वज्ञ नहीं है। यह जाननेको कोई जरूरत नहीं कि कोई सबको जान ही ले। यह सर्वज्ञ नहीं है, इस प्रकार सर्वज्ञ सर्वज्ञका अभाव जाने कोई, आवश्यक नहीं है। नहीं जाना जा रहा है सर्वज्ञ इससे सिद्ध है कि सर्वज्ञ तो सबके द्वारा नहीं जाना जा रहा है या केवल तुम्हारे ही द्वारा नहीं जाना जा रहा है। यदि तुम्हारे द्वारा नहीं ज्ञात है लोक में कोई प्रभु होता है सर्वज्ञ होता है तो तुम्हारे न जाननेसे तो निर्णय न बन जाय तुम तो दूसरेके चित्तकी बातको भी नहीं जानते। तो तुम जो जो नहीं जानते उस उसका अभाव है क्या ? और, सर्वके द्वारा सर्वज्ञकी अनुपलब्धि है तो यह बात तब सम्भव है जब उन सबको भी जान लिया जाय जिन सबको असर्वज्ञ बता रहे हैं। तो सर्वज्ञकी सिद्धि अनुमानसे भी नहीं हो सकती।

कार्यकारणादि व्यवस्था होनेसे सर्वानुमानोच्छेदके उपालम्भका अनवकाश—शङ्काकार कहता है कि ऐसे विकल्पोंको देकर यदि हमारा मुंह बंद करोगे तो हम किसी भी अनुमानको सिद्ध न होने देंगे। जो भी तुम अनुमान बनाओगे और उसका हेतु बनाओगे तो उसमें विकल्प कर बैठेंगे यह हेतु सर्व सम्बन्धी है ? हमारे द्वारा ज्ञात है धुवां जिससे अग्नि जानी जा रही है, या सबके द्वारा ज्ञात है धुवां जिस से अग्नि जानी जा रही है वह दोष यहां भी दिया जा सकता है। समाधान यह है कि जब सर्वज्ञके ज्ञानका और हमारे ज्ञानसे कार्य कारण नहीं है, व्याप्य व्यापक नहीं है तो हम अपनी अनुपलब्धिके कारण अपने ही ज्ञानके बलपर कैसे यह निषेध कर सकते हैं कि सर्वज्ञ नहीं है। अग्निक और धुवांका कार्य कारण सम्बन्ध है। तब अग्नि न होनेपर धुवांका निषेध किया जा सकता है या धुवांको निरखकर अग्निका

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/
ज्ञान किया जा सकता है या धुवां निरखकर अग्निका ज्ञान किया जा सकता है ? पर हमारे ज्ञानमें और सर्वज्ञके सद्भावमें इनमें परस्पर न कार्य कारण है और न व्याप्य व्यापक सम्बन्ध है। फिर सर्वज्ञका अभाव हमारे प्रत्यक्षके द्वारा कैसे हो सकता है ? वक्तापनकी बात तो यह नियम नहीं बनाती कि वचन जो हैं वे असर्वज्ञत्व धर्मके साथ ही रह सकते हैं। जब वचन असर्वज्ञका धर्म न रहा तो वचनके द्वारा कैसे सिद्ध कर सकते कि सर्वज्ञ नहीं है। जो जिसका कार्य है वह उसके साथ अन्वयव्यतिरेक रखता है। जैसे अग्नि जलाया और उस अग्निका ईन्धन चन्दनकी लकड़ीका है तो उस धूममें सुगंध आती है। तो जो जिसका धर्म नहीं है उसके द्वारा उसका निर्णय नहीं कराया जा सकता है। वचन असर्वज्ञत्वका धर्म नहीं है। सो वचनके द्वारा सर्वज्ञका अभाव नहीं सिद्ध कर सकते।

वचनकी असर्वज्ञत्वधर्मताका अनियम—अब देखिये वचन असर्वज्ञत्वका धर्म क्यों नहीं। असर्वज्ञ मायने क्या है ? दो ही तो अर्थ हो सकते हैं—एक तो सर्वज्ञ नहीं, यह अर्थ रखना है अर्थात् सर्वज्ञका अभाव, दूसरा—सर्वज्ञका अभाव, अर्थात् किञ्चिज्ञ याने कुछ जानने वाला। तो कुछ जानने वालेके साथ वचनके प्रकर्षका सम्बन्ध नहीं देखा जाता। जो कम जाने, ज्यादह बोले और कम जाने और ज्यादह बोले—इस तरहका क्या सम्बन्ध पाया जाता है ? अगर यह सम्बन्ध पाया जाय तो इससे यह सिद्ध करनेका प्रयास करलें कि जो बोले वह सर्वज्ञ नहीं है। यह व्याप्ति नहीं कि जो कम जानता हो वह ज्यादह बोले। देख लो मनुष्योंसे कम कीड़े जानते हैं तो मनुष्योंसे अधिक उनमें बोलनेका प्रकर्ष है क्या ? तो जिससे जिसका सम्बन्ध नहीं, जो जिसका धर्म नहीं उसे उसमें जोड़ना यह विवेक नहीं है। वक्ता होनेसे सर्वज्ञ न रहे यह बात नहीं सिद्धकी जा सकती है। यदि कहो कि हम असर्वज्ञका अर्थ अल्पज्ञ नहीं मानते किन्तु सर्वज्ञ नहीं, अभाव मात्र एवजमें और कुछ जाने सो नहीं। यदि सर्वज्ञ नहीं, इतना ही मात्र अर्थ लगाते हो और उसका कार्य वचन बताते हो तो ज्ञान रहित जो मुर्दा शरीर है वहाँ भी तो सर्वज्ञ नहीं, तो उसका भी वचन कार्य होना चाहिए, अथवा जो ज्ञानमें बढ़े चढ़े पुरुष हैं, विद्वान पुरुष हैं, समस्त शास्त्रोंके व्याख्याता हैं, उनमें वचन प्रकर्ष भी न होना चाहिए, क्योंकि सर्वज्ञ तो केवल निषेध मात्र है, ऐसी तुच्छाभावरूप कुछ असर्वज्ञता है उसका कार्य है वचन। जिसका कुछ अर्थ भी नहीं निकलता। तो अनुमानसे भी यह सिद्ध नहीं कर सकते कि सर्वज्ञका अभाव है।

आगमसे सर्वज्ञके अभावकी असिद्धि—प्रश्न—सर्वज्ञका अभाव आगमसे सिद्ध कर देंगे ? उत्तर—सर्वज्ञका अभाव आगमसे भी सिद्ध नहीं हो सकता, क्योंकि वह आगम, जिससे तुम सर्वज्ञका निषेध करोगे वह आगम सर्वज्ञके द्वारा प्रणीत है या सर्वज्ञको छोड़कर अन्य पुरुषोंके द्वारा प्रणीत है ? अथवा अपौरुषेय है। किसी पुरुषके द्वारा प्रणीत ही नहीं है। शास्त्रके सम्बन्धमें ये तीन ही बातें तो बतायी जा सकती हैं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कि शास्त्रको सर्वज्ञने प्रणीत किया है, सर्वज्ञसे लाया गया है यह शास्त्र अथवा किसी मनुष्य द्वारा यह रचित है अथवा अनादिसे है, अपौरुषेय है, किसीने बनाया ही नहीं है, ये तीन ही कल्पनायें तो आगमके सम्बन्धमें की जा सकती हैं। यदि सर्वज्ञके द्वारा प्रणीत है तो यह बात तो तुमने ही मान लो कि सर्वज्ञ है, सबका जानने वाला है कोई। और, जो सबको जानने वाला है, जिसने कि आगमकी रचना की है बस उसी को हम सिद्ध कर रहे हैं कि होता है कोई सर्वज्ञ। यह कैसे कहा जा सकेगा कि सर्वज्ञ प्रणीत तो है आगम, पर वह सर्वज्ञ सबको जानता नहीं है। यदि यह कहो कि किसी अन्यके द्वारा प्रणीत है। तो जो स्वयं सर्वज्ञ नहीं है, स्वयं ज्ञाता नहीं है सकल तत्त्वों का तो वह आगम तो यों समझिये कि मुसाफिरों द्वारा बनाया गया है। उसमें प्रमाणता नहीं आ सकती।

आगमकी अपौरुषेयताकी असिद्धि—यदि कहो कि अपौरुषेय आगम तो निर्दोष हुआ करता है, हम उस आगमसे सर्वज्ञका अभाव सिद्ध करेंगे जिस आगमको किसीने बनाया ही नहीं है। मीमांसक सिद्धान्तमें आगमको अपौरुषेय माना है, बनाया ही नहीं है किसीने। तो यह बतलावो कि वह आपका आगम किसीको तो सर्वज्ञका अभाव बतादे तो किसीको और कुछ भी अर्थ बता दे, किसीको कहे कि इसका स्वरूप अर्थ है, किसीको कहे कि इसका प्रेरणा अर्थ है, भावना अर्थ है। वह आगम सबको एक बात क्यों नहीं बता देता ? अथवा इसका क्या कारण है कि महर्षियोंको यह आगम सब कुछ अपना निचोड़ बतादे और दूसरेको न बताये क्योंकि आगमका सम्बन्ध तो सबके साथ है। जो भी उसे ले, ग्रहण करे, सुने, निकट आये अथवा सर्वत्र भावसे सम्बन्ध है, फिर किसी महर्षि को ही उसका ज्ञाता है, आगम और किसीको अजानकर रहने दे ऐसा क्यों हो जाता है ? देखिये ! जानने वाले लोग स्वयं अपनी योग्यताके अनुसार अपने हो बलसे जान लेते हैं ना, और वह योग्यता यदि मान ली जाय, ज्ञान का स्वभाव यदि मान लिया जाय कि वह तत्त्वको जनाता है, धर्मादिक पुण्यपापको जनाता है तो शङ्काकारके लिए अनिष्ट आपत्ति है। शङ्काकार धर्म आदिक तत्त्वोंका ज्ञाता किसी पुरुषको नहीं बता सकता। चाहे कोई पुरुष प्रमाणसे ज्ञानोंसे पदार्थोंके ज्ञानका संग्रह कर करके सारे विश्वका ज्ञाता बने तो बन जाय, वहाँ कोई आपत्ति नहीं मानी, किन्तु धर्म आदिक अदृष्ट तत्त्वोंका ज्ञाता कोई नहीं हो सकता है। उसका उपदेश तो अपौरुषेय आगमसे मिलता है, यह अभिमत है। अपौरुषेय आगम फिर क्यों नहीं सबको अपना अर्थ नहीं बता देता है। जैसे दीपक जला, तो क्या यह कभी देखा है कि चौकीको तो प्रकाशित करदे और उस चौकीपर रखे हुए ग्रन्थको न प्रकाशित करे ? किसीको प्रकाशित करे किसीको न प्रकाशित करे, यह तो नहीं देखा जाता। प्रदीपका सन्निधान प्रत्यासत्ति जब इस पदार्थोंकी इन सबके साथ है तो सभी प्रकाशित होंगे। तो आगमका सम्बन्ध जब सबके साथ है द्रव्यतः और भावतः तब क्यों न यह आगम समस्त पुरुषोंको अपना अर्थ जनादे।

Version 1

अविसंवादित्वसे प्रमाणत्वकी व्यवस्था होनेसे अपौरुषेयत्वकी प्रमाणता में अकारणता—यह आगम विवाद क्यों कराता है ? इसका यह अर्थ है, अजी इस का यह अर्थ है। कोई कहता है कि देखो—इसने स्वरूप बता दिया, कोई कहता कि इसमें आगमने स्वरूप नहीं बताया, उसका काम है लोगोंको प्रेरणा करे, भक्तिमें यज्ञमें, इतना ही मात्र उसका अर्थ है। इससे सिद्ध है कि आगम अपौरुषेय कुछ नहीं है, जिसमें अविसम्वादी तत्त्वका वर्णन है। जिसमें विवाद न आये वह तो प्रमाणभूत है और जिसमें विवाद है, बाधा है वह अप्रमाण है। प्रमाणके लक्षणमें विवाद नहीं रहता है। यज्ञ आदिकको बताये सो प्रमाण है अथवा सुगति आदिक फलोंको दे सो प्रमाण है। प्रमाणका यह लक्षण नहीं है। प्रमाणका लक्षण है जहाँ संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय कोई दोष न हो, यथार्थ प्रकाश हो, यथार्थ ज्ञान हो उसे प्रमाण कहा है।

आगममें सर्वज्ञके अभावके वर्णनका अभाव—अब तनिक इस ओर भी ध्यान दें कि आपके अपौरुषेय आगममें भी कोई ऐसा वचन नहीं है कि जिसने सर्वज्ञका निषेध किया हो। देख डालो सब। बल्कि सर्वज्ञ है इसकी तो झलक मिलेगी, पर सर्वज्ञ कोई है नहीं इसके वचन तुम्हारे अपौरुषेय आगममें नहीं मिलते। अनेक कथन आते—विश्वतोमुख:, विश्वतो चक्षु: ये शब्द सर्वज्ञताको ही सिद्ध करते हैं। कितने ही अलङ्कारोंसे कुछ वर्णन किया गया था किसी जमानेमें एक ग्रामीण भाषामें, अब कोई उसका मर्म न जाने और जिस ढङ्गमें ही कहा गया है जिन शब्दोंमें ही कहा गया है उनके सीधे अर्थमें ही कोई मूर्ति कल्पित करले, अर्थ लगाले तो यह तो एक तथ्यसे हटनेकी बात हुई। कोई मास्टर बच्चोंसे कहता हो कि देखो हमने बहुतसे गधोंको आदमी बना डाला इस बातको कोई मुसाफिर सुनले और कहने लगे वाह, ये मास्टर साहब तो बड़े ही होशियार हैं, ये तो इन चार पैर वाले गधोंका आदमी बना देते हैं, ऐसा यदि वह अर्थ लगाये तो क्या यह कोई भली बात है ? यह तो एक विडम्बनाकी बात है। एक सेठ मरते समय अपनी बहीमें लिख गया कि देखो बेटो ! कदाचित् तुम कभी गरीब हो जाओ तो इस मन्दिरकी शिखरसे माघ बदी चतुर्दशीको शामके ४।। बजे धन खोद लेना ! सेठ तो गुजर गया, लड़के गरीब हो गए, देखा बहीमें लिखा हुआ। वह माघ बदी चतुर्दशीको सामके ४।। बजे बस मंदिरकी शिखरपर चढ़ गया कुदाली लेकर और उसे खोदने ही वाला था कि उसे एक सज्जनने देख लिया। पूछा क्या कर रहे हो ? उसने बताया कि शिखर खोदने जा रहे हैं ! क्यों ?··· धन निकालेंगे ! अरे उतर नीचे, वहाँ कहाँ धन है ? ··देखो न, इस बहीमें लिखा है ! अरे पागल, यदि धन वहाँ शिखरमें होता तो माघ बदी चतुर्दशीको और ४।। बजे सामको ही क्यों खोदनेको कहा जाता ? वह तो जब चाहे तब खोदकर निकाला जा सकता था। देख इस शिखरकी छाया तेरे आङ्गनमें जहां पड़ रही है वहाँ खोद, जब वहाँ खोदा तो धन पा लिया। तो शब्दका भाव तो समझना चाहिए।

शब्दोंके लक्ष्यभूत भावके जाननकी आवश्यकता—अनेक शब्द इस ढङ्ग

http://sahjanandvarnishastra.org/
Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

में बोल दिये जाते हैं कि जिससे जाहिरमें निन्दा साबित होती है मगर मर्म देखो तो उसमें प्रशंसा भरी है। तो यों ही अनेक तथ्य किसी भाषामें बने हुए हैं, और उनका मात्र एक वही अर्थ निकालें तो उसका मर्म नहीं पा सकते। एक वचन है ऊर्ध्वमूल-मधःशाखं" जिसका मूल तो ऊपर है और शाखायें नीचे हैं ऐसा है परम पुरुषका स्वरूप है। बतलावो सीधा शब्द सुननेसे तो यों लगता है कि कोई ऐसी भी चीज होती है कि जिसकी जड़ तो ऊपर हो और शाखायें नीचे फैलती हों। कोई वृक्ष देखा है क्या ऐसा? लेकिन मर्म देखो! यह परम पुरुष, यह ज्ञानी पुरुष यह मनुष्य इसकी जड़ तो ऊपर है, जड़ उसे कहते हैं जिससे आहार लिया जाय। मिट्टीका, पानीका आहार लेते हैं वृक्ष --तो उन जड़ों लेते हैं। मूल मायने जड़। तो मनुष्यका मूल है यह मुख, जिससे आहार लेता है, जिससे मनुष्य पनपता है। जैसे वृक्षकी शाखाओंको खूब सींचा जाय और जड़ोंमें पानी न सींचा जाय तो वह वृक्ष ठहर नहीं सकता। और, वृक्षकी जड़ोंमें ही पानी दिया जाय, शाखावोंमें एक बूंद भी पानी न दिया जाय तो भी वह वृक्ष हरा भरा रहता है। ऐसी ही मनुष्यकी बात है। इसकी जड़ोंको आहार जब मिलता है तो यह हरा भरा बना रहता है। तो इस परम पुरुषके ज्ञानी पुरुषके जो कि ज्ञानवान है उस प्राणीका, (ये ही तो उस पुरुषके रूपक हैं तो उनमें श्रेष्ठ मनुष्य हैं) इस मनुष्यका मूल तो ऊपर हैं और शाखायें नीचे हैं। ये दो पैर फैल गए ये दो हाथ फैल गये और इनकी अंगुलियाँ फैल गई, ये तो शाखायें और टहनियां हैं, और ऊपरका मुख, मस्तक मूल है जिसके द्वारा यह अपनी खुराक पाकर हरा भरा रहता है। तो यह इस पुरुषका रूपक है। जहाँ लिखा है विश्वतोमुखः। चारों ओर उसका मुख है। विश्वतः चक्षुः चारों ओर उसके नेत्र हैं, तो क्या है इसका मर्म? अरे वह निष्कलङ्क आत्माका ही चित्रण है कि उसका ज्ञान चारों ओरसे हो रहा है। सब लोकालोक जानते हैं, सब प्रदेश जानते हैं। आत्माका रग-रग पूर्ण कलशवत् भरित ज्ञानमय है, तो सर्वज्ञकी सिद्धि करने वाले अनेक वचन अपौरुषेय माने गये आगममें भी निकल आयेंगे, पर सर्वज्ञका अभाव सिद्ध करने वाला कोई वचन उस अपौरुषेय आगममें भी न मिलेगा। तो आगममें भी यह नहीं कह सकते कि कहीं सर्वज्ञ नहीं है।

उपमान प्रमाणसे भी सर्वज्ञत्वके अभावकी असिद्धि -सर्वज्ञका अभाव उपमान प्रमाणसे भी सिद्ध नहीं कर सकते, क्योंकि उपमान और उपमेय जब दोनों सामने हों तब तो उपमा चलती है, यह रोझ गायके समान है तो रोझ प्रत्यक्षमें है, गाय भी प्रत्यक्षमें आयी हो, सामने हो तो तुलना कर सकते हैं। गाय सामने न भी हो तो प्रत्यक्ष की हुई गाय तो है उसका स्मरण करके तुलना की जा सकती वे। सो जिसकी उपमा दो जाय, जिससे उपमा दी जाय वे दोनों प्रत्यक्षमें आये हों तो वहाँ उपमान प्रमाण चल सकता है अन्यथा नहीं। लेकिन न तो यहांके सारे पुरुषोंका प्रत्यक्ष हो सका कि जिसको हम उपमान बना सकें कि इन सबकी तरह सर्वज्ञ भी,

Version 1

प्रभु भी असर्वज्ञ है तो न तो इन सब लोगोंका प्रमेय प्रत्यक्ष है और जिसको हम उपमेय बनाते हों न उसका प्रत्यक्ष है। उपमेयका भी अर्थात् सर्वज्ञका भी प्रत्यक्ष नहीं है और उपमानका भी अर्थात् समस्त देश, समस्त काल सम्बन्धी समस्त जीवोंका भी प्रत्यक्ष नहीं है। यदि प्रत्यक्ष हो जाय दोनोंका कि जो उपमान प्रमाण बनानेके लिए जरूरी है, तो सर्वज्ञ अपने आप सिद्ध हो जायगा। फिर सर्वज्ञके लिए उपमा देना व्यर्थ है। तो उपमानसे भी यह बात सिद्ध नहीं होती कि लोकमें कहीं सर्वज्ञ नहीं है।

ज्ञानस्वभावके निर्णयसे सर्वज्ञत्वके अवगमकी सुगमता— देखो—आत्मा का ज्ञानस्वभाव जिसने यथार्थरूपसे मान लिया है, ज्ञानका काम है जानना उस जानन का विषय सत् पदार्थ है। जो सत् हो उसे जाने। ज्ञानमें यह स्वभाव नहीं है कि सामनेकी जाने, इतनी दूरकी जाने। ज्ञानका ज्ञायकत्वसे सम्बन्ध है। सत् हो वह ज्ञान में आता है, ऐसा ज्ञानस्वभाव जिसकी दृष्टिमें हो उसे सर्वज्ञके माननेमें अड़चन नहीं हो सकती है। स्वभाव है यह और स्वभाव सीमा लिए हुए भी नहीं क्योंकि उसका विषय सत् है। ज्ञान अभिमुख सत्को या किसी अन्य मर्यादित विशेषणसे विशिष्ट सत् को ही जाने ऐसी बात स्वभावमें नहीं है। इस कारणसे ज्ञानस्वभावका सही परिचय मिलनेपर सर्वज्ञका विश्वास होगा। तो सर्वज्ञकी सिद्धि युक्तियोंसे अनुमानसे इन सबसे भी करलें और उसकी सिद्धिमें अधिक साधक है अपने आपके ज्ञानस्वभावकी प्रतीति। वह बने तो शीघ्र ही यह निर्णय हो सके कि कोई पुरुष ऐसा है जो निरावरण है अतएव सर्वज्ञ है।

अर्थापत्तिसे भी सर्वज्ञत्वके अभावकी असिद्धि— सर्वज्ञका जो अभाव मानता है उसके प्रति यह कहा जा रहा है कि सर्वज्ञका अभाव न तो प्रत्यक्षसे सिद्ध हो सका, न अनुमानसे, न आगमसे और न उपमानसे। मीमांसा सिद्धान्त वस्तु सद्भाव के विज्ञानके लिए ५ प्रमाण मानता है—प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, उपमान और अर्थापत्ति। तथा जहां ये ५ प्रमाण नहीं लगते हैं वहां माना है अभाव प्रमाण। इस प्रकार ६ प्रमाण माने गए हैं जिनमें पहिले ४ प्रमाणोंसे तो सर्वज्ञका अभाव सिद्ध नहीं कर सके। अब कह रहे हैं कि अर्थापत्तिसे भी सर्वज्ञके अभावका बोध नहीं होता अर्थापत्ति उसे कहते हैं कि जिसके बिना जो न हो उसका सद्भाव दिखाकर उस दूसरे पदार्थका सद्भाव बताना। जैसे अग्निके बिना धुवां नहीं होता, तो धुवां बताकर अग्निका ज्ञान कराना यह अर्थापत्ति है। तो अर्थापत्ति तो तब बने जब दोनों पदार्थ अर्थात् साध्य और साधन ये दोनों प्रमाणसे ज्ञात हुए हों। कोई भी पदार्थ जान लिया गया हो, जो सर्वज्ञके अभावके बिना न हो सके तो उस पदार्थको बताकर कहा जा सकता है कि सर्वज्ञका अभाव है, पर ऐसा कोई पदार्थ ही सम्भव नहीं जो सर्वज्ञ के अभाव बिना न हुआ करे। यदि आगमकी दोहाई देते हो कुछ, आगम ऐसा पदार्थ जो सर्वज्ञके अभावके बिना नहीं हो सकता, सो रहो आगमकी प्रमाणता तो तब ही

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सम्भव है जब गुणवान पुरुषके द्वारा आगम बनाया गया है यह सिद्ध किया जा सके। उससे भी यही सिद्ध है कि कोई सर्वज्ञ है अन्यथा यह आगम कैसे मिल जाता। आगम अपौरुषेय तो होता नहीं। किसीने न बनाया हो और अनादिसे आगम शास्त्र चले आये हों ऐसा सम्भव नहीं है। यह तो सम्भव है कि उससे पहिले किसी अन्य सर्वज्ञसे आगमकी प्राप्ति हुई उससे पहिलेके अन्य सर्वज्ञसे आगमकी प्राप्ति हुई, पर यह सम्भव नहीं कि कोई आगम बिना बनाये, बिना गुणवान पुरुषकी रचना किये गये हो गया हो यह बात सम्भव नहीं है। तो अर्थापत्तिसे भी सर्वज्ञका अभाव सिद्ध नहीं होता। तथा एक बात तो प्रथम यह है कि अर्थापत्ति कोई प्रमाणान्तर नहीं है अनुमान प्रमाणमें ही अर्थापत्ति गर्भित है।

अभाव प्रमाणसे भी सर्वज्ञत्वके अभावकी असिद्धि—जब किसी भी प्रमाणसे यह सिद्ध न किया जा सके कि सर्वज्ञका अभाव है तब आखिरी बात सर्वज्ञत्व न मानने वाला यह कह रहा है कि अभाव प्रमाणसे तो सर्वज्ञका अभाव जान लिया जायगा। उत्तरमें कहा जा रहा है कि अभाव प्रमाणसे भी सर्वज्ञका अभाव जान लिया जायगा। उत्तरमें कहा जा रहा है कि अभाव प्रमाणसे भी सर्वज्ञका सिद्ध नहीं है। अभावका अर्थ है असत्त्व रहना। यह अभाव प्रमाणसे भी सिद्ध नहीं, क्योंकि पहिले अभाव प्रमाण ही कुछ नहीं है। अभाव प्रमाणके सम्बन्धमें उसकी सिद्धिमें कहा है कि इन तीन बातोंसे सम्बन्ध है अभाव प्रमाणके स्वरूप बननेका। एक तो किसी वस्तुका सद्भाव ग्रहण कर लें, दूसरे प्रतियोगीका स्मरण करें अर्थात् जैसा अभाव बताना है उसका स्मरण करें और फिर इन्द्रियकी अपेक्षा न करके मानसिक नास्तित्वका ज्ञान बने तो अभाव बनता है। जैसे इस कमरेमें घड़ा नहीं है यह कैसे जाना जायगा? इसमें तीन बातें आ गयी। एक तो उस कमरेका ज्ञान बने, उसका ग्रहण हो और घड़ेका स्मरण हो, फिर इन्द्रियकी अपेक्षा बिना मनसे ही उसके नास्तित्वका ज्ञान हो, तो अभावप्रमाण बनता है। अभावप्रमाणका निर्माण इन तीन कारणोंके बिना नहीं हो पाता। ऐसा स्वयं मीमांसा सिद्धान्तमें कहा है। जिस आधारमें किसीका अभाव बताना है उस आधारका ज्ञान होना अति आवश्यक है। और, जिसका अभाव सिद्ध करना है उसका स्मरण भी अनिवार्य है। फिर जो मनसे नास्तित्व सम्बन्धी अवबोध होता है उसका नाम है अभाव प्रमाण। इन तीन फलकों के बिना अभाव प्रमाण कैसे बनता हो तो बतायें। कमरेमें घड़ा नहीं है यह कमरेमें घड़ा नहीं है यह समझनेके लिये कमरेका ज्ञान तो चाहिए। और घड़ेका स्मरण चाहिए, तब यह मानसिक ज्ञान बनता है कि घड़ा नहीं है तो इस दुनियामें सर्वज्ञ नहीं है। यदि ऐसा सर्वज्ञका अभाव सिद्ध किया जाय अभाव प्रमाणसे तो ये तीन बातें चाहिएँ। प्रथम तो सर्वज्ञके अभावका आधारभूत यह सारा विश्व है उसका ज्ञान चाहिए फिर उस सर्वज्ञ पदार्थका स्मरण चाहिए। जब ये दो बातें बनें तब मानसिक ज्ञान यह हो सकता है कि सर्वज्ञ नहीं है। किन्तु यहां दोनों ही बातें नहीं बन

Version 1

रही, समस्त लोकमें सर्वज्ञ नहीं है। यहां सर्वज्ञके अभावका आधार क्या है जिसका निषेध किया जा रहा है? उसका अधिकरण सारा विश्व बन गया है तो सारे विश्व का ज्ञान यहां हम आप किसीके भी नहीं है। अगर हो जाय जो कि अभाव प्रमाणसे सिद्ध करनेके लिए अनिवार्य है, हो जाय सारे विश्वका ज्ञान तो अब निषेध किसका करते? वही सर्वज्ञ बन गया जब उसने सब कुछ देख लिया। दूसरी किरण है प्रतियोगीका स्मरण होना, जिसका अभाव सिद्ध किया जा रहा है उसकी याद होना। तो किसी भी समय किसीने भी किसी भी जगह सर्वज्ञको जाना ही नहीं है असर्वज्ञवादमें सर्वज्ञका ज्ञान कहां है? तो जब सर्वज्ञ कभी जाना ही नहीं गया तो फिर उसका स्मरण करके निषेध किया जाना चाहिए था सो यह भी नहीं हो सकता, सर्वज्ञ पहिले जाना गया होता और फिर निषेध किया जाता कि सर्वज्ञ नहीं है तब तो मानसिक नास्तित्व ज्ञान बन जाता। पर न तो जिसका निषेध किया जा रहा है उसका ज्ञान है और जिसका निषेध किया जा रहा है न उसके आधारका ज्ञान है तब फिर निषेध क्या होगा, अभाव क्या होगा। क्या कभी कमरेके जाने बिना घटका अभाव सिद्ध किया जा सकता है? और घटका स्मरण किए बिना जो कि घटके पहिले जानकारी बिना सम्भव नहीं है क्या घटका अभाव बताया जा सकता है। तो अभाव प्रमाणसे भी विश्वमें कहीं सर्वज्ञ नहीं है यह सिद्ध नहीं किया जा सकता।

तुच्छाभावरूप अभाव प्रमाणकी असिद्धि – भैया! अभाव प्रमाण तो स्वयं असिद्ध है, उसकी उत्पत्ति भी सिद्ध नहीं, उसका स्वरूप सिद्ध नहीं। जो भी विषय है वह सब प्रमाणका विषय है। चाहे कोई सद्भावरूपसे विषय बने अथवा कोई अभावरूपमें बने, प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणोंसे ही सद्भाव भी ज्ञात होता है और अभाव भी ज्ञात होता है और अभाव भी ज्ञात होता है। अभाव प्रमाण कोई तुच्छाभावरूप नहीं है किन्तु अभावका, आधारभूतका प्रतियोगी कुछ अभाव है उस भावरूप अभाव जाना जाता है। पदार्थ चूंकि भावभावात्मक है, तो जैसे पदार्थोंसे भावांश ज्ञात होता है इसी प्रकार प्रमाणोंसे अभावांश भी ज्ञात होता है। अभाव नामक प्रमाण कोई स्वतन्त्र नहीं है तब फिर अभाव प्रमाणसे सर्वज्ञका अभाव सिद्ध करनेकी बात तो बन ही नहीं सकती। तो इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि सर्वज्ञकी सत्तामें बाधा देने वाला प्रमाणका अभाव है अथवा कोई बाधा न दे सके, साधक प्रमाणका सद्भाव है, अतः सर्वज्ञका अभाव नहीं है।

सर्वज्ञत्वके वर्णनमें मूल आधारकी संगतिका स्रोत – यह सर्वज्ञत्वके प्रमाणकी बात कई दिनोंसे चल रही है, यह किस बातपर प्रकरण उठा? इस ग्रंथका तो मूल कार्य प्रमाणकी सिद्धि करना है, क्योंकि प्रमाणसे ही पदार्थकी सिद्धि होती है। और, प्रमाणाभाससे पदार्थकी असिद्धि रहती है। पदार्थकी संसिद्धि करना, पदार्थका यथार्थ परिज्ञान कर लेना यह कल्याणके लिये आवश्यक है। तो उन सब

Report any errors at vikasnd@gmail.com

आवश्यक तत्त्वोंके ज्ञानका मापक जो प्रमाण है, उस प्रमाणके स्वरूपका इसमें वर्णन है। जो स्वपर अर्थका निर्णय कराये उसे प्रमाण कहते हैं। यहाँ स्वका अर्थ आत्मा का नहीं किन्तु वह ज्ञान स्वज्ञानस्वरूपका भी निर्णय रखता है और पर पदार्थका भी निर्णय रखता है। जिसे आत्माके स्वरूपका बोध नहीं है, अज्ञानी जन हैं वे भी जितना ज्ञान करते हैं वे इस ही पद्धतिसे करते हैं कि जो भी पदार्थ जाना गया उस पदार्थका भी वहां निर्णय है कि यह यही है और स्वज्ञानका भी निर्णय है कि पदार्थ विषयक यह ज्ञान मेरा सही है भीतरमें यह भी ध्वनि है कि जो जाना गया, जो ज्ञान बना वह ज्ञान ठीक है। यदि अर्थविषयक ज्ञानमें संशय रखा जाय कि मेरा ज्ञान ठीक है या नहीं है तो उस ज्ञानके विषयभूत पदार्थका ज्ञान भी डावाडोल ही समझिये। तो यों स्वपर व्यवसायी ज्ञान प्रमाण होता है, उसमें स्वव्यवसाय, परव्यवसायका निर्णय करते हुए उसके उत्पन्न कारणोंपर विचार किया जाने लगा, स्वरूप निर्णयके बाद जब बहुतसे विवादोंको सुलझा दिया कि भाई प्रकाश, पदार्थ, आंख अनेक पदार्थोंका जुड़ जाना यही प्रमाण नहीं है, अथवा इन्द्रिय पदार्थका सम्बन्ध हो जाना यह प्रमाण नहीं है, इन्द्रियका व्यापार होना यह प्रमाण नहीं है। प्रमाण तो ज्ञान ही है, उस ज्ञानकी उत्पत्तिके कारणोंपर विचार किया गया, तो जैसे लौकिकज्ञान ज्ञानीजन एक सीधा समझ रहे हैं उन — उन प्रश्नोंका भी अवतार हुआ है। ज्ञान तो पदार्थोंसे उत्पन्न होता है। तभी तो देखो यह व्यवस्था बनी है कि जिस पदार्थसे जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह ज्ञान उस पदार्थको ही जानता है अन्यको नहीं। तो किन्हीने बात रखी कि ज्ञान प्रकाशसे उत्पन्न होता है, प्रकाश बिना हम आपका कहीं ज्ञान तो नहीं होता। तो यों उत्पत्ति कारणोंपर विचार किया गया तो वहां भी तर्क वितर्कके पश्चात् यह निर्णय पाया गया कि ज्ञानकी उत्पत्ति किसी परद्रव्यसे नहीं होती, पदार्थ से नहीं होती प्रकाशसे नहीं होती। प्रतिनियत अर्थकी व्यवस्था तो निज निज ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशम रूप योग्यतासे होती है।

प्रमाणके भेदोंमें मुख्य लक्ष्य — उस प्रमाणके स्वरूप आदिकपर विचार करके जब भेद बताये जाने लगे तो भेद पद्धति तो वही सही है कि जिसका भेद किया जाय उसका कोई अंश न छूटे और उसके अतिरिक्त अन्य कोई चीज सम्मिलित न हो, वह है भेदकी पद्धति। तो प्रमाणके भेद प्रत्यक्ष और परोक्ष इन दो रूपोंमें किये गये। प्रत्यक्ष नाम है स्पष्ट ज्ञानका। विशद ज्ञानको प्रत्यक्ष कहते हैं, मतिज्ञानकी जो ५ पर्यायें हैं, मति, स्मृति, संज्ञा, चिन्ता अनुमान (यहाँ अनुमानके मायने है स्वार्थानुमान), इन पाँचोंमें जो प्रथम भेद है वह प्रत्यक्षज्ञान है और शेषके चार भेद परोक्ष हैं किन्तु यह सांव्यवहारिक है। उत्पत्तिकी दृष्टिसे तो परोक्षज्ञान है, किन्तु मतिरूप मतिज्ञानमें एक देश विशदता है उसकी दर्शन शास्त्रमें आवश्यकता होती है, सो उसे सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहा गया है नियमोंमें इस हीके आधारपर अधिकतया की जाती है, वहाँ इस सांव्यवहारिक प्रत्यक्षको विशेषरूपसे कहा गया है। तब प्रत्यक्षके दो भेद हुए — एक

http://www.jainkosh.org
Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/
व्यवहारिक प्रत्यक्ष, दूसरा मुख्यप्रत्यक्ष । मुख्यप्रत्यक्ष अखिल ज्ञानावरणके विश्लेषसे होता है, यह सामान्य लक्षण बताया है, उस मुख्यप्रत्यक्षमें तीन ज्ञान कहे हैं, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान, केवलज्ञान । किन्तु वर्णन होता है तो मुख्यका लक्ष्य करके और चोट भी लगा करती है. तो इन तीन ज्ञानोंमें विशेष वक्तव्य बना केवलज्ञान, और वही मुख्यप्रत्यक्षमें मुख्य है । तो ऐसा कोई ज्ञान भी होसकता है क्या कि जो समस्त पदार्थों को जाने, इस सम्बन्धमें अनेक युक्तियोंसे बात बताई गई है पर एक जो कि अपने प्रयोगमें भी लाभदायक है उसे अवश्य एक बार उतार कर देखे । एक अपने अनुभवमें उसे परखें कि ज्ञानका क्या कार्य है और वह ज्ञान किस बाह्य स्थितिमें कितना विवश होता है और किस स्थितिमें यह ज्ञान विवशतामें दूर हो जाता है. जो कि अनुभव सब प्रमाणोंका शिरताज है । लोकमें जो भी बात अनुभवमें उतरती है उसको बहुत महत्त्वसे देखते हैं ।

श्रावक बोधसे अनुभूत अवगमका महत्त्व— कभी कानों सुनी बात भी गलत हो जाती है, किन्तु अनुभवमें उतरी बात ज्ञानमें घुलकर स्पष्ट होती है। प्रायः लोग इसको तो स्पष्ट ही कह देते है कि अरे कानों सुनी बात है इस पर क्या ध्यान देते हो, उसकी यथार्थतापर दृढ भाव नहीं रहता । और, सुनी बातका तो इतना भी गलत अर्थ निकाला जा सकता है कि जो उस बातसे बिल्कुल उल्टा हो, और फिर एक एक शब्दकी मोड़मे, धीरे बोलनेसे कहीं ज्यादह तेज बोलनेसे भी उनका अर्थ जुदा-जुदा हो जाता है । जैसे एक घटना ही थी इसी नगरकी कि किसी लड़केके पास एक खोटी चवन्नी थी । वह उसे बहुत दिनोंसे चलानेके यत्नमें था, पर चल न रही थी । एक जगह मिठाईकी दूकानमें उस लड़केने मिठाई ली तो हलवाईने उस चवन्नीको रखली । वह खुशीके मारे यह कहता हुआ भगा कि चल गई, चल गई, चल गई । वह समय था साम्प्रदायिक दंगोंका । बहुत बहुत दंगे आस पासके नगरोंमें हो रहे थे । तो उस लड़केके उन शब्दोंको सुनकर दूकाने बंद होने लगी, धीरे धीरे सारे बाजारकी दूकाने बंद हो गई । शहरमें आतंक फैल गया । बादमें किसीने उस लड़केको बुलाकर मामला पूछा, तो उसने सही सही बात बता दी । तो कानों सुनी बात भी झूठ हो सकती है ।

चाक्षुष बोधसे अनुभूत अवगमका महत्त्व— आंखों देखी बात भी झूठ हो सकती है इस बारेमें एक बार एक साधु भिक्षा मांगकर अपने घर वापिस जा रहा था । रास्तेमें उसे एक लड्डू गिर पड़ा नीचे और वह भी मलपर । सो उसने उठा तो लिया, पर यह सोच कर कि उठाते देखनेपर लोग यह समझ न सकें कि इस मल परसे लड्डू उठाया इसलिये उसने उस मल पर कुछ फूल बिखेर दिये । जब लोगोंने देखा कि यह साधु इस जगह फूल चढ़ाता है तो लोगोंने सोचा कि यह साधु इस जगह फूल चढ़ाता है तो लोगोंने सोचा कि इस जगह कोई भगवान होंगे सो उन्होंने भी उस जगह फूल डाल दिये । यों जो भी आता जाय, बहुतसे लोगोंने उस जगह फूल डाल

Report any errors at vikasnd@gmail.com

दिये तो फूलोंका वहाँ एक बड़ा ढ़ेर इकट्ठा हो गया। जब कोई बुद्धिमान पुरुष निक तो पूछा कि भाई यह फूलोंका इतना बड़ा ढेर कैसा ? तो किसीने बताया यहाँपर भगवान बैठे हैं।...जरा देखें तो सही कौनसे भगवान हैं जब फूलोंको उठाय और देखा तो मल पड़ा था। अब तो सभी लोग अपनी नाक पकड़कर वहाँसे चले गए तो आँखों देखी बात भी झूठ निकली पर अनुभूत बात झूठ नहीं लगती।

अनुभूत अवगमकी दृढ़ताका एक दृष्टान्त - अनुभवमें आयी हुई बातक दृढ़ता देखो। दो सौतेली स्त्रियोंमें विवाद हो गया एक लड़केपर कि यह लड़क मेरा है। दोनों ही कहें कि यह लड़का मेरा है। अदालत हुई, वहाँ युक्तियाँ दी ग जब निर्णय न हो सका तो राजाने कहा कि कल करेंगे इसका निर्णय अपने एक द सिपाहियोंसे बोल दिया कि देखो कल हम तुम्हें जो आर्डर दें सो उनको मानना नहीं पर उस तरहकी तैयारी दिखाना। जब निर्णय करनेका समय आया तो वे दोन स्त्रियां उस लड़केको लेकर हाजिर हुईं। राजाने कहा देखो—जो पतिका धन है वह त दोनों स्त्रियोंका बराबर बराबर है। इससे यह निर्णय दिया जाता है कि इस लड़के तुम दोनोंका बराबर बराबर अधिकार है। सिपाहियोंको आर्डर दिया कि ऐ सिपाहिय इस लड़केको लिटा दो और इस तलवारसे इसको काटकर दो हिस्से बराबर बराब करदो। सिपाहियोंने उस लड़केको लिटा दिया, काटनेके लिए ज्यों ही तलवार उठाई ि एक स्त्री जिसका वह पुत्र था बोल उठी अरे इसे मत काटो, यह लड़का मेरा नह है, मैं तो झूठ कह रही थी। यह लड़का इसीका है। उसने तो सोचा कि यह क कहे चाहे जहाँ रहे, रहेगा तो कभी कभी देखकर हो खुश रहूँगी। और, जिस स्त्रीक वह लड़का न था वह बड़ी खुश हो रही थी। वाह जैसा मैं चाहती थी वैसा ही त हो रहा है। तो राजाने अनुभवसे पूर्णतया समझ लिया कि यह बालक वास्तवमें इ स्त्रीका है जो काटनेके लिए मना कर रही और उसीको वह बालक दे दिया।

सर्वज्ञत्वके अवगमके लिये एक अनुभव प्रयोगका अनुरोध भैया अपने चित्तसे यथार्थतया निर्णीत बातका बहुत बल होता है। हम अपने ज्ञानके स भावको, ज्ञानकी रचनाको, स्वरूपको जरा परखनेमें लग जायें। यहाँ वहाँके विक चिन्तायें छोड़कर और यहाँ तक कि पर्यायकी पोजीशनको इन समस्त झंझटों छोड़कर, जो मायाजाल है, उलझनके आश्रय हैं इन सबके व्यामोहको छोड़कर ए आत्महितकी दृष्टिसे हम आत्मस्वरूप परखने लगें। आत्मा ज्ञानमात्र है, ज्ञानस्व जाननेपर आत्माका ज्ञान होता है। मैं उस ज्ञानको ही जानूँ, ज्ञानस्वभावके परख लगें तो अनेक प्रकारसे क्रमशः उसका निर्णय चलता रहेगा और जब यह स्वसंवे प्रत्यक्ष हो जायगा कि मेरा स्वरूप केवलमात्र ज्ञान है और ज्ञानका काम यहाँ रहकर जानन परिणमन करना है। उस जाननमें विषय होता है सो आकार ग्र इसीको ही कहते हैं। हो तो कुछ उस ज्ञानका विषय सत्पदार्थ है। सामने हो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

इतनी दूर होना, यह ज्ञानके लिए कैद नहीं पड़ी हुई है। उस स्वभावका निर्णय करने पर यह भी समझ लिया जायगा कि कभी ऐसी भी परिस्थिति हो सकती है कि ज्ञानका आवरण दूर हो जायगा पूर्णरूपसे तो निरावरण ज्ञान होनेपर यह ज्ञान समस्त सत्‌को जान लेता है। इस पद्धतिमें सर्वज्ञपनेका निर्णय प्रत्यक्ष सुगमतया हो जाता है। इस प्रकार इस स्थलमें सर्वज्ञकी सिद्धि की गई है जो कि आज पूरी हुई है।

इति परीक्षामुखसूत्रप्रवचनदशमभागसमाप्तम्

Report any errors at vikasnd@gmail.com